टाल्स्टाय के सिद्धान्त.

महात्मा टाल्स्टाय।

प्रकाशक,
प्रताप पुस्तकालय.

लेखक,
जनार्दन भट्ट, एम० ए०.
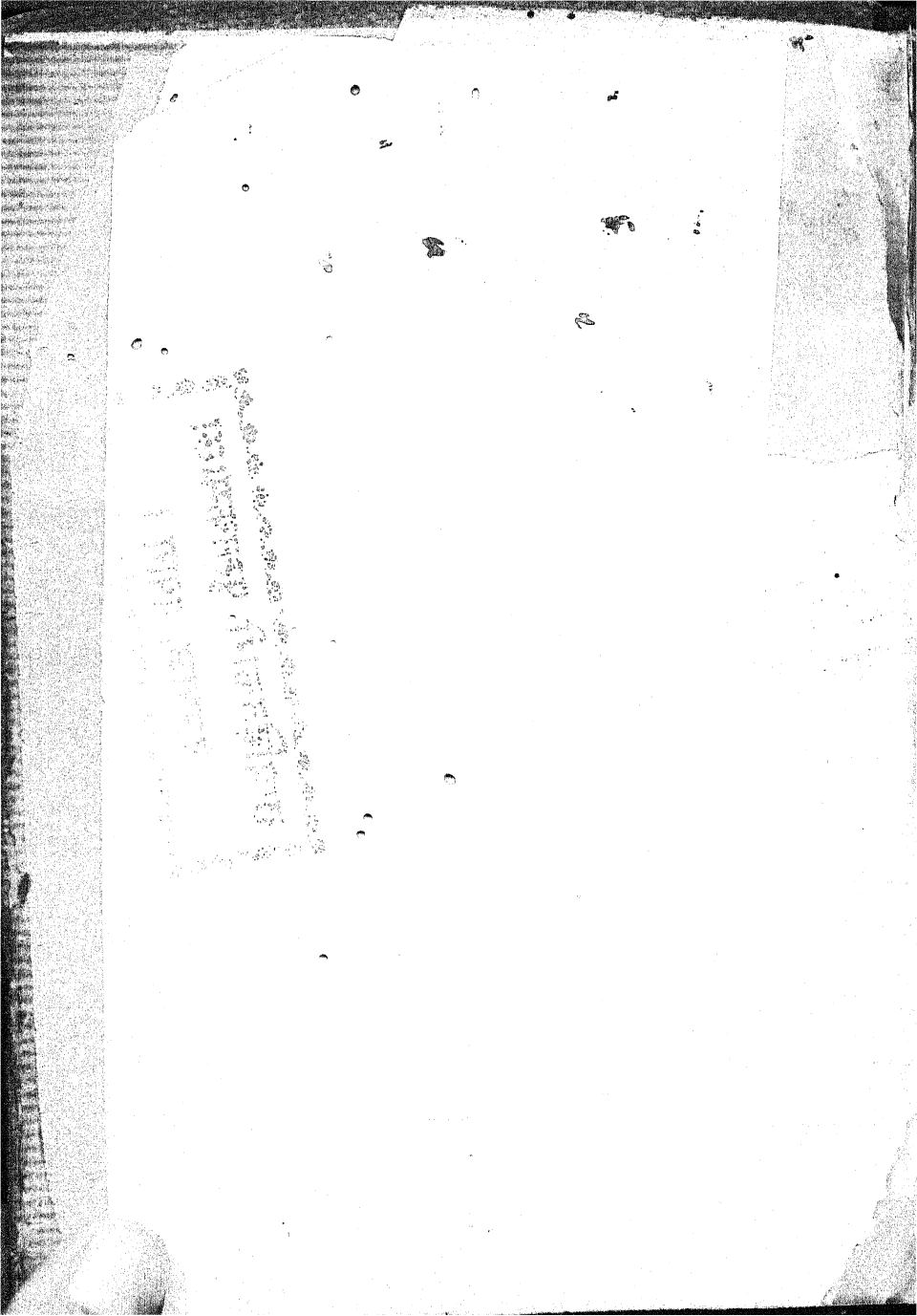
प्रताप-पुस्तक-माला की २३वीं पुस्तक।

टाल्स्टाय के सिद्धान्त

१६वीं शताब्दी के महान् पुरुष टाल्स्टाय

की

संक्षिप्त सचित्र जीवनी सहित।

लेखक

श्रीयुत जनार्दन भट्ट एम० ए०

प्रकाशक

शिवनारायण मिश्र

प्रताप पुस्तकालय

कानपुर

प्रथम संस्करण २०००

१९२३

मूल्य १।) सवा रुपया

प्रकाशक —
शिवनारायण मिश्र
प्रताप पुस्तकालय,
कानपुर।

प्रथम संस्करण — २०००
जनवरी १९२३.

मुद्रक -
लाला भगवानदास गुप्त,
कमर्शल प्रेस, जुही,
कानपुर।

निवेदन

—:o:—

महात्मा टाल्स्टाय पिछली शताब्दी के सब से बड़े मनुष्य गिने जाते हैं। संसार के प्रायः प्रत्येक सभ्य देश में उनके अनुयायी और भक्त फैले हुए हैं। उनके सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए अनेक सभा-समितियां तथा संस्थाएं योरप और अमरीका के बड़े बड़े नगरों में स्थापित हैं, जहां लोग जमा होकर टाल्स्टाय के सिद्धान्तों पर विचार करते हैं और उनके प्रचार का उपाय सोचते हैं। महात्मा गांधी तथा उनके साथियों ने दक्षिणी अफ्रिका में महात्मा टाल्स्टाय के नाम से "टाल्स्टाय फ़ार्म" (टाल्स्टाय आश्रम) खोल रक्खा था जहां टाल्स्टाय के सिद्धान्तों के अनुसार जीवन बिताने की चेष्टा की जाती थी। स्वयं महात्मा गांधी टाल्स्टाय के परम भक्त और उनके सिद्धान्तों के बड़े पक्षपाती हैं। वास्तव में महात्मा गांधी के सत्याग्रह-संबन्धी सिद्धान्त भारतीय रूप में महात्मा टाल्स्टाय के ही सिद्धान्त हैं।

महात्मा टाल्स्टाय के समस्त सिद्धान्तों का निचोड़ यह है कि "बुराई के साथ सहयोग मत करो।" वे सरकार, क़ानून, सेना, युद्ध, ज़मींदारी, कल-कारख़ाने इत्यादि वर्तमान सभ्यता की बातों को बड़ी भारी बुराई मानते थे। इसलिए अपने लेखों और ग्रन्थों में उन्होंने बार बार इस बात पर ज़ोर दिया है कि सरकार, क़ानून, सेना, युद्ध इत्यादि में सहयोग मत दो—चाहे इसके लिए तुम्हें कितनी ही तकलीफ़ क्यों न बर्दाश्त करनी पड़े। यही मुख्य सिद्धान्त उनके हरएक लेख और हरएक ग्रन्थ से टपक रहा है।

इस पुस्तक में विषय के अनुसार टाल्स्टाय के सिद्धान्त पांच भागों में बांटे गये हैं। हरएक भाग में टाल्स्टाय के लिखे हुए उस २ विषय के प्रधान प्रधान निबन्ध दिये गए हैं । टाल्स्टाय के लेखों और निबन्धों का अनुवाद शब्दश: नहीं बल्कि भाव के अनुसार किया गया है । लेखों के जो अंश ईसाई-धर्म के सम्बन्ध में थे और जो हिन्दी-संसार के लिए नीरस ही नहीं बल्कि अनावश्यक भी थे वे अनुवाद में बिल्कुल छोड़ दिए गये हैं और कहीं कहीं रूसी उदाहरणों के स्थान पर भारतीय उदाहरण दिए गये हैं । यथासंभव टाल्स्टाय के सिद्धान्तों को सरल और रोचक भाषा में समझाने का प्रयत्न किया गया है। आशा है कि हिन्दी-पाठक टाल्स्टाय के सिद्धान्तों से लाभ उठाकर हमारे परिश्रम को सफल करेंगे । आरंभ में टाल्स्टाय की एक संक्षिप्त जीवनी भी दी गई है जिससे पाठकों को थोड़ा बहुत पता इस बात का लग जायगा कि टाल्स्टाय कितने महान पुरुष थे ।

विनीत,
लेखक ।

विषय-सूची।

—:o:—

प्रथम खण्ड।

किसान और मज़दूर।

द्वितीय खण्ड।

सरकार और प्रजा।

तृतीय खण्ड।

धर्म और सदाचार।

चतुर्थ खण्ड।

युद्ध और शान्ति।

पञ्चम खण्ड।

ब्रह्मचर्य और विवाह

रूस का महात्मा

काउंट टॉल्सटाय ।

महात्मा टाल्स्टाय

की

संक्षिप्त जीवनी।

रूस देश में टूला नगर के पास दक्षिण की ओर यासनाया पोलियाना नाम का एक गांव है। महात्मा काउण्ट लिओ टाल्स्टाय का जन्म यहीं के एक प्रतिष्ठित कुटुम्ब में २८ अगस्त १८२८ ई० को हुआ था। टाल्स्टाय की माता राजकुमारी मेरी राजघराने की थीं और उनके पिता काउण्ट निकोलस भी शाही ख़ानदान के थे। टाल्स्टाय जब तीन वर्ष के थे तभी उनकी माता का देहान्त हो गया। इसलिए उनके पालन-पोषण का भार उनकी चची पर पड़ा। माता के मरने के ६ वर्ष बाद उनके पिता का भी देहान्त हो गया। इसलिए ९ वर्ष की अवस्था में ही टाल्स्टाय मातृ-पितृ-हीन हो गये। टाल्स्टाय के बाल्य-जीवन पर उनके बड़े भाई निकोलस का बड़ा प्रभाव पड़ा। टाल्स्टाय के दो बड़े भाई और थे। एक का नाम डिमेट्री और दूसरे का नाम सर्जियस था।

लड़कपन में टाल्स्टाय में कोई विशेषता नहीं देख पड़ती थी। वे विचारशील अवश्य मालूम होते थे और बहुधा अपने साथियों से अलग हो कर अपना बहुत कुछ समय एकान्त में बिताते थे।

उस समय टाल्स्टाय में दिखावट और अभिमान की मात्रा भी कुछ अधिक थी। इससे उनके हृदय में बड़ी अशान्ति रहती थी। उन्हें अपने शरीर की सुन्दरता का बड़ा ध्यान रहता था। इसके सिवाय उस समय उनमें कुछ सङ्कोच भी अधिक था। इसका परिणाम यह हुआ कि उन्हें आप ही आप प्रत्येक बात पर विचार करने का अवसर मिला। उसी समय से उन्हें विचार और तर्क करने तथा वस्तुओं की जाँच करने की धुन समाई। अतएव परिणाम यह हुआ कि उनके हृदय में सन्देह-जनक नास्तिक भावों का उदय होने लगा।

प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षा समाप्त करने के बाद टाल्स्टाय सन् १८४३ में काज़ान के विश्व-विद्यालय में प्रविष्ट हुए। पहले उन्होंने पूर्वीय भाषाओं का अध्ययन आरम्भ किया। किन्तु साल के अन्त में जब वे परीक्षा में अनुत्तीर्ण हुए तब दूसरे साल उन्होंने क़ानून का कोर्स ले लिया। यद्यपि इसमें उन्होंने कुछ उन्नति की किन्तु अन्त में उनका मन उसमें भी न लगा। उनका स्वतन्त्र और विचारपूर्ण स्वभाव उस समय की अध्ययन-प्रणाली से सन्तुष्ट नहीं हो सकता था, किन्तु उस समय उनके सामाजिक जीवन में एक बड़ा परिवर्त्तन हुआ। काज़ान नगर उस ज़माने में बहुत ही शौक़ीन शहर गिना जाता था। नाच-रंग, थियेटर, तमाशे और अन्य व्यसन की चीज़ें जितनी वहां पाई जाती थीं उतनी और किसी नगर में नहीं पाई जाती थीं। काज़ान युनिवर्सिटी के अमीर विद्यार्थी हर एक प्रकार के सुख का अनुभव किया करते थे। टाल्स्टाय भी अपना बहुत सा समय ऐश व आराम में गुज़ारते थे। इन सब बातों में पड़ कर वे बहुधा विद्यालय के उन व्याख्यानों से ग़ायब हो जाया करते थे जिनसे उन्हें अरुचि होती थी। परीक्षा में वे सदा कम

नम्बर पाते रहे। किन्तु एक बात उनमें यह अवश्य थी कि जहां कोई विषय उनकी रुचि के अनुकूल होता था वहां वे हृदय से उसके अध्ययन में लग जाते थे और उसको अच्छी तरह से मनन कर डालते थे।

सन् १८४३ में टाल्स्टाय के बड़े भाई निकोलस ने अपना अध्ययन समाप्त किया और टाल्स्टाय भी यह समझ कर कि समय व्यर्थ जा रहा है उनके साथ यासनाया पोलियाना में लौट आये। किन्तु टाल्स्टाय बहुत दिनों तक घर नहीं रह सके। उस समय रूस में किसानों के लिए एक तरह की गुलामी प्रचलित थी। उस गुलामी की निर्दयता को उनकी आत्मा कभी सहन नहीं कर सकती थी। वे किसानों के लिए उस समय कुछ भी नहीं कर सकते थे पर उन्होंने उस समय एक छोटा सा उपन्यास "एक ज़मींदार का एक सवेरा" (A morning of a Landed proprietor) नामक लिख कर इस विषय की ओर लोगों का ध्यान खींचा। उस समय सुख पाने की इच्छा से वे पेट्रोग्रेड (सेन्ट पीटर्स बर्ग) गये। वहां जाकर उनका जीवन उस समय के बड़े आदमियों की तरह बिलकुल नियम-रहित होगया। वे ताश खेलते, क़र्ज़ लेते और ऐसे ही व्यर्थ के कामों में अपना समय नष्ट करते थे। उनका चित्त भी स्थिर नहीं था। कभी वे विदेश घूमने की इच्छा करते, कभी विश्वविद्यालय की परीक्षा देने की तय्यारी करते और कभी सेना में भर्ती होने का विचार करते। उस समय टॉल्स्टाय जवानी की तेज़ धार में बहे चले जा रहे थे। किन्तु एक परिवर्त्तन ने उनके जीवन का वेग सहसा दूसरी ओर घुमा दिया। टाल्स्टाय के बड़े भाई निकोलस ने काज़ान विश्वविद्यालय में अपना अध्ययन समाप्त कर के सेना में प्रवेश किया था। वे रूस के दूरवर्ती प्रान्त

कॉकेशश में भेजे गये और तोपखाने के विभाग में रक्खे गये। सन् १८५१ के अप्रैल मास में वे कुछ दिनों की छुट्टी लेकर घर आये। घर पर आकर उन्होंने देखा कि टाल्स्टाय का नैतिक जीवन दिनोदिन हीन होता जा रहा है। उन्होंने सोचा कि टाल्स्टाय यदि शीघ्र ही उस जीवन से अलग न किए जांयगे तो वे सदा के लिए आचरण-भ्रष्ट हो जांयगे। अतएव उन्होंने टाल्स्टाय से अपने साथ चलने के लिए कहा। टाल्स्टाय तो कोई ऐसा अवसर ताक ही रहे थे, इसलिए उन्होंने इस प्रस्ताव को फ़ौरन ही स्वीकार कर लिया। तदनुसार उसी वर्ष की वसन्त ऋतु में दोनों भाई काकेशश की ओर रवाना हुये।

अपने भाई के साथ रहते रहते टाल्स्टाय के हृदय में सेना में भरती होने की इच्छा प्रबल हो उठी। अतएव वे टिफ़लिस के सैनिक विद्यालय में भरती हुये। परीक्षा पास कर लेने पर वे एक तोपख़ाने में रक्खे गये। टिफ़लिस ही में उन्होंने अपने प्रथम उपन्यास बाल्यावस्था (Boy-hood) को लिखना आरंभ किया। उसे समाप्त कर उन्होंने पेट्रोग्रेड के एक मुख्य मासिकपत्र में छपने के लिए भेजा। उस पत्र में रूस के तत्कालीन सभी मुख्य लेखक लेख भेजा करते थे। उस पत्र के सम्पादक ने टाल्स्टाय के उपन्यास को बहुत पसंद किया और उसे अपने पत्र में छाप दिया। टाल्स्टाय के जीवन में यह घटना विशेष रूप से उल्लेखनीय है, क्योंकि इस उपन्यास के छपने पर उन्हें यह दृढ़ विश्वास हो गया कि उनके जीवन का मुख्य क्षेत्र साहित्य होगा। अस्तु, काकेशश में पर्वतों का सौन्दर्य और प्राकृतिक दृश्यों का वैभव देखते, अपने विचारों के समुद्र में ग़ोते लगाते और तोपख़ाने का नीरस कार्य करते करते कदाचित् टाल्स्टाय का चित्त ऊब गया। उन्होंने अपना इस्ती-

फ़ा भेज दिया। किन्तु उनके इस्तीफ़े की मंजूरी भी न आने पाई थी कि प्रसिद्ध "क्रीमियन युद्ध" छिड़ गया। टाल्स्टाय की स्वाभाविक वीरता ने अपना प्रभाव दिखलाया। उन्होंने फ़ौरन् उस इस्तीफ़े को वापस करा लिया और युद्धस्थल में जाने की इच्छा प्रकट की। इस समय उन्होंने सेना की उच्च परीक्षा पास कर ली थी। अतएव वे सिवास्टोपोल के इतिहास-प्रसिद्ध दुर्ग में अफ़सर की हैसियत से भेजे गये। इतिहासज्ञ पाठक जानते होंगे कि "क्रीमियन युद्ध" में रूसियों को अंग्रेज़ों और फ्रांसीसियों का सामना करना पड़ा था।

टाल्स्टाय इस भीषण युद्ध में प्रवृत्त थे। वे नित्य ही सैकड़ों मनुष्यों को मरते हुए देखते थे। युद्ध के इन भयानक दृश्यों का प्रभाव टाल्स्टाय के हृदय में बहुत अधिक पड़ा। उनका एक उपन्यास जिसका नाम "युद्ध और शान्ति" (War and Peace) है, इसी विषय से भरा हुआ है। युद्ध का भीषण चित्र जैसा टाल्स्टाय ने इस उपन्यास में खींचा है वैसा अन्य कहीं नहीं मिल सकता। यदि टाल्स्टाय ने "सिवास्टोपोल" की भीषण लड़ाई में भाग न लिया होता तो कदाचित् वे इतना अच्छा उपन्यास न लिख सकते। सन् १८५५ में "सिवास्टोपोल" का पतन हुआ, रूसी फ़ौज तितर बितर हो गई। टाल्स्टाय अन्तिम घटनाओं की रिपोर्ट लेकर राजधानी पहुंचे। वहां से वे घर लौटे। घर लौट कर उन्होंने सेना से सदा के लिए बिदाई ले ली।

सेना से बिदाई ले लेने पर टाल्स्टाय को विदेश-यात्रा की धुन सवार हुई। उस समय रूस में रेलों की संख्या बहुत कम थी। सेन्ट पीटर्सबर्ग से पोलेंड की राजधानी वारसा तक वे घोड़ागाड़ी में और वहां से रेल द्वारा पेरिस को चल दिये। पेरिस में पहुंच कर

टाल्स्टाय का तत्कालीन सभ्यता के साथ सामना हुआ। वहां पहुंचने के कुछ दिन बाद उन्होंने एक व्यक्ति को, जिसे प्राण-दण्ड की आज्ञा हुई थी, "गिलोटिन" से मरते हुए देखा। "गिलोटिन" एक विशेष प्रकार का यन्त्र है। इसे फ्रांस के किसी गिलोटिन नाम के व्यक्ति ने ईजाद किया था। और यह अपने ईजाद करनेवाले के नाम से मशहूर है। इसमें मनुष्य का सर रख दिया जाता है और काग़ज़ की कटिंग मैशीन की तरह ऊपर से छुरी गिरकर उस व्यक्ति की गर्दन काट देती है। इस यन्त्र से मनुष्य बड़ी पीड़ा के साथ मरता है। टाल्स्टाय के ऊपर इस दृश्य का बड़ा प्रभाव पड़ा। पेरिस के अशान्त जीवन को छोड़कर वे स्विटज़रलेंड गये। यूरोप में स्विटज़रलेंड की वही ख्याति है जो भारतवर्ष में काश्मीर की है। यह पहाड़ी देश आल्प्स नामक पर्वतमाला से घिरा हुआ है। लोग दूर दूर से प्राकृतिक सौन्दर्य्य देखने के लिए वहां जाते हैं। विशेष कर वहां की जिनेवा झील के तट का दृश्य बहुत ही रमणीक है। स्विटज़रलेंड में कुछ दिन रह कर वे जर्मनी होते हुए अपने देश को लौट आये। लौटने के बाद वे यासनाया पोलियाना में अपनी ज़मींदारी की देख-भाल करने लगे। अगले साल वे मास्को की साहित्य-परिषद के सदस्य चुने गये। परिषद के सदस्यों ने उनका अच्छा स्वागत किया और तब से रूसी साहित्य में उनका आसन बराबर ऊँचा होता गया। साहित्य ही में नहीं किन्तु सारे देश में उनका प्रभाव फैलना आरम्भ हो गया।

उस समय टाल्स्टाय के बड़े भाई निकोलस का देहान्त हो गया। भाई की मृत्यु से टाल्स्टाय को बड़ा दुःख हुआ। तभी से उन्होंने मृत्यु के गूढ़ रहस्य के समझने का उद्योग आरंभ किया और तभी से यह विषय उनके लिए बड़े महत्व का हो गया।

उसी समय रूस के निरंकुश ज़ार निकोलस प्रथम की भी मृत्यु हुई। अलेक्ज़ेन्डर द्वितीय ज़ार हुये। उस समय क्रीमियन युद्ध से देश की दशा बड़ी ख़राब हो गई और लोग "सुधार, सुधार" चिल्ला रहे थे। रूस को पहले कभी प्रेस की स्वतन्त्रता नहीं मिली थी। उस समय उस स्वतन्त्रता की रुकावट कुछ ढीली कर दी गई थी। इस कारण वहां के तत्कालीन पत्र प्रजाओं की मांगों से भरे रहते थे। पत्रों की मांग इतनी बढ़ गई थी कि युद्ध के बाद एक ही दो साल के अन्दर पेट्रोग्रेड और मास्को से प्रायः सत्तर नये पत्र निकलने लगे। लोगों में उदार विचार और उदार सुधारों की चर्चा बड़ी सरगर्मी के साथ होने लगी। इसलिए जब नये ज़ार ने राज्य का भार ग्रहण किया तब सारे रूसी उनकी ओर सुधार की आशा से टकटकी लगाये देख रहे थे।

लोगों में जिस सुधार की सब से अधिक चर्चा और आवश्यकता थी वह सुधार रूसी किसानों की स्वतंत्रता देने का था। बहुत से रूसी किसान गुलामी की जंजीर में जकड़े हुये थे। उनकी संख्या ४८००००० थी। दासता की बेड़ी में जकड़े हुए ये किसान अपने स्वामियों के खेतों में काम करते थे और यदि खेत बिक जाते थे तो वे भी उनके साथ बेच दिये जाते थे। खेत के मालिकों के वे सब तरह से दास थे। वे उनके साथ मनमाना बर्ताव करते थे। बड़े बड़े सरदार और धनी लोग स्वभाव ही से इन किसानों के सुधार के विरोधी थे। किन्तु अलेक्ज़ेण्डर ने उन लोगों को इस सुधार के पक्ष में लाने का सफलतापूर्ण उद्योग किया। ज़ार ने बड़े बड़े ज़मींदारों की एक कमेटी बनाई और उसको इस महत्वपूर्ण सुधार का स्ताव रचने का काम सौंपा। तीन साल के वाद-विवाद के बाद सन् १८६१ ईसवी में किसानों को स्वतंत्रता देने की घोषणा की गई।

इस नये क़ानून के अनुसार स्वतंत्रता पाये हुए किसानों और ज़मींदारों में समझौता कराने के लिए प्रत्येक प्रान्त में पञ्च नियुक्त किये गये । इन पञ्चों में एक महात्मा टाल्स्टाय भी थे । उन्होंने अपने स्वभाव के अनुसार किसानों ही का पक्ष लिया । ज़मींदार तो इन स्वतंत्र किये हुए दासों को धोखे में डाल कर फंसाना चाहते थे, किन्तु महात्मा उनको बचाने का उद्योग करते थे । उनके इस कार्य्य से बहुत से लोग उनके शत्रु हो गये । सरकार के पास उनकी गुप्त शिकायतें पहुंचने लगीं । इसका परिणाम यह हुआ कि साल भर के अन्दर ही उनको इस्तीफ़ा देना पड़ा ।

इसके बाद उन्होंने अपने को शिक्षा संबन्धी कामों में लगाया । महात्मा टाल्स्टाय शिक्षक के काम को बड़े चाव से करते थे । उन्हों ने यूरोप के भिन्न भिन्न देशों में घूम कर वहां की शिक्षा-प्रणाली की खूब जांच की थी । अपने साथ वे एक जर्मन अध्यापक भी ले आये थे । पंचायत के झगड़ों से छुट्टी पाते ही वे प्रारंभिक शिक्षा के कार्य्य में लग गये । अपने गांव में उन्होंने एक आदर्श प्रारंभिक पाठशाला खोल दी । इस स्कूल के मास्टरों को सख़्त ताकीद थी कि वे न तो लड़कों को पुरस्कार दें और न ताड़ना । यदि हो सके तो वे उन पर नैतिक प्रभाव डालें, किन्तु इस से अधिक और कुछ करने का उन्हें अधिकार न था । टाल्स्टाय लड़कों में स्वाधीनता और अपने आप काम करने की इच्छा पैदा करना चाहते थे । उनका विश्वास था कि बालक स्वभाव ही से आस पास की बातों पर विचार किया करते हैं और नई नई बातें सीखना चाहते हैं । वे कहा करते थे कि बिना किसी दबाव के जो बात दिमाग़ में चढ़ती है वही टिकाऊ होती है । मास्टर का कर्तव्य केवल पथ-प्रदर्शक का है । बालकों को संभवतः जितनी स्वतंत्रता दी जा सकती है उतनी

स्वतंत्रता देनी चाहिये।

शोक है कि टाल्स्टाय का यह प्रयोग बहुत दिनों नहीं चल सका। इस स्कूल की स्थापना के कुछ दिनों बाद वे बीमार पड़े और जल वायु के परिवर्तन के लिए बाहर चले गये। उसी समय संदेह में पुलीस ने उनके गांव की तलाशी ली। यद्यपि पुलीस को कुछ भी संदेह-जनक वस्तु नहीं मिली तथापि इस तलाशी का प्रभाव वहां के शांत निवासियों पर इतना अधिक पड़ा कि उन्होंने वह स्कूल बन्द कर दिया। किन्तु इस स्कूल की बदौलत रूसी भाषा में कई पाठ्य-पुस्तकें ऐसी बन गईं जो आदर्श मानी जाती हैं।

इसी समय के लगभग अर्थात् सन् १८६२ ई० में टाल्स्टाय ने अपना विवाह किया। उनकी पत्नी एक राजवैद्य घराने की लड़की थीं। उस वक्त उनकी अवस्था ३४ वर्ष की और काउन्टेस की अवस्था १८ वर्ष की थी। विवाह के बाद ये लोग यासनाया पोलियाना में रहने लगे। इसके बाद उन्हों ने अपने आप को साहित्य-सेवा में लगाया। इस समय उनकी कल्पना-शक्ति खूब बढ़ रही थी। उपन्यास लिखने में वे सिद्धहस्त हो रहे थे। उनका "एनाकोरनिन" उपन्यास संसार भर के प्रसिद्ध प्रसिद्ध ग्रन्थों में गिना जाता है। यह उपन्यास टाल्स्टाय का सर्वोत्तम उपन्यास है।

सन् १८८१ ई० में रूस की भीतरी राजनैतिक दशा बड़ी भयंकर थी। राजनतिक संसार में एक तूफ़ान मचा हुआ था। इसका परिणाम यह हुआ कि मार्च की १३ वीं तारीख़ को हत्याकारियों ने ज़ार अलेक्ज़ेन्डर द्वितीय को मार डाला। इस घटना ने रूस में बड़ी सनसनी पैदा कर दी। टाल्स्टाय पर इसका प्रभाव एक दूसरे ढंग पर पड़ा। उन्होंने देखा कि हत्याकारियों ने ज़ार की हत्या कर के ईसामसीह के उपदेशों को पैर के तले रौंद दिया है और नये ज़ार

अलेक्ज़ेन्डर तृतीय भी हत्यारों का बध कर के उन्हीं उपदेशों के विपरीत कार्य्य कर रहे हैं। उसी समय उन्होंने नये ज़ार को एक लम्बा चौड़ा पत्र लिखा। उसमें उन्होंने उनसे ईसामसीह की शिक्षा के निहोरे अपराधियों को क्षमा कर देने की प्रार्थना की। उन्होंने लिखा कि निर्दय शासन और उदार सुधार दोनों ही का प्रयोग किया गया किन्तु दोनों ही विफल हुये। अब उन्होंने ज़ार को "अक्रोधेने जयेत् क्रोधम्" वाली नीति के अनुसार चलने की सलाह दी। किन्तु इस पत्र का उन्हें कोई उत्तर न मिला। अपराधी फाँसी पर चढ़ा दिये गये।

उसी समय वे कुछ दिनों के लिए मास्को चले गये। मास्को में जा कर उन्होंने जो दशा देखी उससे उनके चित्त में बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने देखा कि नगर में दो तरह के लोग हैं। एक तो वे हैं जो मज़दूर कहलाते हैं, जो हाथ से काम करते हैं, जो हमारे लिए अन्न पैदा करते हैं, जो अनेक अत्याचारों को सहते हैं और जिनके लिए भोजन का भी कहीं ठिकाना नहीं है; और दूसरी ओर वे सब लोग हैं जो आलसी और निकम्में हैं, जो ग़रीब किसान के पैदा किए हुए धन से गुलछर्रे और मज़े उड़ाते हैं और जो ग़रीबों तथा निर्बलों पर अत्याचार करना अपना स्वाभाविक अधिकार समझते हैं। ग़रीबों के कष्टों को देख कर उनका कोमल और दयापूर्ण हृदय अत्यन्त दुखी हो गया। उसी समय मास्को में मर्दुमशुमारी की तैय्यारी की जा रही थी। उन्होंने ग़रीबों की दशा को जांचने और देखने का बड़ा अच्छा अवसर समझा। उन्होंने मास्को की म्यूनिसिपैलिटी के सब से दरिद्र और गिरे भाग में मर्दुमशुमारी का काम करने की आज्ञा मांगी। उन्होंने नगर के उस भाग में जा कर देखा कि जहां वे स्वयं सुख और

आनन्द के साथ रहते हैं, वहां ही लोग भूख से तड़प रहे हैं। इस मर्दुमशुमारी में उन्हें जो अनुभव प्राप्त हुए उनके आधार पर उन्होंने एक पुस्तक लिखी जिसका नाम है "तब हम क्या करेंगे ?" (What shall we do then ?)। इसमें उन्होंने दरिद्रों की दशा का वर्णन बहुत अच्छी तरह से किया है। तभी से उन्होंने ग़रीबों की दुर्दशाओं के ऊपर विचार करना आरम्भ किया। उन्होंने यह परिणाम निकाला कि जब तक समाज में घोर परिवर्त्तन न होगा तब तक कोई सुधार सम्भव नहीं है। टाल्स्टाय इस सम्बन्ध में रुपये को बहुत बड़ी बुराई समझते थे। उनका मत था कि समाज में जो बुराइयां फैली हैं उनका मुख्य कारण रुपया है। वे कहा करते थे कि रुपया एक प्रकार का दबाव है जो सरलता से दूसरे पर डाला जा सकता है। अन्त में उन्होंने इस प्रश्न को हल करते हुए लिखा है—अपने किये पर पश्चात्ताप करो, अपने जीवन का नवीन सङ्गठन करो, अपने ख़ज़ाने में से एक आध पैसा या रुपया ग़रीबों को दो या न दो किन्तु उनके कष्टमय और परिश्रमी जीवन में भाग अवश्य लो।

इसी क्रम के अनुसार उन्होंने अपना जीवन व्यतीत करना आरम्भ किया। नगर का जीवन उनकी प्रकृति के अनुकूल न था। अतएव वे यासनाया पोलियाना लौट आये। वहां आकर उन्होंने सर्वसाधारण के मनोरञ्जन और शिक्षा के लिए गल्प और छोटी छोटी कहानी लिखना आरम्भ किया। यह कहानियां बड़ी ही सरल भाषा में लिखी जाती थीं। इन कहानियों का प्रचार बात की बात में न केवल रूस में बल्कि और देशों में भी हो गया।

साहित्य-सेवा करते हुए टाल्स्टाय ने अपने जीवन का क्रम नहीं बदला। वे ग़रीबों के साथ लकड़ी काटते, पानी भरते और

जूता बनाते थे। वे स्वयं अपना बनाया जूता पहनते थे । वे अपनी गठरी पीठ पर देहातियों की तरह डाल लेते थे और पैदल ही यात्रा करते थे। गांव में वे बहुधा पेड़ों को काटा करते और लकड़ी को वे अनाथों, विधवाओं और दरिद्रों में बांट दिया करते थे । वे सदा दरिद्रों की सहायता करने को तैयार रहते थे । एक रूसी काउण्ट हो कर भी वे अपना जीवन दरिद्र किसानों की तरह व्यतीत करते और उनके दुःख में दुखी होते थे।

उस समय की रूसी सरकार ने टाल्स्टाय के ग्रन्थों का छापना या बांटना ग़ैर-क़ानूनी कह कर उनका प्रचार बन्द कर दिया किन्तु रूस के बाहर यूरोप के स्वतंत्र देशों में उनके ग्रन्थ ख़ूब स्वतन्त्रता के साथ प्रकाशित होते थे । जिनेवा, लन्दन, बर्लिन और पेरिस में उनके ग्रन्थों का अनुवाद होने लगा और इन अनुवादों का प्रचार पढ़े लिखे लोगों में बहुतायत से बढ़ने लगा। बहुत से लोगों को तो उनके निबन्धों को पढ़ कर उनके दर्शन करने की लालसा हुई। जब उनके जीवन की कहानी समाचार-पत्रों में छपने लगी और वे मनुष्यमात्र के प्रेमी के नाम से प्रसिद्ध हो गए तब उनकी सम्मति का वज़न लोगों पर बहुत ज़्यादा पड़ने लगा। उन का प्रभाव यहां तक बढ़ा कि स्वयं रूस के निरंकुश ज़ार भी उनको एक प्रभाव-शाली व्यक्ति समझने लगे। ख़ुफ़िया पुलीस उनके पीछे लगी रहती थी। उनकी पुस्तक के प्रचार करनेवालों को सज़ा मिलती थी, किन्तु स्वयं टाल्स्टाय के ऊपर हाथ उठाने का साहस सरकार को नहीं होता था।

जब ज़ार अलेक्ज़ेण्डर द्वितीय की हत्या उग्र आन्दोलनकारियों ने कर डाली और देखा कि उसका फल अच्छा होने के बजाय बिलकुल विपरीत हुआ तब उन लोगों को समाज के पुनः

सङ्गठन का उपाय करने के लिए दूसरे देशों का अन्वेषण करना पड़ा। उस समय रूस के नव-युवक केवल राजनैतिक सुधारों की परवाह न कर के सामाजिक और धार्मिक सुधारों की ओर झुके। इन लोगों के विचार महात्मा टाल्स्टाय के विचारों से बहुत कुछ मिलते जुलते थे और वे इन्हीं को अपना नेता समझने लगे। इस नवीन आन्दोलन की बदौलत कितने ही धनाढ्य और ऊंचे घराने के लोग दरिद्र किसानों के साथ रहने लगे और कितनों ही ने सेना में सेवा करने की शपथ करने से इनकार कर दिया। तभी से उस प्रसिद्ध "निष्क्रिय प्रतिरोध" या "सत्याग्रह" का क्रम प्रारम्भ हुआ जिसका अवलम्बन महात्मा गांधी ने कर के हमारे देश की राजनीति में एक नया ही युग उपस्थित कर दिया है। इस निष्क्रिय प्रतिरोध की नवीन शिक्षा की बदौलत संसार में महात्मा टाल्स्टाय का स्थान बहुत ऊंचा हो गया है।

रूस कभी व्यापारिक देश नहीं रहा है। सारे देश का मुख्य जीवन-आधार खेती ही है। इस बात में रूस भारतवर्ष से बहुत कुछ मिलता जुलता है। सन् १८९१ में वहां पानी बिल्कुल नहीं बरसा। लोग अकाल की आशंका करने लगे। धीरे धीरे अकाल कराल रूप धारण करने लगा। अपने कोमल और उदार हृदय के अनुसार टाल्स्टाय ने भूख से व्याकुल किसानों की सहायता करनी आरम्भ की। उस समय रेयाज़ा प्रान्त में अकाल का कष्ट सब से अधिक था। इसलिए वे अपनी दो कन्याओं और एक भतीजी को लेकर उस प्रान्त में गये। उस समय उनके पास कार्य्य आरम्भ करने के लिए केवल ७५०) थे। वहां पहुंच कर उन्होंने लोगों में भोजन बांटना शुरू किया। उनकी इस सेवा की ख़बर चारों ओर फैलने लगी। उनके इस कार्य्य की चर्चा देश देशान्तरों में होने

लगी। श्रीमती टाल्स्टाय ने पत्रों में एक अपील छपवाई जिसमें टाल्स्टाय के कार्य्यों को चलाने के लिए धन की सहायता मांगी गई। इस अपील के उत्तर में अच्छी अच्छी रक़में टाल्स्टाय के पास पहुंचने लगीं। टाल्स्टाय के कुल परिवार के लोग किसी न किसी रूप से अकाल-पीड़ितों की सेवा में लग गये। उनकी देखा देखी और भी कितने ही लोग काम करने लगे और सेवा का काम बहुत अच्छी तरह से चलने लगा। स्वयं महात्मा टाल्स्टाय अपने अमृत समान वचनों से किसानों को उत्साहित करते और आश्वासन देते थे।

इसी समय उन्होंने "स्वर्ग का साम्राज्य तुम्हारे हृदय के अन्दर है" (The kingdom of God is within you) नाम का प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखा। इस पुस्तक में और बातों के अलावा रूसी साम्राज्य के संगठन की कड़ी आलोचना की गई थी। इसका परिणाम यह हुआ कि रूसी सरकार ने उस पुस्तक का प्रचार रोक दिया। वे "अनारकिस्ट" (अराजक) समझे जाने लगे। किन्तु वे ख़ून करनेवाले और लोगों में भय उत्पन्न करनेवाले "अनारकिस्ट" नहीं थे। वे कहते थे कि मनुष्य में स्वभाव ही से प्रेम और सत्य के दैवी-नियम वर्त्तमान हैं, अतएव उनकी पुष्टि के लिए मनुष्यों के बनाये हुये क़ानूनों की आवश्यकता नहीं है। इसी कारण वे कहा करते थे कि ज़बरदस्ती किसी राज्य का संगठन करना उचित नहीं है। अतएव महात्मा टाल्स्टाय की "अनार्किज़्म" या अराजकता मनुष्यों को सर्वोत्तम सामाजिक और नैतिक नियमों की शिक्षा देती है।

टाल्स्टाय का प्रभाव दिन पर दिन बढ़ता गया। रूस के सभी विचारवान पुरुष, विद्यार्थी और मज़दूर उनको देवता के

समान समझने लगे। उन्होंने "रिज़रेक्शन" नाम की एक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक में उन्होंने ईसाई धर्म और रूसी सरकार की बड़ी कड़ी समालोचना की।

इसके कारण पादरियों ने उन्हें एक व्यवस्था-पत्र निकाल कर मिथ्या सिद्धान्तों के प्रचार करने के अपराध पर धर्मच्युत कर दिया। जिस दिन मास्को में यह आज्ञा-पत्र सुनाया गया उस दिन वहां दङ्गे हो गये, जिन्हें विद्यार्थियों ने शुरू किया था और जिनमें पीछे से मजदूर भी शामिल हो गये थे। टाल्स्टाय नित्य क्रम के अनुसार उस दिन भी घूमने गये थे। जब वे घूमकर लौटे तब लोगों ने उन्हें पहिचाना और चारों ओर से घेर लिया। वे उनके प्रति आदर और सहानुभूति दिखलाने लगे। टाल्स्टाय बड़ी मुश्किल से अपने आप को उन भक्तों के समूह से छुटाकर घर लौटे। वहां कितने ही डेप्यूटेशन उनसे मिलने और सहानुभूति प्रगट करने के लिए आये। ज्यों २ इस आज्ञापत्र का समाचार दूर दूर तक फैला त्यों त्यों उनके पास सहानुभूति-सूचक तार, पत्र इत्यादि आने लगे।

इस आज्ञापत्र का उत्तर उन्होंने एक छोटे लेख में दिया जिस में उन्होंने बड़ी योग्यता के साथ ईसाई धर्म के सम्बन्ध में अपने विचार प्रगट किये हैं। इस लेख में उन्होंने यह लिखा कि "मैं केवल यही प्रकाशित नहीं करना चाहता कि मैं ग्रीकचर्च को नहीं मानता बल्कि मैं यह भी जाहिर करना चाहता हूं कि मैं अपने को ईसाई कहने में भी हिचकता हूं क्योंकि मुझे डर है कि इस नाम से कहीं सत्य बात न छिप जाय। सत्य ही मुझे सबसे अधिक प्रिय है और सत्य से मुझे कोई भी शक्ति च्युत नहीं कर सकती।"

जब टाल्स्टाय ८० वर्ष के हुये तो लोगों ने उनकी वर्षगांठ

बड़ी धूमधाम से मनाई। पर उनके विरोधियों ने उनके विरुद्ध लेख लिख कर यह प्रचार किया कि टाल्स्टाय एक नास्तिक हैं और उनका आदर करना पाप है। सरकार ने भी यह आज्ञा निकाली कि कोई भी उनकी वर्षगांठ के दिन आध्यात्मिक उपदेशक कह कर उनका आदर न करे। हां, यदि कोई साहित्यसेवी के दृष्टि से उनका आदर करना चाहे तो कर सकता है। अतएव बहुत से स्थानों में उस दिन कोई भी उनके बारे में खुले तौर पर एक शब्द भी न बोलने पाया। किन्तु लोगों ने टाल्स्टाय के प्रति आदर और भक्ति दिखाने में कोई कसर न की। स्वयं टाल्स्टाय ने यह प्रकाशित किया कि उस दिन कोई सार्वजनिक सभा आदि न कर के प्रार्थना में ही वह दिन व्यतीत किया जाय। उस दिन संसार भर के पत्रों में उनके चित्र आदि छापे गये। सारा देश उस दिन महात्मा टाल्स्टाय का आदर करने में मग्न था।

अन्तिम दिनों में महात्मा टाल्स्टाय का मन अपने सिद्धान्तों के ऊपर विचार करने में लगा रहता था। वे अपने जीवन के ढंग को अपने सिद्धान्तों के विपरीत समझते थे। उन्होंने कई बार घर छोड़ कर एकान्त में चले जाने का विचार किया किन्तु फिर उन्होंने सोचा कि यह कार्य बड़ा स्वार्थमय है क्योंकि इससे उनके घर वालों को बड़ी मानसिक वेदना होगी। अतएव उन्होंने यह निश्चय किया कि जब तक घर में रहना मेरे लिए बिल्कुल असंभव न हो जाय तब तक मैं घर न छोड़ूँगा। सन् १८९७ ईसवी में उन्होंने अपनी स्त्री के नाम एक पत्र लिखा था किन्तु वह श्रीमती के पास भेजा नहीं गया। उसके ऊपर लिखा था, "मेरी मृत्यु के बाद दिया जाय"। उस पत्र का सारांश नीचे दिया जाता है:—

"प्रिय सोनया, मेरे धार्म्मिक सिद्धान्तों और मेरे जीवन में

जो परस्पर विरोध है उसके कारण मुझे बहुत दिनों से मानसिक वेदना हो रही है। मैं तुम्हें जीवन के इस क्रम को छोड़ने के लिए बाध्य नहीं कर सकता क्योंकि मैंने ही तुम्हें इस क्रम में लगाया है। अब मैं वह कार्य्य करना चाहता हूं, जिसे करने की मेरी बड़ी इच्छा है, अर्थात् मैं तुम लोगों से विदा होकर अन्यत्र जाना चाहता हूं। इसके कई कारण हैं। पहला कारण तो यह है कि ज्यों ज्यों मेरी अवस्था बढ़ती जाती है त्यों त्यों मेरा जीवन मुझे अधिक कष्टकर मालूम होता है और मुझ में एकान्त-सेवन की इच्छा प्रबल होती जाती है। दूसरा कारण यह है कि लड़के अब सयाने हो गये हैं, मेरा रहना अब घर पर आवश्यक नहीं है। तीसरा कारण यह है कि जिस तरह हिन्दू लोग ६० वर्ष की अवस्था में जंगल को चले जाते हैं उसी तरह मैं भी अपने जीवन के अन्तिम दिन ईश्वर के भजन में लगाना चाहता हूं। यदि मैं अपने इस विचार को प्रगटरूप से कार्य में परिणत करने की चेष्टा करूं तो लोग मुझ से विनय करेंगे, प्रार्थना करेंगे और संभव है कि वे मुझे इस विचार से डिगा दें। अतएव, यदि मेरे इस कार्य से तुम लोगों को कष्ट हो तो तुम सब लोग मुझे क्षमा करना। तुम लोग प्रसन्नतापूर्वक मुझे जाने की अनुमति दे दो, मेरी खोज मत करो और मुझे दोष मत दो।

तुम्हारा स्नेही—

लियो टाल्स्टाय।"

इसी विचार के अनुसार उन्होंने सन् १९१० ई० की १० वीं नवम्बर को घर छोड़ने का दृढ़ निश्चय कर लिया। उस दिन वे बड़े तड़के उठे। उन्होंने यात्रा का जल्दी जल्दी प्रबंध किया और

सब से पहले अपनी स्त्री को एक पत्र लिखा । इसके बाद उन्होंने अपनी कन्या सेशा और अपने मित्र डाक्टर मेकोबिट्सकी को जगाया और उनकी सहायता से असबाब बांधा। इसके बाद वे एक गाड़ी पर एक डाक्टर के साथ सवार होकर स्टेशन की ओर चले। वे रास्ते भर पीछा किये जाने के भय से कांप रहे थे। अन्त में वे रेलगाड़ी पर सवार हो गये और गाड़ी चल दी। किन्तु महात्मा टाल्स्टाय का स्वास्थ्य ठीक नहीं था। यात्रा के आरंभ ही से उनको कष्ट हो रहा था। उन्हें सर्दी लग गई और इसी कारण उन्हें ज्वर आ गया। रास्ते में उनकी तबियत इतनी ख़राब हो गई कि उनके साथी डाक्टर ने आस्टायोवो नाम के एक छोटे स्टेशन पर उतार लिया। इसी स्टेशन में २० नवम्बर १९१० को संसार का एक बड़ा भारी महात्मा हमेशा के लिए इस दुनिया से चला गया!

प्रथम खण्ड ।

किसान और मज़दूर ।
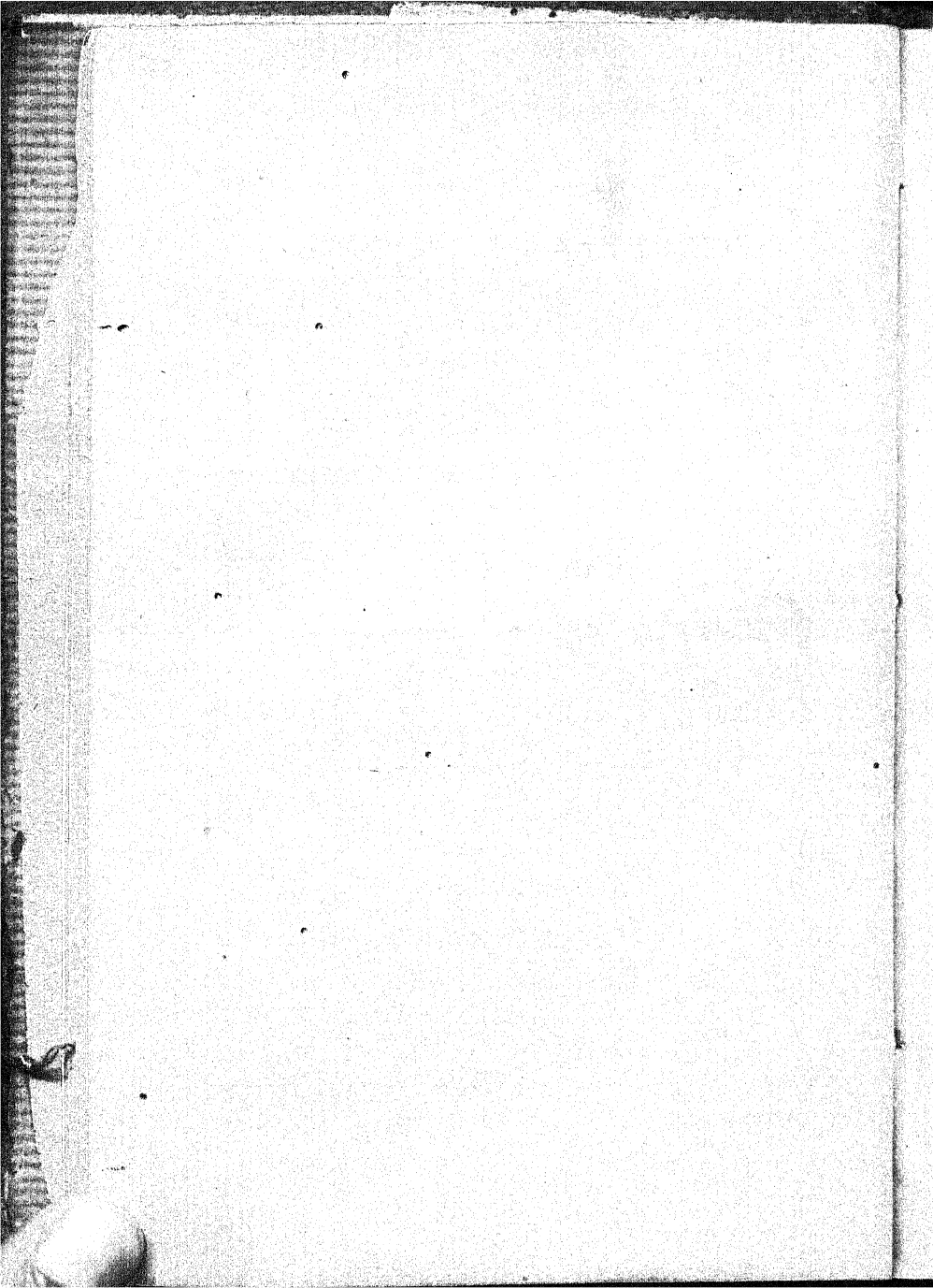
टाल्स्टाय के सिद्धान्त

१—किसानों और मज़दूरों के नाम सन्देश।

प्यारे किसान और मज़दूर भाइयो,

मेरी ज़िन्दगी के अब सिर्फ़ थोड़े ही दिन बाक़ी हैं। इसलिए मैं चाहता हूं कि इस दुनिया से कूच करने के पहले मैं तुम्हारे बारे में अपने कुछ ख़्याल तुम पर ज़ाहिर कर दूं। भाइयो, जो अत्याचार तुम्हारे ऊपर होते हैं, जो मुसीबतें तुम्हें झेलनी पड़ती हैं, उनके ऊपर मैं कई वर्षों से विचार कर रहा हूं। मैंने इस बात पर भी बहुत विचार किया है कि इन अत्याचारों और कष्टों से तुम्हारा छुटकारा किस तरह हो सकता है। कदाचित् मेरे इन विचारों से तुम्हें फ़ायदा हो, यही समझ कर मैं आज तुम लोगों के सामने कुछ कहने के लिए खड़ा हुआ हूं।

भाइयो, आप लोगों को मजबूर हो कर ऐसे ऐसे काम करने पड़ते हैं जिनसे आपकी तन्दुरुस्ती बर्बाद हो जाती है। वह सब काम आपके लिए बिल्कुल ही ज़रूरी नहीं हैं। किन्तु यदि आप लोग ऐसे कामों को न करें तो आपकी आवश्यकताएं पूरी नहीं हो सकतीं, आपकी ज़िन्दगी क़ायम नहीं रह सकती और आपके बाल-बच्चे नहीं पल सकते। जो कुछ आप अपनी मेहनत से तैयार करते हैं या अपने हाथों से पैदा करते हैं उससे वह सब लोग फ़ायदा

उठाते हैं जो हाथ से बिल्कुल परिश्रम नहीं करते और जो दूसरों के पैदा किए हुए धन पर गुलछर्रे और मज़े उड़ाते हैं । आप लोग इन्हीं निकम्मे आदमियों के ग़ुलाम हैं । अब आइये, इस बात पर विचार करें कि यह हालत किस तरह से सुधर सकती है और आप लोग इस ग़ुलामी से किस तरह छुटकारा पा सकते हैं ।

सब से पहला और स्वाभाविक उपाय, जो बहुत पुराने ज़माने से काम में लाया जाता रहा है, यह मालूम होता है कि जो लोग आपके पैदा किये हुए धन से अपनी ज़िन्दगी चैन के साथ बिता रहे हैं उनसे ज़बर्दस्ती वह धन छीन लिया जाय । प्राचीन ज़माने में रोम के ग़ुलामों ने यही किया था । फ्रान्सीसी विप्लव के ज़माने में फ्रान्स के किसानों ने भी ऐसा ही किया था और हाल के ज़माने में रूस के किसानों और मज़दूरों ने भी इसी उपाय से ज़ार, ज़मींदारों और धनियों की ग़ुलामी से छुटकारा पाया है । मज़दूरों और किसानों को सब से पहले यही उपाय सूझता है । पर इस उपाय से उनकी हालत सुधरने के बदले और भी बिगड़ जाती है । प्राचीन ज़माने में, जब कि सरकार की ताक़त इतनी मज़बूत न थी जितनी कि आजकल है, इस तरह के उपद्रवों, विप्लवों और युद्धों से सफलता मिल सकती थी, पर आजकल जब कि सरकार के क़ब्ज़े में अनगिनत रुपया, रेल, तार, फ़ौज, पुलीस और अनेक अस्त्र-शस्त्र हैं तब इस तरह की कोशिशें बे-फ़ायदा जाती हैं और सरकार के ख़िलाफ़ उपद्रव तथा विप्लव मचानेवाले पकड़ पकड़ कर फांसी पर लटका दिये जाते हैं । इसका नतीजा यही होता है कि हाथ से काम करनेवाले मज़दूरों और किसानों पर उन लोगों की शक्ति और भी जम जाती है जो हाथ से काम नहीं करते और जो मज़दूरों तथा किसानों को ग़ुलाम बनाये रखने में ही अपना फ़ायदा

समझते है। जिस मनुष्य के हाथ पैर रस्सी से जकड़े हुए हैं वह अगर अपना छुटकारा पाने के लिए रस्सी को खींचेगा तो उसका बन्धन और भी मज़बूत हो जायगा। इसी प्रकार यदि आप लोग ज़बर्दस्ती तलवार या हाथ पैर के ज़ोर से उस अपने पैदा किये हुए धन और स्वत्व को लेना चाहेंगे, जो आप से ज़बर्दस्ती छीन लिए गये हैं, तो आपकी ग़ुलामी और भी मज़बूत हो जायगी।

कुछ लोगों ने—जो मज़दूरों और किसानों की भलाई चाहते हैं या कम से कम यह कहते हैं कि हम किसानों और मज़दूरों की भलाई चाहते हैं—मज़दूरों और किसानों को ग़ुलामी से छुटाने का एक नया उपाय निकाला है। यह नया उपाय यह है कि सब किसानों और मज़दूरों को चाहिये कि वे अपनी अपनी ज़मीन और खेत छोड़ कर कल कारख़ानों में भर्ती हो जांय और वहां मज़दूर-सभाएं, तथा सहयोग-संस्थाएं क़ायम कर के और अपने प्रतिनिधियों को पार्लियामेन्ट, कौन्सिल आदि में भेज कर अपनी हालत बराबर सुधारते रहें और अन्त में कुल मिलों, कल-कारख़ानों और खेत आदि उन सब वस्तुओं को अपने क़ब्ज़े में कर लें जिनसे हर प्रकार की संपत्ति पैदा होती है। उनका यह कहना है कि ऐसा करने से ही किसान और मज़दूर स्वतंत्र तथा सुखी हो सकते हैं। यद्यपि यह उपाय बहुत ही पेचीदा और बेहूदा मालूम पड़ता है; पर इसका प्रचार दिन पर दिन बढ़ता ही जा रहा है। इस मत को साम्यवाद कहते हैं और इसके माननेवाले साम्यवादी कहलाते हैं।

साम्यवाद का यह सिद्धान्त न केवल उन देशों में ही स्वीकार किया गया है जहां के अधिकतर लोगों ने कई पीढ़ियों से खेतीबारी का काम छोड़ रक्खा है, बल्कि उन देशों में भी इन सिद्धान्तों का प्रचार बढ़ रहा है जहां के अधिकतर मज़दूरों और किसानों ने

खेती-बारी छोड़ने का विचार अभी तक नहीं किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार पहली ज़रूरी बात यह है कि किसान और मज़दूर देहात और गांव की तन्दुरुस्ती और स्वतंत्रता देनेवाली ज़िन्दगी को छोड़ कर कलकारख़ानों की गुलामी में दाख़िल हों और वहां अपनी तन्दुरुस्ती और अपने सच्चे आराम को चौपट करें। ऐसा मालूम पड़ेगा कि कम से कम उन देशों में इस सिद्धान्त का प्रचार नहीं हो सकता जहां अधिकतर लोग अब तक खेती-बारी से ही अपना गुज़ारा करते हैं। पर बड़े आश्चर्य की बात है कि रूस ऐसे देश में भी, जहां ९८ फ़ी सदी लोग खेती के द्वारा अपनी ज़िन्दगी बसर करते हैं, इस सिद्धान्त का प्रचार बड़े ज़ोर के साथ हो रहा है। सौभाग्य की बात है कि भारतवर्ष में इस सिद्धान्त का प्रचार अभी बहुत कम हुआ है और बहुत अधिक मज़दूर तथा किसान अब तक खेती-बारी के काम में लगे हुए हैं।

किसानों और मज़दूरों को इस बात की ज़रूरत नहीं है कि वे साम्यवाद के इन सिद्धान्तों को स्वीकार कर के उनके अनुसार आचरण करें, बल्कि ज़रूरत सिर्फ़ इस बात की है कि उन्हें अपने बाल बच्चों का पालन करने के लिए काफ़ी ज़मीन जोतने बोने को मिले। पर इस के बारे में साम्यवादी कुछ भी नहीं कहते। साम्यवादियों का यह मत है कि मिल और कल-कारख़ानों की तरह खेत और ज़मीन भी मज़दूरों के लिए मज़दूरी का सिर्फ़ एक ज़रिया है। वे मज़दूरों और किसानों को सलाह देते हैं कि वे खेती-बारी का काम छोड़ कर उन कल-कारख़ानों में भर्ती हो जांय जहां तोप, बन्दूक़, तेल, फुलेल, साबुन, कंघी, और अनेक ऐश-आराम की चीज़ें बनायी जाती हैं और जब यह सब कारख़ाने उनके क़ब्ज़े में आ जांय तो फिर वे ज़मीन और खेती-बारी को भी अपने क़ब्ज़े में कर लें।

स्वतंत्रता और सुख के साथ जीवन बिताने का एक बड़ा उपाय सदा से यह समझा गया है कि खेती-बारी का प्राकृतिक जीवन व्यतीत किया जाय। पर साम्यवादी यह कहते है कि मनुष्य को सुख प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह खेती का काम करता हुआ सादा और प्राकृतिक जीवन व्यतीत करे, बल्कि आवश्यक यह है कि वह कल-कारख़ानों में भर्ती हो कर वहां की गन्दी और दूषित वायु को सेवन करता हुआ अप्राकृतिक जीवन व्यतीत करे। इसका नतीजा यह होता है कि किसान और मज़दूर कल-कारख़ानों के चक्कर में पड़ कर साम्यवादियों के सिद्धान्त को पूरी तरह से स्वीकार कर लेते हैं और अपनी कुल शक्ति को काम करने के घण्टे कम कराने तथा अपनी मज़दूरी बढ़वाने के प्रश्न पर मालिकों तथा पूंजी-पतियों के साथ लड़ने में लगा देते हैं और यह समझते हैं कि हम बहुत ही भारी काम कर रहे हैं। पर वास्तव में उन मज़दूरों और किसानों के लिए, जिनके हाथ से खेती-बारी का काम निकल गया है, सब से बड़ा प्रश्न यह होना चाहिये कि वे किस तरह ज़मीन को फिर अपने क़ब्ज़े में ला सकें और फिर किसानी का जीवन व्यतीत कर सकें। पर साम्यवादी यह कहते हैं कि "अगर यह सच भी हो कि कल-कारख़ानों की ज़िन्दगी से खेती-बारी की ज़िन्दगी ज़्यादा अच्छी है तब भी कल-कारख़ानों में काम करनेवालों की तादाद इतनी ज़्यादा बढ़ गयी है और उन लोगों को खेती का काम छोड़े हुये इतने दिन बीत गये हैं कि अब उनका फिर खेती के काम पर लौटना संभव नहीं है। असंभव इस कारण से है कि उनके खेती के काम पर फिर लौटने से कल-कारख़ानों में पैदा होनेवाली चीज़ों की पैदावार घट जायगी। और इस तरह से मुल्क की दौलत में कमी आ जायगी। इसके अलावा अगर हम मान भी

लें कि मुल्क की दौलत में कमी न आयेगी तब भी इतनी ज़्यादा ज़मीन और खेत नहीं हैं कि कुल कल-कारख़ानों में काम करनेवाले उन में समा सकें और उनके द्वारा अपना पेट पाल सकें।"

यह कहना कि यदि कल-कारख़ानों में काम करनेवाले मज़दूर खेती के काम पर फिर लौट जायंगे तो मुल्क की दौलत में कमी आ जायगी, सच नहीं है। क्योंकि खेती-बारी करने का अर्थ यह नहीं है कि किसान अगर चाहें तो अपने घर में छोटामोटा रोज़गार नहीं कर सकते या कल-कारख़ानो में जा कर काम नहीं कर सकते। यदि फिर से किसानों की ज़िन्दगी अख़्तियार करने से उन सब बेफ़ायदा और नुक़सान-देह चीज़ों की पैदावार घट जाय, जो बड़े बड़े कल-कारख़ानों में इतनी तेज़ी के साथ तैयार की जाती हैं, और साथ ही, अनाज, फल-फूल, गाय-बैल, घोड़े इत्यादि की तादाद और पैदावार बढ़ जाय तो इससे मुल्क की दौलत घटने के बजाय बढ़ जायगी।

साम्यवादियों का यह कहना भी ठीक नहीं है कि कल-कारख़ानों में काम करनेवाले कुल मज़दूरों की परवरिश के लिए काफ़ी खेत या ज़मीन नहीं है, क्योंकि बड़े बड़े ज़मींदारों और ताल्लुक़ेदारों के कब्ज़े में इतनी ज़मीन पड़ी हुई है कि उससे कुल किसानों और मज़दूरों का अच्छी तरह गुज़ारा हो सकता है। अगर खेत और ज़मीन धनी ज़मींदारों और ताल्लुक़ेदारों के क़ब्ज़े से छूट कर छोटे छोटे किसानों और मज़दूरों के क़ब्ज़े में आ जाय, अगर किसान लोग सुधरे हुए तरीक़े से खेती करने लगें, अगर किसानों को अपनी पैदावार का बहुत बड़ा हिस्सा ज़मींदारों को न देना पड़े तो खेती की पैदावार इतनी बढ़ सकती है कि उससे न सिर्फ़ इसी मुल्क के बल्कि दूसरे मुल्क के किसान और मज़दूर भी अपना गुज़ारा

कर सकते हैं। ऐसा होने से मुल्क की दौलत बजाय घटने के बढ़ सकती है और मुल्क में जो क़हत क़रीब हर साल पड़ा करता है वह हमेशा के लिए दूर हो सकता है।

इसलिए किसानों और मज़दूरों के उद्धार के लिए साम्यवाद की ज़रूरत नहीं, बल्कि सिर्फ़ इस बात की ज़रूरत है कि कोई ऐसा उपाय निकाला जाय जिससे किसान और मज़दूर कल-कारख़ानों की ग़ुलामी से छूट कर किसानों का स्वतन्त्र जीवन व्यतीत कर सकें। उनके ऐसा करने में ख़ास अड़चन यह है कि ज़्यादातर ज़मीन उन ज़मींदारों और ताल्लुक़ेदारों के क़ब्ज़े में है जो अपने हाथ से बिल्कुल काम नहीं करते। अब मज़दूरों और किसानों की कोशिश सिर्फ़ यही होनी चाहिये कि खेत और ज़मीन फिर से उनके क़ब्ज़े में आ जाय और वे खेती-बारी करके आराम के साथ अपना गुज़ारा कर सकें।

ज़मींदारी, ताल्लुक़ेदारी या ज़मीन पर किसी एक आदमी का अधिकार ज़रूर ही उठ जाना चाहिये, क्योंकि इसके कारण अनेक अत्याचार और अन्याय किसानों और मज़दूरों पर होते हैं। अब सवाल यह उठता है कि ज़मींदारी या ताल्लुक़ेदारी की प्रथा किस तरह उठायी जाय? ग़ुलामी की प्रथा जहां जहां उठाई गई है वहां वहां सरकार के हुक्म से उठी है। आप कदाचित् यह कहें कि इसी तरह ज़मींदारी और ताल्लुक़ेदारी की प्रथा भी सरकार के हुक्म से उठ सकती है। पर यह निश्चय है कि सरकार इस तरह का हुक्म कभी न निकालेगी।

जो लोग सरकार में शामिल हैं वे सब के सब दूसरे आदमियों के पैदा किये हुए अन्न को खाकर जिन्दा रहते हैं और दूसरों के पैदा किये हुए धनपर गुलछर्रे उड़ाते हैं। सब से ज़्यादा ज़मींदार

और ताल्लुक़ेदार हैं जो इस तरह की ज़िन्दगी बिताते हैं। न सिर्फ़ सरकार और उनके पिट्टू ज़मींदार ज़मींदारी की प्रथा उठाने का विरोध करेंगे, बल्कि सब सरकारी नौकर, चित्रकार, कारीगर, व्यापारी, डाक्टर, वैद्य, वकील इत्यादि भी इस प्रथा का समर्थन करेंगे, क्योंकि इन सब का स्वाथ सरकार और ज़मींदारों के स्वार्थ के साथ सना हुआ है। यही कारण है कि भिन्न भिन्न पार्लियामन्ट, कौंसिल और राजसभाएँ प्रजा की भलाई का दम भरती हुई हर एक तरह का क़ानून बनाती हैं और अनेक प्रकार के सुधार में हाथ लगाती हैं, पर जो प्रजा के लिए बहुत ही ज़रूरी है और केवल जिससे ही मौजूदा हालत सुधर सकती है उसकी ओर अर्थात् ज़मींदारी की प्रथा मिटाने की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं देती। अतएव यह आशा करना व्यर्थ है कि सरकार ज़मींदारी की प्रथा उठा कर किसानों और मज़दूरों को स्वतन्त्र कर देगी।

अब सवाल यह उठता है कि किसान और मज़दूर, धनी मालिकों, ज़मींदारों और ताल्लुक़ेदारों के अत्याचार से किस तरह छूट सकते हैं? अगर किसान और मज़दूर ध्यानपूर्वक अपने ऊपर होनेवाले अत्याचारों के कारणों पर विचार करें तो उन्हें पता लगेगा कि उनके हाथ में एक ऐसा औज़ार है जिसके ज़रिये से वे ख़ुद ही बिना किसी मदद के आज़ाद हो सकते हैं और कोई भी उन्हें इस आज़ादी को हासिल करने से नहीं रोक सकता।

वास्तव में देखा जाय तो किसानों और मज़दूरों की इस मुसीबत से भरी हुई हालत का सबब सिर्फ़ एक है, और वह यह कि जो खेत और ज़मीन किसानों तथा मज़दूरों के लिए बहुत ही ज़रूरी हैं उन पर ज़मींदारों, ताल्लुक़ेदारों और महाजनों का क़ब्ज़ा जमा हुआ है।

अगर किसान और मज़दूर इन सब ज़मीनों और खेतों को अपने लिए जोतने बोने की कोशिश करें तो सरकारी फ़ौजें जाकर फ़ौरन उन लोगों को मारपीट कर भगा देंगी, या उन्हें जान से मार डालेंगी और ज़मीन फिर ज़मींदारों के क़ब्ज़े में चली जायगी । प्यारे किसानो और मज़दूरो, क्या आप लोगों को मालूम है कि इन फ़ौजों में कौन लोग शामिल हैं ? और कोई नहीं, सिर्फ़ आप ही लोग उनमें भर्ती हैं । आप ही लोग सिपाही बन कर और फ़ौजी हुक्म मान कर ज़मींदारों को ऐसा मौक़ा देते हैं कि वे उन ज़मीनों पर अपना क़ब्ज़ा जमावें जो उनके क़ब्ज़े में हरगिज़ न होनी चाहिये ।

इसके अलावा आप ही लोग हैं जो ज़मींदारों के लिये उनके खेत जोतते बोते हैं और उनसे खेत लगान पर लेते हैं । इस तरह से भी आप ज़मींदारों को ऐसा मौक़ा देते हैं कि वे उन ज़मीनों पर अपना क़ब्ज़ा जमावें जो उनके क़ब्ज़े में हरगिज़ न होनी चाहिये । प्यारे किसानो और मज़दूरो, अगर आप लोग ज़मींदारों के लिए उनके खेत जोतना बोना छोड़ दें और उनसे खेत लगान पर लेना बन्द कर दें तो ज़मींदार बहुत दिनों तक खेतों को अपने क़ब्ज़े में नहीं रख सकते, क्योंकि बिना जोता बोया खेत उनके किस काम का होगा । तब उनकी ज़मीन और खेत सब लोगों की समान सम्पत्ति हो जायगी । बिना मज़दूर और किसान के उनका एक मिनट भी काम न चल सकेगा और लाचार हो कर उन्हें किसानों और मज़दूरों की बात माननी पड़ेगी

इसलिए प्यारे किसानो और मज़दूरो, ग़ुलामी से छूटने का

एकमात्र उपाय यह है कि आप लोग यह समझ कर कि ज़मीन्दारी की प्रथा एक बहुत बड़ी पाप की प्रथा है — न तो सरकारी सिपाही बन कर, न ज़मींदारों के लिए उनके खेत जोत बो कर और न उनसे लगान पर खेत ले कर—उसमें कभी भी सहयोग या सहायता दें।

कुछ लोग शायद यह कहें कि "फौज में न भर्ती होने, लगान पर खेत न लेने और ज़मीन्दारों का खेत न जोतने बोने का जो उपाय आप ने बतलाया है वह तभी सफल हो सकता है जब कुल किसान और मजदूर हड़ताल करके फौज में भर्ती होने से इनकार कर दें, ज़मीन्दारों के लिए उनके खेत जोतना बोना बन्द कर दें, और उनसे लगान पर खेत लेना छोड़ दें। पर ऐसा होना कभी भी सम्भव नहीं है। अगर कुछ मज़दूर और किसान फ़ौज में भर्ती होना, लगान पर खेत लेना इत्यादि बन्द कर दें तो बाक़ी किसान और मज़दूर इसी तरह करने को कभी राज़ी न होंगे और खेत तथा ज़मीन पहले की तरह ज़मीन्दारों के क़ब्ज़े में बनी रहेगी। इस तरह से किसी को फ़ायदा होना तो दूर रहा, उलटे उन्हीं किसानों और मज़दूरों का नुक़सान हो जायगा जो ऐसा करने का साहस करेंगे।"

यदि यहां पर प्रश्न हड़ताल का होता तो उक्त कथन बिलकुल ठीक कहा जाता। पर हमारा प्रस्ताव तो हड़ताल करने का नहीं है। हम सिर्फ़ यह कहते हैं कि मज़दूर और किसान फ़ौजों में भर्ती होना, ज़मीन्दारों के लिए उनके खेत जोतना बोना या उनसे खेत लगान पर लेना बन्द कर दें—इसलिए नहीं कि इन कामों से मज़दूरों और किसानों को नुक़सान पहुंचता है और उनकी ग़ुलामी की ज़ंजीर मज़बूत होती है, बल्कि इसलिए कि बुराई का

साथ देना और उसमें सहयोग करना भी एक बुरा काम और गुनाह है। इसलिये इन कामों को वैसा ही बुरा समझना चाहिये जैसा कि आप चोरी, बदमाशी, डाकाज़नी और ख़ून को बुरा समझते हैं। अगर एक बार भी यह बात आपकी समझ में आजाय कि ज़मीन्दारी की प्रथा में कोई भाग लेने से या उसमें किसी तरह की मदद देने से क्या नतीजे निकलते हैं तो आप कभी भी उससे कोई सम्बन्ध न रक्खेंगे। ज़मीन्दारी की प्रथा क़ायम रखने का मतलब यह है कि लाखों और करोड़ो आदमी, औरत और बच्चे क़हत और ग़रीबी के शिकार हो कर ज़िन्दगी भर तकलीफ़ उठावें। ज़मीन और खेत ज़मीन्दारों के हाथ में रहने से नतीजा यह निकलता है कि लाखों किसान हद से ज़्यादा काम करने और बहुत ही कम भोजन करने से समय के पहले ही इस दुनिया से कूच कर देते हैं।

अगर ज़मीन्दारी की प्रथा से यह हानियां होती हैं, अगर इसके कारण लाखों आदमी भूख और अकाल से मर जाते हैं तो यह साफ़ तौर पर ज़ाहिर है कि ज़मीन्दारी के काम में शरीक होना या उसमें किसी तरह की मदद देना एक तरह का पाप और बुरा काम है जिससे हरएक किसान और मज़दूर को हरएक प्रकार की तकलीफ़ उठा कर भी बचना चाहिये।

मैं आपसे हड़ताल करने के लिए नहीं कहता। मैं तो सिर्फ़ यह चाहता हूं कि आप ज़मीन्दारी में किसी प्रकार का भी हिस्सा लेना पाप और गुनाह समझें और उससे फ़ौरन बचने की कोशिश करें। यह सच है कि हड़ताल में जिस तरह लोग फ़ौरन एक हो जाते हैं उस तरह इस काम में तुरन्त एक नहीं हो सकते और न वह सब नतीजे फ़ौरन हासिल हो सकते हैं जो हड़ताल के सफल

होने पर हासिल होते हैं। पर जमींदारी से कोई सम्बन्ध न रखने के आन्दोलन में जो लोग शरीक होंगे उनमें ऐसी दृढ़ और स्थायी एकता पैदा होगी जो हड़ताल से हरगिज़ नहीं पैदा होसकती। हड़ताल के समय जो एकता रहती है वह हड़ताल टूटने पर या हड़ताल का उद्देश सफल होने पर फ़ौरन हवा हो जाती है, पर जब एक विचार और एक विश्वास के लोग आपस में एका करते हैं तो वह एका टूटने के बजाय दिन पर दिन दृढ़ होता जाता है। इसी तरह से जो लोग यह समझ कर आपस में एका करेंगे कि ज़मींदारी से कोई सम्बन्ध रखना बड़ा भारी पाप और गुनाह है वे कभी भी अपने उद्देश से न डिगेंगे और न अपने एका को तोड़ेंगे। शुरू शुरू में शायद बहुत थोड़े किसान और मज़दूर ऐसे निकलेंगे जो ज़मींदारी की प्रथा से अपना सारा सम्बन्ध तोड़ने के लिए तैयार हों पर चूंकि ऐसे लोग केवल अपने विश्वास की दृढ़ता पर निर्भर हो कर ऐसा करेंगे इसलिए उनके उदाहरण का दूसरे किसान और मज़दूर भी अनुकरण करेंगे और ऐसे लोगों की संख्या दिन पर दिन बढ़ती जायगी।

ज़मींदार और ज़मींदारी से किसी प्रकार का भी सम्बन्ध रखना एक बड़ा भारी पाप है, इस विश्वास के पैदा हो जाने से समाज में क्या परिवर्तन होगा, यह बतलाना असम्भव है; किन्तु परिवर्तन होगा अवश्य। यह विश्वास जितनाही अधिक किसानों और मज़दूरों में फैलेगा, उतने ही महत्व का परिवर्तन समाज में होगा। जब कुछ किसान और मज़दूर इस विश्वास के अनुसार काम करेंगे और ज़मींदारों के खेत जोतने बोने तथा उनसे खेत लगान पर लेने से इनकार करेंगे तो सम्भव है कि ज़मींदार लोग यह समझ कर कि ज़मींदारी से अब कोई लाभ नहीं है या तो किसानों और मज़दूरों

के साथ समझौता कर लें या ज़मीन्दारी करना बिल्कुल छोड़ दें। या यह भी सम्भव है कि जब वह सब किसान और मज़दूर जो फ़ौज में भर्ती हैं अपने भाइयों को दबाने और उन पर गोली चलाने से इनकार करेंगे तो सरकार लाचार हो कर स्वयं जमीन्दारों का साथ छोड़ देगी और इस तरह से कुल ज़मीन और खेत ज़मीन्दारों के चंगुल से छूट जायंगे। या यह भी सम्भव है कि जब सरकार यह देखेगी कि बिना किसानों और मज़दूरों को स्वतंत्र किये काम नहीं चल सकता तो वह स्वयं क़ानून बना कर ज़मीन्दारी की प्रथा हमेशा के लिए उठा देगी।

किसानों और मज़दूरों में इस तरह का विश्वास पैदा हो जाने से यह निश्चय है कि बड़े बड़े परिवर्त्तन होंगे पर उन परिवर्त्तनों का स्वरूप क्या होगा, यह बतलाना बड़ा कठिन है। पर यह निश्चय है कि यदि सच्चे हृदय से ईश्वर की प्रेरणा के अनुसार इस प्रश्न को हल करने का यत्न किया जायगा तो उसका फल अवश्य मिलेगा। इस प्रकार का कोई प्रयत्न कभी भी निष्फल नहीं जाता।

जब अधिकतर लोग किसी काम के विरुद्ध होते हैं तो अक्सर लोग कहा करते हैं, "हम इतने आदमियों के विरुद्ध अकेले क्या कर सकते हैं।" कुछ लोगों का यह ख्याल है कि किसी काम की सफलता के लिए यह ज़रूरी है कि या तो कुल, या अधिकतर आदमी उसमें शामिल हों। पर वास्तव में किसी बुरे काम के लिए यह ज़रूरी है कि उसमें "बहुतसे लोग" शामिल हों। किसी भले काम के लिए अकेला होना ही काफ़ी है, क्योंकि ईश्वर सदा उसके साथ रहता है जो भला काम करता है। और जिसके साथ ईश्वर है उसीका साथ, चाहे जल्दी हो या देर, कुल आदमी देंगे। कम से कम मज़दूरों और किसानों की हालत में सब प्रकार

का सुधार तभी होगा जब वे ईश्वर की प्रेरणा के अनुसार सच्चे हृदय से अपने विश्वास को अमली तौर पर काम में लाने का प्रयत्न करेंगे।

किसानों और मज़दूरों की हालत सुधारने का एकमात्र सच्चा उपाय यह है कि ज़मींदारी की प्रथा उठा दी जाय और ज़मीन तथा खेत ज़मींदारों के पञ्जे से रिहा कर दिये जांय। ज़मींदारी की प्रथा तभी उठ सकती है और ज़मीन तथा खेत ज़मींदारों के पञ्जे से तभी छूट सकते हैं जब किसान और मज़दूर भाई फ़ौज में भर्ती हो कर अपने भाइयों पर गोली चलाना, ज़मींदारों के लिए उनके खेत जोतना, बोना और ज़मींदारों से उन के खेत लगान पर लेना बन्द कर दें। पर सिर्फ़ यही काफ़ी नहीं है कि खेत ज़मींदारों के पञ्जे से छूट जांय। इसके अलावा आपको, पहले से यह भी जानने की ज़रूरत है कि जब ज़मीन और खेत ज़मींदारों के पञ्जे से छूट जांय तो फिर उनका इन्तज़ाम किस तरह किया जाय और वे मज़दूरों तथा किसानों में किस तरह से बांटे जांय।

ज़्यादातर आदमियों का यह ख़्याल है कि ज्यों ही ज़मींदारों के हाथ से खेती-बारी किसानों के हाथ में आ जायगी त्यों ही सब ठीक हो जायगा। पर बात ऐसी नहीं है। यह कह देना तो सहज है कि ज़मीन ज़मींदारों के क़ब्ज़े से छुड़ा कर किसानों और मज़दूरों को दे दी जाय, पर सवाल यह है कि ऐसा इन्तज़ाम किस तरह किया जाय जिससे न तो किसी के साथ अन्याय हो और न फिर अमीरों और पूंजीवालों को यह मौक़ा मिले कि वे बड़ी बड़ी ज़मीन और खेत ख़रीद कर फिर किसानों और मज़दूरों को अपना ग़ुलाम बना सकें। कुछ लोगों का यह ख़्याल है कि जब ज़मीन और खेत ज़मींदारों के पञ्जे से छूट जायंगे तो हर एक किसान और मज़दूर

को यह अधिकार रहेगा कि वह जहां पावे वहां खेत जोत बो कर अपने और अपने बाल-बच्चों के भोजन के लिए काफ़ी अनाज पैदा कर सके । पुराने ज़माने में ऐसा ही हुआ करता था । पर आज कल ऐसा होना वहीं सम्भव है जहां आबादी तो बहुत कम और ज़मीन बहुत ज्यादा पड़ी हुई है । लेकिन जहां आबादी बहुत ज्यादा है और ज़मीन इतनी ज्यादा नहीं है कि उनके लिए काफ़ी अनाज पैदा कर सके और जहां ज़मीन एक ही क़िस्म की नहीं बल्कि घटिया और बढ़िया तथा अच्छी और बुरी दोनों क़िस्म की है तो वहां ज़मीन से फ़ायदा उठाने का दूसरा ही उपाय काम में लाना चाहिए । आप शायद यह कहें कि हर आदमी-पीछे थोड़ी थोड़ी ज़मीन बांट दी जाय तो बटवारा ठीक हो सकता है । लेकिन अगर ऐसा किया जाय तो ज़मीन उन लोगों के हिस्से में भा पड़ जायगी जो खेती करना बिल्कुल नहीं जानते और जो अपने हाथ से काम करना बिल्कुल पसन्द नहीं करते । इसका नतीजा यह होगा कि जिन लोगों को खेती करना नहीं आता या जो खेती करना नहीं पसन्द करते वे अपना हिस्सा धनी ख़रीदारों के हाथ बेच डालेंगे । इस तरह से फिर बहुत से निकम्मे, आलसी और हाथ से काम न करनेवाले मनुष्य दिखलाई पड़ने लगेंगे । अब आप शायद यह कहेंगे कि अच्छा ऐसे लोगों के लिए यह मुमानियत कर दी जाय कि वे अपनी ज़मीन दूसरे के हाथ न तो बेच सकें और न उसका पट्टा दूसरे के नाम लिख सकें । पर ऐसी मुमानियत होने से उन लोगों की ज़मीन बिना जोती बोई पड़ी रहेगी जो या तो खेती का काम नहीं जानते या करना नहीं चाहते । बहुत दिनों से लोग इसी तरह के सवालों को हल करने में लगे हुए हैं, और किसानों तथा मज़दूरों में ज़मीन का ठीक ठीक बटवारा करने के लिए बहुत सी

तरकीबें निकाली गई हैं।

साम्यवाद के माननेवालों में एक दल ऐसा है जो यह कहता है कि ज़मीन सब लोगों की समान संपत्ति समझी जानी चाहिए और सब लोग एक साथ मिल कर उसे जोतें बोवें। इसके अलावा ज़मीन का ठीक ठीक बटवारा करने के लिए कई भिन्न भिन्न प्रस्ताव समय समय पर लोगों ने किये हैं जिनके बारे में संक्षेप से नीचे लिखा जाता है :—

एक प्रस्ताव स्काटलैण्ड-निवासी विलियम ओगिलिवी का है जो अट्ठारहवीं सदी में ज़िन्दा था। उसका कहना यह था कि हर एक मनुष्य का यह अधिकार है कि वह ज़मीन का कुछ निश्चित भाग जोत बो कर उससे अपना तथा अपने कुटुम्ब का पालन करे, इसलिए किसी को यह अधिकार न होना चाहिए कि वह जितनी चाहे उतनी ज़मीन अपने क़ब्ज़े में रख कर दूसरे किसानों और मज़दूरों को नुक़सान पहुंचा सके। ज़मीन का बटवारा बराबर के हिस्सों में हो जाने के बाद हर एक मनुष्य को यह अधिकार होना चाहिए कि वह अपने हिस्से की ज़मीन पर स्वतंत्रता के साथ अधिकार जमा सके। अगर किसी आदमी के पास अपने हिस्से से अधिक ज़मीन हो तो उसको यह लाज़िम होगा कि वह सरकार को एक प्रकार का टैक्स या लगान अदा करे।

टामस स्पेन्स नामक एक अंगरेज़ ने, छ साल के बाद, इस प्रश्न को हल करने के लिए यह प्रस्ताव किया कि हर एक गांव की भूमि उस गांव के रहनेवालों की समान संपत्ति समझी जाय। इसलिए गांववाले जिस तरह से चाहें उस तरह से उस भूमि का उपयोग कर सकते हैं। इस प्रस्ताव के अनुसार कोई भी अपनी व्यक्तिगत हैसियत से ज़मीन पर अधिकार नहीं जमा सकता।

"मनुष्यों के अधिकार" नामक ग्रन्थ के रचयिता टामस पेन महाराय ने भी इसी तरह इस प्रश्न को हल करने का प्रयत्न किया। उनका प्रस्ताव यह था कि ज़मीन सबकी सम्पत्ति है, इसलिए व्यक्तिगत हैसियत से किसी को भी यह अधिकार न होना चाहिए कि वह ज़मीन के किसी हिस्से पर अपना क़ब्ज़ा जमा सके। इसीलिए उन्होंने यह प्रस्ताव किया कि जब किसी ज़मीन या खेत का मालिक मरे तो वह खेत या ज़मीन उसके लड़के या वारिसों को न मिलकर गांव की समान संपत्ति हो जाय।

टामस पेन के बाद, पिछली शताब्दी में पेट्रिक एडवर्ड डोव हुए हैं। उन्होंने भी इसके सम्बन्ध में बहुत कुछ विचारा और लिखा है। डोव का मत यह था कि ज़मीन की क़ीमत दो ज़रिये से बढ़ती है—एक तो यह कि बाज़ ज़मीन स्वभाव से ही अच्छी और उपजाऊ होती है और दूसरे यह कि बाज़ ज़मीन मेहनत और परिश्रम से अच्छी बनाई जा सकती है। जिस ज़मीन की क़ीमत किसी की मेहनत से बढ़ाई गई हो वह उस मनुष्य की व्यक्तिगत संपत्ति हो सकती है। पर जिस ज़मीन की क़ीमत उसके स्वाभाविक अच्छेपन और उपजाऊपन पर निर्भर हो वह कुल जाति या समुदाय की गिनी जानी चाहिए। उसपर किसी एक मनुष्य या कुटुम्ब का नहीं बल्कि कुल जाति का अधिकार होना चाहिए।

पर मेरी राय में इन सबों से बढ़ कर अमली और माक़ूल प्रस्ताव हेनरी जार्ज नाम के एक अंगरेज़ सज्जन का है, जो नीचे लिखा जाता है।

जहां तक मैं समझता हूं हेनरीजार्ज महाराय का प्रस्ताव और प्रस्तावों की अपेक्षा अधिक न्यायपूर्ण, लाभदायक और अमल

में लाने के योग्य है। संक्षेप में उनका प्रस्ताव यह है:— मान लीजिये कि किसी गांव की कुल ज़मीन दो ज़मींदारों के क़ब्ज़े में है। उनमें से एक ज़मींदार बहुत ही अमीर है जो अपने ज़मींदारी में न बस कर दूर शहर में बसता है और दूसरा ज़मींदार अमीर नहीं है पर उसी गांव में रहता है और स्वयं खेतीबारी करता है। इनके अलावा उस गांव की कुछ ज़मीन एक सौ किसानों के क़ब्ज़े में भी है। उस गांव में बहुत से आदमी ऐसे भी रहते हैं जिनके क़ब्ज़े में एक इंच ज़मीन भी नहीं है। उनमें से कोई मज़दूरी करता है, कोई बढ़ई का काम करता है, कोई लोहारी करता है, कोई रोज़गार करता है, कोई दूकान रक्खे है और कोई सरकारी नौकर है। अब मान लीजिये कि उस गांव के कुल रहनेवालों ने यह निश्चय किया कि गांव की कुल ज़मीन सबकी समान संपत्ति होनी चाहिए। इस निश्चय के अनुसार उन लोगों ने यह तै किया कि जिन लोगों के क़ब्ज़े में जितनी ज़मीन है वह उन लोगों के क़ब्ज़े में बनी रहे पर उस ज़मीन से जितनी आमदनी उन लोगों को होती हो उसे वे गांव के ख़ज़ाने में जमा कर दें। उस ज़मीन से कितनी आमदनी हो सकती है इसका अन्दाज़ा खेत के उपजाऊपन या अनउपजाऊ-पन से लगाया गया। इसके बाद इस तरह से जितना रुपया इकट्ठा हुआ उसे उन्होंने आपसमें बाटने का निश्चय किया।

लेकिन इस तरह से रुपया इकट्ठा करके फिर उस गांव के हरएक निवासी में बाटना बड़ा झंझट का काम है। इसके अलावा गांव के कुल निवासियों को सफ़ाई, चौकीदारी, सड़क बनवाई आदि के लिए कुछ रुपया देना पड़ता है और यह रुपया इन सब ज़रूरी कामों के लिए काफ़ी नहीं होता। इसलिए उस गांव के निवासियों ने ज़मीन से होनेवाली आमदनी को इकट्ठा करने, फिर

उसे सब लोगों में बांटने और फिर सबोंसे उनकी आमदनी का कुछ हिस्सा टैक्स के तौर पर वसूल करने के बजाय यह तै किया कि ज़मीन से जितनी आमदनी हो वह सब लोगों की आवश्यकता पूरी करने में ख़र्च की जाय।

इस निश्चय के बाद गांव के निवासियों ने दोनों ज़मींदारों से तथा उन किसानों से जिनके हाथ में थोड़ी थोड़ी ज़मीन थी यह कहा कि भाई तुम्हारे क़ब्ज़े में जितनी ज़मीन है उसके मुताबिक़ रक़म गांव के ख़ज़ाने में जमा करो। जिनके पास कोई ज़मीन न थी उनसे कुछ भी न मांगा गया। उनसे सिर्फ़ यही कहा गया कि लगान से वसूल किये गये रुपये द्वारा जो कुछ सुधार के काम गांव में किये जांय उनसे तुम मुफ़्त में फ़ायदा उठा सकते हो।

इस प्रस्ताव को काम में लाने से यह नतीजा निकला कि वह ज़मींदार जो अपनी ज़मींदारी में न रह कर शहर में रहता था, इस तरह के टैक्स या लगान का सहना अपने बूते से बाहर समझ कर, ज़मींदारी को छोड़ कर भाग खड़ा हुआ। पर दूसरा ज़मींदार जो स्वयं खेती-बारी करता था उस गांव में बना रहा। उसने अपनी ज़मींदारी का सिर्फ़ एक हिस्सा अपने क़ब्ज़े से निकाल दिया। उसने सिर्फ़ उतनी ही ज़मीन अपने क़ब्ज़े में रक्खी जितने से कि वह लगान अदा करने के बाद कुछ बचा भी सकता था।

जिन किसानों के पास थोड़ी ज़मीन थी, जिन लोगों के पास काफ़ी ज़मीन न थी या जिन लोगों के पास बिल्कुल ही ज़मीन न थी उन लोगों ने ज़मींदारों से छोड़ी गई ज़मीन को ले लिया। इस तरह से कुल गांव के रहनेवालों के पास कुछ न कुछ ज़मीन हो गई और वे अपना पेट पालने के क़ाबिल हो गए। इस उपाय से कुल ज़मीन उन लोगों के हाथों में आ गई जो खेती-बारी करना

पसन्द करते थे और उससे बहुत कुछ पैदा करने के योग्य थे । इस प्रकार सर्वसाधारण की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पहले से बहुत अधिक रुपया मिलने के कारण गांव में बहुत अधिक सुधार हो गया । नए नए स्कूल खुल गये, अस्पताल बन गए, रोशनी का इन्तज़ाम हो गया, सफ़ाई का प्रबन्ध होने लगा, सड़कों की मरम्मत कराई गई और नई नई सड़कें इत्यादि बनाई गई । इनके अलावा सब से बड़ी बात तो यह हुई कि यह सब परिवर्त्तन बिना लड़ाई-झगड़े, मार-काट या उपद्रव के हो गया । यही हेनरी जार्ज का प्रस्ताव है जो संसार के हर एक देश की हालत के मुताबिक़ अख्तियार किया जा सकता है ।

जो कुछ मैंने ऊपर आप लोगों से कहा है उसे अब मैं संक्षेप में दुहराना चाहता हूं । प्यारे किसानो और मज़ूरो, सब से पहली बात जो मैं आप से कहना चाहता हूं, वह यह है कि आप लोगों को सिर्फ़ एक बात की ज़रूरत है और वह यह कि ज़मीन पर आप का स्वतन्त्र अधिकार रहे और उस अधिकार पर हस्तक्षेप करने वाला कोई न हो, जिसमें कि, आप लोग स्वतन्त्रता के साथ रह कर अपना और अपने बाल बच्चों का गुज़ारा आराम के साथ कर सकें ।

दूसरी बात मैं आप से यह कहना चाहता हूं कि आप अपनी आवश्यकता के अनुसार ज़मीन पर अधिकार न तो मारपीट से पा सकते हैं न लड़ाई दंगा या हथियार के ज़ोर से पा सकते हैं, न हड़ताल करके पा सकते हैं, न पार्लियामेन्ट या कौंसिल में अपना प्रतिनिधि भेज कर पा सकते हैं, बल्कि जिस बात को आप लोग पाप, बुराई या अन्याय समझते हों उसमें भाग न लेने से—उससे कोई सम्बन्ध न रखने से ही—आप इस अधिकार को पासकते हैं । अर्थात्

आप का सब से बड़ा शस्त्र यह है कि आप न तो फ़ौज में भर्ती हों, न ज़मींदारों के लिए उनका खेत जोतें बोयें और न उनसे खेत लगान पर लें ।

तीसरी बात मैं आप से यह कहना चाहता हूं कि आप इस बात पर पहले ही से विचार कर लें कि जब ज़मीन और खेत ज़मींदारों के पंजे से छूट जायेंगे तो आप उनका बटवारा किस तरह से करेंगे । इस बात पर ठीक तौर से विचार करने के लिए आप को यह न समझ लेना चाहिए कि जो ज़मीन ज़मींदारों के क़ब्ज़े से छूटेगी वह आपकी संपत्ति हो जायगी । याद रखिये कि ज़मीन का ठीक ठीक और उचित बटवारा तभी हो सकता है और उससे सब लोगों का समान रूप से लाभ तभी हो सकता है जब वह सब लोगों की समान संपत्ति गिनी जाय । जिस तरह सूर्य का प्रकाश और हवा किसी एक मनुष्य की संपत्ति नहीं बल्कि सब लोगों की समान संपत्ति है उसी तरह ज़मीन और खेत भी किसी एक आदमी की सम्पत्ति नहीं बल्कि सब लोगों की समान संपत्ति होनी चाहिए । जब आप ऐसा समझेंगे तभी आप भूमि और खेत का बटवारा न्याय के साथ उचित रीति पर कर सकेंगे ।

चौथी और सब से बड़ी बात जिस पर मैं सब से ज़्यादा ज़ोर देना चाहता हूं यह है कि आप सरकार, कर्म्मचारी या ज़मींदार किसी के साथ भी उद्दण्डता का व्यवहार न करें । इन लोगों को आप मार-काट, उपद्रव, खून-ख़राबा और साम्यवादियों की कार्रवाइयों से नहीं जीत सकते । आप तो केवल सत्याग्रह, असहयोग और अहिंसा के बल से इन्हें जीत सकते हैं ।

लोगों में यह ग़लत ख्याल फैलाहुआ है कि हमारी मुसीबत और ख़राब हालत का सबब हम में नहीं बल्कि हमसे बाहर किसी दूसरी

चीज में है। वे अपना सुधार करने के बदले अपने से बाहर दूसरी चीज़ों के सुधार में लग जाते हैं। अगर वे सच्चे हृदय से इस बात की खोज में लगें कि उनकी बुरी हालत का सबब क्या है तो उन्हें अपने में ही सब बुराइयां दिखलाई पड़ेंगी । बाइबिल में लिखा है, "यदि तुम सब से पहले ईश्वर के राज्य की और ईश्वरीय-सत्य की खोज में लगो तो सब बातें आप ही आप तुम्हें मिल जायंगी"। यही मनुष्य-जीवन का सब से बड़ा निचोड़ है । यदि आप ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध ख़राब जीवन व्यतीत करेंगे तो आप कितना ही प्रयत्न क्यों न करें आप की हालत नहीं सुधर सकती और न आप का उद्देश्य सफल हो सकता है। यदि आप ईश्वर की इच्छा के अनुकूल सत्य, अहिंसा और न्याय का जीवन व्यतीत करेंगे, यदि आप सत्य और न्याय के लिए अपने जीवन तक की भी परवाह न करेंगे तो आपका सुधार और आप के उद्देश्य की पूर्त्ति आप ही आप हो जायगी। मजदूर और किसान भाइयो, जब आप ऐसा करेंगे तभी आप गुलामी से आजाद हो जायेंगे। बाइबिल में ठीक कहा है, "सत्य को पहचानो और वह तुम्हें आप ही आजाद कर देगा।"

२—सिर्फ़ एक उपाय है।

कुल दुनिया में एक सौ करोड़ या एक अरब से ज्यादा मजदूर और किसान होंगे। जितना अनाज, जितना धन, जितना कपड़ा, जितनी ऐशो-आराम की चीज़ें दुनिया में दिखलाई पड़ती हैं वे सब मजदूरों और किसानों की पैदा की हुई हैं। पर इन

सब चीज़ों से उन्हें कोई फ़ायदा नहीं होता। अगर किसी को फ़ायदा होता है तो केवल सरकार, अमीर, ज़मींदार और पूंजीवालों को होता है। मज़दूर और किसान बेचारे तो हमेशा मामूली खाने और कपड़े के लिए भी तरसते हैं। उनकी छोटी से छोटी आवश्यकताएँ भी अच्छी तरह से नहीं पूरी होतीं। वे सदा अविद्या के अन्धकार में पड़े रहते हैं। वे अन्न पैदा करते हैं पर आप भूखे रह जाते हैं। वे कपड़ा बुनते हैं पर आप जाड़ों में भयानक सरदी से ठिठरे रहते हैं। वे अधिक टक्स और लगान देते हैं पर उस टैक्स के बदले में उन्हें उतना फ़ायदा नहीं हासिल होता जितना दूसरों को होता है। सबसे पहले वही प्लेग और अकाल के शिकार होते हैं। इससे भी बढ़कर आश्चर्य की बात तो यह है कि जो अमीरों और ऊंची जातवालों के लिए अन्न पैदा करते हैं, कपड़ा बुनते हैं, नगर की सफ़ाई रखते हैं, अपने टैक्स के रुपये से स्कूल और कालिज खोलते हैं वे हमारे समाज में सबसे नीच समझे जाते हैं। उनका छूना भी पाप समझा जाता है!

मज़दूरों और किसानों के हाथ से निकल कर ज़मीन और खेत उन लोगों के हाथ में चले गए हैं जो स्वयं खेती-बारी नहीं करते बल्कि दूसरों से खेती-बारी करवाते हैं। इसलिए मज़दूरों और किसानों को मजबूर हो कर वही करना पड़ता है जो ज़मीन और खेत के मालिक कहते हैं। अगर मज़दूर या किसान खेती-बारी छोड़कर किसी की नौकरी करता है या कल-कारख़ानों में भर्ती होता है तो वह दूसरे धनी आदमियों या पूंजीवालों के चक्कर में पड़कर ग़ुलामी में फँस जाता है। इन अमीरों और पूंजीवालों के लिए उसे ज़िन्दगी भर दस, बारह, चौदह या कभी कभी इससे भी अधिक घण्टों तक काम करना

पड़ता है। वहां उसकी तन्दुरुस्ती और ज़िन्दगी चौपट हो जाती है। वह बहुत सी बीमारियों और बुरी आदतों का शिकार हो जाता है। अगर उसे कोई ऐसा काम मिल जाता है जिसके द्वारा उसकी सब आवश्यकताएँ पूरी हो सकती हैं तो वह अपनी मेहनत से पैदा किए हुए धन का उपभोग स्वतंत्रता के साथ नहीं कर सकता। उसके ऊपर अनेक प्रकार के टैक्स और लगान लगाये जाते हैं जिनके बोझ के नीचे वे हमेशा के लिए दबे रहते हैं। उनमें से लालच देकर कुछ फ़ौजों में भी भर्ती कर लिए जाते हैं। कम से कम उन सबों को फ़ौजी कामों के लिए टैक्स तो ज़रूर ही अदा करना पड़ता है, क्योंकि जो रुपया वे टैक्स के तौर पर सरकार को अदा करते हैं उसका बहुत बड़ा हिस्सा फ़ौजों पर ख़र्च कर दिया जाता है। अगर वह बिना टैक्स या लगान दिए हुए ज़मीन या खेत जोतता है, या हड़ताल करता है, या दूसरे किसानों और मज़दूरों को काम पर जाने से रोकता है, या टैक्स अथवा लगान देने से इनकार करता है तो फ़ौजें उसके ख़िलाफ़ भेजी जाती हैं और वह या तो गोली से मार डाला जाता है या घायल कर दिया जाता है या काम करने तथा टैक्स या लगान अदा करने के लिए मजबूर किया जाता है।

इस तरह से कुल दुनिया के किसान और मजदूर मनुष्य की तरह नहीं बल्कि बोझा ढोनेवाले जानवरों की तरह जिन्दगी बसर करते हैं। जिन्दगी भर वे उन सब कामों को करने के लिए मजबूर किये जाते हैं जो उन के लिए हरगिज़ ज़रूरी नहीं हैं। अगर वे काम ज़रूरी हैं तो सिर्फ़ उन लोगों के लिए जो उन पर अत्याचार करते हैं और उन्हें ग़ुलाम बनाए रखने में ही अपना फ़ायदा समझते हैं। जो काम और मेहनत उनसे ली जाती है उसके बदले

में उन्हें सिर्फ़ इतना ही खाना, कपड़ा और पैसा दिया जाता है जिससे कि वे ज़िन्दा रह कर अपने मालिकों के लिए लगातार काम कर सकें। पर थोड़े से ज़मींदार, अमीर और पूंजीवाले मज़दूरों और किसानों को ग़ुलाम बना कर उनके पैदा किये हुए धन से मालामाल रहते हैं, चैन की वंशी बजाते हैं और बेक़ायदा ऐशो-आराम की चीज़ों में करोड़ों आदमियों की मेहनत से पैदा की हुई दौलत पागल की तरह बर्बाद किया करते हैं।

रूस के ज़ार निकोलस द्वितीय के तिलकोत्सव के समय मास्को में लोगों को मुफ़्त में शराब और रोटी बांटी गई। जब झुण्ड के झुण्ड लोग उस जगह की ओर रवाना हुए जहां यह सब चीज़ें बांटी जा रही थीं तो वहां इतनी भीड़ हुई कि लोग आपस में धक्कम-धक्का करने लगे। जो लोग आगे की ओर थे वे पीछे की ओरवालों से ढकेल दिये गए। सब एक दूसरे को धक्का देने और ढकेलने लगे। जो कमज़ोर थे वे मज़बूत आदमियों से कुचल डाले गए। पीछे की ओर से आदमियों का इतना रेला था कि मज़बूत से मज़बूत आदमी भी उस भीड़ के धक्के को न बर्दाश्त कर सके और जहां खड़े थे वहीं गिर कर अधमरे हो गये। इस तरह से कई हज़ार मर्द, औरत, बुड्ढे और जवान भीड़ से दब कर मौत के शिकार हो गए।

जब सब मामला ख़त्म हुआ तो लोग आपस में बहस करने लगे कि इस भयानक घटना के लिए दोषी कौन है। किसी ने कहा पुलीस इसके लिए अपराधी है, किसी ने कहा पुलीस नहीं बल्कि वे लोग अपराधी हैं जिनके हाथ में बाटने का इन्तज़ाम था। किसी ने कहा सब अपराध बादशाह का है। न वह इस तरह की बेहूदा तजवीज़ करता न इतने आदमियों की जान जाती। उन लोगों ने

सिवाय अपने और हर एक का इस घटना के लिए दोषी ठहराया । पर वास्तव में देखा जाय तो दोषी वही लोग थे जो थोड़ी सी रोटी और एक प्याला शराब के लिए बिना इस बात का ख्याल किये हुए दौड़ पड़े कि दूसरे आदमी मरेंगे या ज़िन्दा रहेंगे ।

क्या बिल्कुल यही हाल मज़दूरों और किसानों का नहीं है ? मज़दूरों और किसानों को अन्याय तथा अत्याचार इसीलिए सहना पड़ता है—उन्हें ग़ुलामी की हालत इसीलिए भोगनी पड़ती है—कि वे थोड़े से निकृष्ट लाभ के लिए स्वयं अपनी और अपने भाइयों की ज़िन्दगी बर्बाद कर देते हैं ।

मज़दूर और किसान सरकार की, ज़मींदारों की, पूंजीवालों की, कल-कारखाने के मालिकों की और फ़ौज के आदमियों की शिकायत करते हैं और सब दोष उन्हीं को देते हैं । पर ज़मींदार किसानों को इसी सबब से लूट सकते हैं, सरकार इसी कारण टैक्स या लगान इकट्ठा कर सकती है, कल-कारखाने के मालिक मज़दूरों पर इसीलिए मनमाना अत्याचार कर सकते हैं और फ़ौजें इसीलिए हड़तालों को दबा सकती हैं कि किसान और मज़दूर न सिर्फ़ सरकार, ज़मींदार, कल-कारखाने के मालिक और फ़ौज की मदद करते हैं बल्कि वे ख़ुद वही सब काम करते हैं जिनके लिए वे सरकार इत्यादि को दोषी ठहराते हैं । अगर कोई ज़मींदार बिना अपने हाथ से जोते बोये हज़ारों बीघा ज़मीन से फ़ायदा उठाता है तो इसका सबब सिर्फ़ यह है कि किसान और मज़दूर अपने थोड़े लाभ के लिए उनका हर एक काम कर देते हैं और उनका खेत इत्यादि जोत बो देते हैं । इसी तरह सरकार मज़दूरों और किसानों से टैक्स और लगान इसीकारण वसूल कर सकती है कि मज़दूर और किसान ख़ुद सरकार के साथ सहयोग करके उसकी सहायता करते हैं,

उसकी पुलीस तथा फ़ौज में भर्ती होते हैं और वह सब काम करते हैं जिनके लिए वे सरकार की शिकायत करते हैं। मज़दूर लोग यह शिकायत करते हैं कि कल-कारख़ाने के मालिक उन्हें मज़दूरी तो कम देते हैं पर काम उनसे बहुत ज़्यादा लेते हैं। पर इसका कारण भी यही है कि ख़ुद मज़दूर ही आपस में लाग-डाट कर के मज़दूरी कम करवा देते हैं। जहां एक मज़दूर अपनी जगह छोड़ता है कि बीसों मज़दूर उसकी जगह लेने के लिए तैयार हो जाते हैं। मज़दूरों में से ही बहुत से मेट, सरदार, फ़ोरमैन इत्यादि बन जाते हैं। मेट, सरदार, फ़ोरमैन इत्यादि अपने मालिकों की ख़ैरख़्वाही करने के लिए मज़दूरों की तलाशी लेते हैं, उन पर जुर्माना करते हैं और हर एक तरह से उन पर अत्याचार करते हैं।

किसान और मज़दूर यह भी शिकायत करते हैं कि अगर हम उस ज़मीन पर क़ब्ज़ा करते हैं जिस पर हमारा अधिकार होना चाहिए, अगर हम टैक्स लगान इत्यादि देने से इनकार करते हैं, अगर हम हड़ताल करते हैं तो फ़ौजें हमारे ख़िलाफ़ भेजी जाती हैं और हम पर गोलियां चलाई जाती हैं। पर देखिए फ़ौज में कौन लोग भर्ती हैं। और कोई नहीं, सिर्फ़ यही मज़दूर और किसान हैं जो रुपये के लोभ से या सज़ा के डर से उन फ़ौजों में भर्ती हैं। वे न्याय अथवा अन्याय की बिल्कुल परवाह न करते हुए शासकों और हाकिमों की आज्ञा के अनुसार हर एक को मारने के लिए तैयार रहते हैं।

अब आप साफ़ तौर पर देख सकते हैं कि किसान और मज़दूरों की यह मुसीबतभरी हालत उन्हीं के कामों से पैदा हुई है। अगर वे सरकार, अमीर, ज़मींदार और पूंजीवालों की मदद करना बन्द कर दें तो उनकी कुल मुसीबतें आपही आप दूर हो जायेंगी।

बुद्ध, ईसा, कन्फ्यूशियस आदि जितने बड़े बड़े महात्मा हो गए हैं सबों ने इस नियम की शिक्षा दी है, "दूसरों के साथ वैसाही बर्ताव करो जैसा कि तुम चाहते हो कि वे तुम्हारे साथ करें।" इस नियम का निचोड़ यही है कि यदि तुम चाहते हो कि दूसरे तुम्हारे साथ अन्याय और अत्याचार न करें तो तुम्हें भी दूसरों के साथ अन्याय और अत्याचार न करना चाहिए। यह नियम बहुत ही सीधा सादा है और फ़ौरन हर एक की समझ में आ सकता है। इस नियम के अनुसार चलने से मनुष्य की अधिक से अधिक भलाई हो सकती है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि ज्योंही यह नियम उसकी समझ में आ जाय त्योंही वह इसके अनुसार आचरण करने का भरपूर प्रयत्न करे और दूसरों को भी इसी के अनुसार चलने की सलाह दे। पर दुःख की बात है कि लोग इस नियम के अनुसार चलने से बिल्कुल इनकार करते हैं और उसकी शिक्षा से अपने बच्चों को वंचित रखते हैं। बहुत सी हालतों में तो लोग इस नियम को जानते भी नहीं और यदि जानते भी हैं तो इसे अनावश्यक और अमल में लाने के अयोग्य समझते हैं।

इस नियम का अधिक प्रचार लोगों में इसलिए नहीं हुआ कि जब इसका प्रचार प्रारम्भ हुआ उसके पहले ही हर एक जगह थोड़े से लोगों ने बहुत से लोगों पर अपना प्रभुत्व जमा लिया था। इन्होंने देखा कि अगर हम इस नियम के अनुसार चलते हैं और दूसरों को भी इसकी शिक्षा देते हैं तो कोई भी हमारा प्रभुत्व मानने को तैयार न होगा, क्योंकि इस नियम का सारांश यही है कि कोई किसी को अपने से नीचा न समझे अर्थात् सब एक दूसरे को अपने बराबर समझें।

प्रभुत्व रखनेवाले थोड़े से सरकारी कर्मचारियों, ज़मींदारों, अमीरों और पूँजीवालों ने यह देखा कि हमारा फ़ायदा इसी में है, कि जिन लोगों पर हमारा प्रभुत्व या अधिकार है वे हमेशा आपस में लड़ा करें, और एक दूसरे को अपने वश में लाने की कोशिश करते रहें। इसलिए इन बड़े आदमियों की कोशिश हमेशा से यही रही है कि जो लोग उनके नीचे या उनके अधिकार में हैं उनसे यह नियम सदा गुप्त रक्खा जाय। उन्हें यह नियम कहीं मालूम न हो जाय। इसलिए वे सैकड़ों और हज़ारों दूसरे नियम या क़ानून बना कर उनका ध्यान उस एक बड़े नियम से हटा देते हैं। वे ग़रीब किसानों, मज़दूरों और साधारण मनुष्यों को यह भुलावा देते हैं कि जो नियम हमने बनाये हैं वे तुम्हारे लाभ के लिए बहुत ही आवश्यक हैं, अगर तुम अपनी भलाई चाहते हो तो उन पर ज़रूर अमल करो।

ब्राह्मण, मोलवी, पुरोहित, पाधे, गुरु और महन्त इत्यादि कुछ और ही नियम, पूजा-पाठ, व्रत-नेम इत्यादि लोगों को सिखाते हैं जिनका इस नियम से कोई सम्बन्ध ही नहीं है। वे लोगों से कहते हैं कि देखो जो नियम, पूजा-पाठ, मन्त्र, होम, नेम, व्रत इत्यादि हम बतलाते हैं वे ईश्वर के बनाये हुए हैं। अगर तुम इन नियमों को तोड़ोगे तो याद रक्खो घोर नरक में भी तुम्हारा ठिकाना न लगेगा।

ब्राह्मण, पुरोहित, पाधा, मोलवी इत्यादि की तरह शासक और हाकिम लोग भी बहुत से ऐसे क़ानून बनाते हैं जो उस बड़े ईश्वरीय-नियम के बिल्कुल विरुद्ध हैं। हाकिम लोग उन क़ानूनों के बनाने के समय लोगों को यह धमकी देते हैं कि देखो अगर कोई इन क़ानूनों को तोड़ेगा तो उस पर अमुक दण्ड या जुर्माना लगाया जायगा।

थोड़े से पढ़े लिखे विद्वान् और धनी आदमी, जो न तो ईश्वर को मानते हैं और न उसके नियम को स्वीकार करते हैं, यह शिक्षा लोगों को देते हैं कि अर्थशास्त्र आदि का अध्ययन करो और उसके नियमों को जानो। यही नियम दुनिया में सब से बड़े नियम हैं। तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम इसी तरह आलसी जीवन बिताओ जिस तरह से कि आजकल के विद्वान् और धनी मनुष्य बिताते हैं। इस तरह की ज़िन्दगी तुम तभी बिता सकते हो जब तुम स्कूल, कालिज, थियेटर, क्लब, सभा इत्यादि में जाओगे, व्याख्यान-दाताओं के व्याख्यानों को सुनोगे, नाटक और बायस्कोप देखोगे, उपन्यास और कविताओं को पढ़ोगे इत्यादि। जब सब मज़दूर और किसान ऐसा करने लगेंगे तभी उनकी हालत सुधरेगी।

इन्हीं सब बातों और शिक्षाओं के कारण उस ईश्वरीय-नियम का प्रचार संसार में नहीं होने पाता। यही कारण है कि किसान और मज़दूर मूर्खता में पड़े हुए और पीढ़ी-दर-पीढ़ी अन्याय, और अत्याचार सहते हुए अपनी और अपने भाइयों की ज़िन्दगी बराबर बर्बाद कर रहे हैं, पर उस एक ईश्वरीय-नियम का पालन नहीं करते जो अवश्यमेव उन्हें सब विपत्तियों से छुटकारा देने वाला है।

"दूसरों के साथ वैसाही बर्ताव करो जैसा कि तुम चाहते हो कि वे तुम्हारे साथ करें" यह नियम यद्यपि देखने में बहुत छोटा और सीधा सादा मालूम पड़ता है पर वास्तव में यह बहुत ही सचाई और महत्त्व से भरा हुआ है। यह नियम किसी एक देश या एक समय के लिए नहीं बल्कि सब देश और सब समय के लिए है। सरकार, समाज या पुरोहित पाधों के बनाये हुए नियम केवल एक देश या एक समय के लिए होते हैं पर यह ईश्वरीय-

नियम सब काल और सब देश के लिए सत्य है।

पर इस ईश्वरीय-नियम और सरकार इत्यादि के बनाये हुए नियम में ख़ास फ़र्क़ यह है कि सरकार इत्यादि के बनाये हुए नियम न सिर्फ़ लोगों को सन्तुष्ट करने और उनका परम हित साधने में असफल होते हैं बल्कि अक्सर उन के कारण व्यक्तियों और जातियों में बड़ी बड़ी शत्रुताएँ, बड़े बड़े युद्ध और बड़ी बड़ी विपत्तियां भी पैदा हो जाती हैं। पर इस ईश्वरीय-नियम से संसार में सिवाय शान्ति तथा भलाई के कोई हानि कभी भी नहीं हो सकती। जहां जहां इस नियम का प्रचार होगा, वहां वहां शान्ति, सुख और सत्य का साम्राज्य अवश्य छा जायगा। यदि इस ईश्वरीय नियम की शिक्षा स्त्री और पुरुष, बालक और बूढ़े सबों को दी जाय तो मनुष्य-जीवन में एक महान् परिवर्तन हो जायगा और उसके साथही साथ वह सब अन्याय और अत्याचार भी दूर हो जायंगे जिनके नीचे संसार के अधिकतर मनुष्य—बेचारे किसान और मज़दूर—लगातार पीसे जा रहे हैं।

ईश्वर का एक दूसरा नियम, जो सब बड़े बड़े धर्मों में पाया जाता है, यह है कि "किसी प्राणी की हिंसा मत करो।" पहले नियम की तरह यह दूसरा नियम भी बहुत ही महत्त्व और सचाई से भरा हुआ है। यदि मनुष्य-मात्र इस नियम को उसी तरह मानने लगें जिस तरह से कि वे संध्या और पूजा, रोज़ा और नेमाज़, बाइबिल और क़ुरान को मानते हैं तो मनुष्य का कुल जीवन ही बदल जाय। तब न तो संसार में कोई किसी का ग़ुलाम रहेगा, और न कोई किसी पर युद्ध करेगा। तब न तो कोई धनी ज़मींदार, ग़रीब किसान और मज़दूर की ज़मीन हड़पने की कोशिश करेगा और न थोड़े से पूंजीवाले अधिक मनुष्यों के पैदा किये हुए धन

को अपने क़ब्ज़े में करने की कोशिश करेंगे। क्योंकि इन सब अन्यायों और अत्याचारों को लोग तभी सह लेते हैं जब उन्हें इस बात का डर रहता है कि कहीं हम जान से न मार डाले जायं।

इसलिए ख़ास बात जिस पर किसानों और मज़दूरों को सब से ज़्यादा ध्यान देना चाहिए, यह है कि वे ईश्वरीय-नियमों को पालन करते हुए अपने जीवन को पवित्र बनावें। तभी धनी ज़मींदार और पूंजीवाले उन पर अन्याय और अत्याचार करने से बाज़ आयेंगे। अपने को पवित्र बनाने के लिए सरकार, समाज तथा पुरोहित, पाधों के बनाये हुए संकुचित नियमों से अलग होने की बहुत ही बड़ी ज़रूरत है। बस यही एक उपाय है जिससे किसान और मज़दूर वर्तमान समय की गुलामी से छूट सकते हैं।

किसी किसान और मज़दूर से आप बातचीत करें और उससे पूंछे भी भाई तुम्हारी इस हालत का सबब क्या है, तुम पर इतनी मुसीबतें क्यों आती हैं। तो वह फ़ौरन जवाब देगा कि हमारी सब मुसीबतों तथा हमारे ऊपर होनेवाले सब अन्यायों और अत्याचारों की जड़ सरकार, ज़मींदार, ताल्लुक़ेदार, अमीर और पूंजीवाले हैं। पर वही किसान या मज़दूर मौक़ा पड़ते ही थोड़े से फ़ायदे के लिए सरकार, ज़मींदार या पूंजीवालों के यहां हर एक प्रकार का काम करने के लिए फ़ौरन तैयार हो जाता है। वही ज़मींदारों का खेत जोतता बोता है, वही पूंजीवालों के कल-कारख़ानों को चलाता है और वही सरकार की फ़ौज में भी भर्ती हो कर अपने भाइयों को अपनी गोली का निशाना बनाता है। क्या उन आदमियों से किसी नये सुधार या परिवर्तन की आशा की जा सकती है जो दूसरों को तो दोष देते हैं पर आप अपनी बुराइयों को, अपने लोभ को अपनी फ़ज़ूलख़र्ची को,

अपने आराम को, अपने थोड़े से लाभ को छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं ?

इसलिए किसान और मज़दूर अगर अपनी हालत सुधारना चाहते हैं, अगर बहुत दिनों से होनेवाले अत्याचार और अन्याय से बरी होना चाहते हैं तो उन्हें धार्मिक भाव से प्रेरित हो कर सब से पहले यह करना चाहिये कि वे पूंजीवालों और ज़मींदारों के लिए काम करना छोड़ दें और सरकार की पुलीस या फ़ौज में भर्ती होकर सरकार के अन्याय और अत्याचार में सहायता देना बन्द कर दें। जब वे धार्मिक-भाव से प्रेरित हो कर अपने उद्देश को सिद्ध करने में तत्पर होंगे तभी वे अन्याय और अत्याचार के पंजे से अपना उद्धार कर सकेंगे। अगर वे अपने थोड़े से लाभ के लिए सरकार की फ़ौज में भर्ती होने, ज़मींदारों के लिए खेत इत्यादि जोतने बोने और पूंजीवालों के लिए उनके कल-कारख़ानों में काम करने के लिए हमेशा तयार रहते हैं तो फिर उन्हें किसी की शिकायत करने या किसी को दोष देने की ज़रूरत नहीं है। सारा दोष उन्हीं का है। मनुष्य स्वयं अपना उद्धार करनेवाला या अपने को गिरानेवाला है। यदि वह अपने विश्वास पर दृढ़ है, यदि वह किसी भी बुराई, अन्याय या अत्याचार में शरीक होने के लिए तैयार नहीं है तो किसी भी मनुष्य की शक्ति नहीं है कि उससे उसकी मरज़ी के ख़िलाफ़ कोई काम करा सके। बस यही दृढ़ता और सत्य तथा न्याय के लिए आग्रह जब किसानों और मज़दूरों में हो जायगा तब उनका उद्धार होने में तनिक भी देर न लगेगी।

पहला अध्याय

३–वर्त्तमान समय की ग़ुलामी

ग़रीब किसान और मज़दूर।

वह देखिये रूस की एक रेलवे का बड़ा भारी माल-गोदाम है। उसमें ढाई सौ रूसी मज़दूर माल चढ़ाने और उतारने का काम करते हैं। वे पांच पांच मज़दूरों की टोलियों में बटे हुए हैं। सवेरे अपने काम पर आकर वे एक दिन एक रात और फिर दूसरे दिन लगातार ३६ घण्टे तक माल लादते और उतारते रहते हैं। अड़तालीस घण्टे के अन्दर सिर्फ़ एक रात उन्हें सोने को मिलती है। इतनी मेहनत के बाद आप जानते हैं वे क्या पाते हैं? सिर्फ़ एक या डेढ़ रुपया! इसी एक या डेढ़ रुपये में से उन्हें अपने खाने पीने पर भी ख़र्च करना पड़ता है। वे लगातार बिना छुट्टी के काम करते रहते हैं। उनमें से अधिकतर गावों के रहनेवाले हैं। अगर आप उनसे पूछें, "भाई इस तरह की मेहनत से तुम अपने को क्यों मार रहे हो?", तो वे जवाब देंगे, "अगर हम इस तरह की मेहनत न करें तो बतलाओ, हम अपने बाल बच्चों का पेट किस तरह पाल सकते हैं; अगर हम एक घण्टा भी देर करके काम पर आते हैं तो नौकरी से बरख़ास्त कर दिये जाते हैं; अगर एक आदमी छुड़ा दिया जाता है तो दस उसकी जगह लेने के लिए मुस्तैद रहते हैं।" जिन कमरों में वे रहते और सोते हैं वे जानवरों की मादों से भी ज्यादा गन्दे होते हैं। हवा और रोशनी

का वहां काफ़ी इन्तज़ाम नहीं होता। चालीस चालीस आदमी एक तंग और छोटे कमरे में रहते हैं। रूस की भयानक सर्दी में भी उनके बदन पर इतना काफ़ी कपड़ा नहीं रहता कि वे सर्दी से बच सकें। जब ३६ घण्टे के बाद उन्हें १२ घण्टे सोने के लिए छुट्टी मिलती है तो जाड़े पाले से ठिठुरे हुए वे राम राम करके रात काट देते हैं। अगर ऐसे आदमी समय से पहले ही इस संसार से कूच कर दें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

अब आइये आपके साथ जर्मनी के एक पुतलीघर में चलें। सामने देखिये रेशम का एक बड़ा भारी कारख़ाना है जिसमें तीन हज़ार औरतें और एक हज़ार आदमी काम करते हैं। बेचारी औरतें लगातार घण्टों तक खड़ी हुई करघा चलाती रहती हैं। देखिये उनके चेहरे पीले पड़े हुए हैं; उनकी तन्दुरुस्ती चौपट हो गई है; उनमें से अधिकतर दुराचरण में अपना जीवन व्यतीत करती हैं। उनमें से प्रायः कुल विवाहित या अविवाहित स्त्रियां बच्चा पैदा होने के बाद अपने बच्चों को देहातों में या उन अनाथालयों में भेज देती हैं जहां छोटे छोटे अनाथ बच्चे पाले पोषे जाते हैं। इन अनाथालयों में ८० फ़ी सदी बच्चे मौत के शिकार हो जाते हैं। उनकी माताएं बच्चा पैदा होने के थोड़े ही दिनों बाद अपना पेट पालने के लिए फिर काम पर जुट जाती हैं। इस तरह से अमीरों के वास्ते रेशमी कपड़े तैयार करने के लिए हज़ारों औरतें अपनी और अपने बच्चों की ज़िन्दगी बरबाद कर रहीं है। इंगलिस्तान में लोगों के स्वास्थ्य और जन्म-मृत्यु के बारे में जो रिपोर्ट निकली हैं उनसे पता लगता है कि वहां बड़े आदमी और ऊँचे दरजे के लोग औसत के हिसाब से ५५ साल तक जिन्दा रहते हैं और मज़दूरी पेशा के लोग जो तन्दुरुस्ती बर्बाद करनेवाले कामों से अप-

ना गुज़ारा करते हैं औसत २९ साल की उम्र में ही मौत के शिकार हो जाते हैं।

अब ज़रा आइये अपने यहां के किसानों और मज़दूरों पर भी एक नज़र डालिये। हमारा बेचारा किसान माघ और पूस के जाड़े और पाले में, जेठ और वैशाख की भयङ्कर लू और घाम में तथा सावन और भादों के ओले और पानी में बारह बारह और चौबीस चौबीस घण्टों तक खेत में खड़ा हुआ अमीरों और धनवानों के लिए अनाज पैदा करता है पर आप कोरा का कोरा रह जाता है। वह माघ-पूस के जाड़ों में ठिठुरा हुआ किसी तरह राम राम कर के रात काट देता है। उसके बदन पर इतना कपड़ा नहीं रहता कि वह सरदी से बच सके। अगर प्लेग आता है, अकाल पड़ता है या हैज़ा का दौरा शुरू होता है तो इन सब विपत्तियों का पहला शिकार वही होता है। उसके टूटे फूटे झोपड़े उसे जाड़े, गरमी और बरसात से नहीं बचा सकते। किसान बेचारा सब से ज़्यादा टैक्स और लगान देता है पर उस के बदले में सब से ज़्यादा तकलीफ़ पाता है; वही सबों के लिए अन्न पैदा करता है पर आप भूखा रह जाता है; वही दूसरों के लिए ऐशो-आराम की चीज़ें मुहइया करता है पर उसे पहनने के लिए काफ़ी कपड़ा भी नसीब नहीं होता। उस पर जो राजनैतिक और सामाजिक अत्याचार हो रहे हैं उन्हें देख और सुन कर रोंगटे खड़े होते हैं। इन सब अत्याचारों का नतीजा यह है कि किसान बेचारे और लोगों की बनिस्बत बहुत जल्द बीमारी और मौत के पञ्जे में फँस जाते हैं।

अगर हम लोग इस बात को जान लें कि जिन चीज़ों के पैदा करने और बनाने में इतने मज़दूरों और किसानों की जानें जाती हैं और उनकी तन्दुरुस्ती ख़राब होती है वे हमारे ही ऐश

और आराम में खर्च होती हैं, अगर यह बात एक दफ़ा भी हमारे हृदय में अच्छी तरह से गड़ जाय तो फिर एक लहमे के लिए भी हमारे चित्त को शान्ति नहीं मिल सकती। पर वास्तव में बात यह है कि हम लोग जो अपने को ऊंचा समझते हैं और किसानों तथा मज़दूरों से ज़्यादा ख़ुशहाल हैं और अपने को उदार तथा दयावान् मानते हैं इन किसानों और मज़दूरों की मिहनत से बेजा फ़ायदा उठा कर अधिक धनवान बनने और ज़्यादा दौलत पैदा करने की कोशिश करते हैं। हम अक्सर जानवरों की तकलीफ़ों को देख कर दया के मारे पिघल उठते हैं पर एक बार भी हमारे ख़्याल में यह बात नहीं आती कि हमारे ही स्वार्थों की बदौलत हज़ारों किसान और मज़दूर भाई अपनी तन्दुरुस्ती और ज़िन्दगी चौपट कर रहे हैं! हम जानते हैं कि जो कपड़ा हम पहिनते हैं, जिस सिगरेट को हम पीते हैं, जिस शीशा और कङ्घी से हम अपना सिंगार करते हैं, जिन चीज़ों को हम अपने ऐशो-आराम के काम में लाते हैं उनके तैयार करने में हमारे न जाने कितने भाइयों और बहिनों की तन्दुरुस्ती ख़राब होती है, पर हम अपने हृदय में बिना किसी प्रकार की पीड़ा अनुभव किये हुए इन सब चीज़ों को काम में लाते रहते हैं। हम इस बात की बड़ी फ़िक्र रखते हैं कि हमारे लड़के स्कूलों में बहुत देर तक मिहनत न करें; हम अपने बच्चों की तन्दुरुस्ती का बड़ा ख़्याल रखते हैं; हम इस बात का कड़ा इन्तज़ाम रखते हैं कि गाड़ीवान और छकड़ेवाले अपने जानवरों से बहुत ज़्यादा काम न लें और न बहुत ज़्यादा बोझ ढुलायें; हम इस बात के लिए सख़्त क़ानून बनाते हैं कि बूचड़ख़ानों में जानवर इस तरह से मारे जांय कि वे मारेजाने की पीड़ा बहुत ही कम अनुभव करें, पर जब उन लाखों मज़दूरों और किसानों के बारे में सवाल उठता है जो हम

लोगों के ऐशो-आराम की चीज़ों को पैदा करने में मौत के शिकार हो रहे हैं तो हम अपनी आखें बन्द कर लेते हैं, और इस बात की ओर कभी ध्यान भी नहीं देते। क्या इस से भी बढ़ कर कोई बे-रह्‌मी और ख़ुदग़रज़ी हो सकती है?

दूसरा अध्याय

अत्याचार को उचित ठहराने का प्रयत्न।

अक्सर यह देखा जाता है कि जो लोग अत्याचार करते हैं वे अपने अत्याचारों को उचित ठहराने के लिए अनेक बहाने गढ़ लेते हैं। वे इसतरह के बहाने इसलिए गढ़ते हैं कि जिसमें दूसरे लोग उनके बुरे कामों को बुरा न समझें। वे यह साबित करने की कोशिश करते हैं कि जो कुछ हम कर रहे हैं वह प्राकृतिक नियमों की बुनियाद पर स्थित है और उन नियमों पर मनुष्य का कोई बश नहीं है। पुराने ज़माने में इस तरह के अत्याचारी और स्वार्थी लोगों ने इस सिद्धान्त का प्रचार कर रक्खा था कि दुनिया में जो ग़रीबी और अमीरी तथा गुलामी और मिलकियत का फ़र्क़ दिखलाई पड़ता है वह ईश्वर की ही इच्छा के अनुसार है। ईश्वर ही किसी को अमीर बनाता है और किसी को ग़रीब, किसी को मालिक बनाता है और किसी को गुलाम, किसी को ऊँच बनाता है और किसी को नीच, किसी को आराम देता है और किसी को तकलीफ़।

इस सिद्धान्त को पुष्ट करने के लिए न जाने कितनी पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं और न जाने कितने व्याख्यान दिये जा चुके हैं। उन पुस्तकों और व्याख्यानों में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है कि ऊँच और नीच मालिक और गुलाम, अमीर और ग़रीब का भेद ईश्वर ही का रचा हुआ है। इसलिए सबों को चाहिए कि वे अपनी अपनी हालत पर सन्तोष करें। इसके बाद यह सिद्ध करने की कोशिश की गई कि मरने के बाद दूसरी दुनिया में ग़रीब और ग़ुलाम अपनी तकलीफ़ों की बदौलत ज्यादा आराम से रहेंगे। इसके बाद यह सिद्ध किया जाने लगा कि यद्यपि गुलाम हमेशा गुलाम ही रहेंगे तथापि उनकी हालत इतनी ख़राब नहीं हो सकती जितनी कि आजकल है अगर उनके मालिक उनके साथ दया का बर्ताव करें। इसके बाद जब गुलामी की प्रथा उठा दी गई और गुलाम आज़ाद कर दिये गये तो यह कहा जाने लगा कि कुछ लोगों के हाथ में धन इसलिए सौंपा गया है कि वे उसका कुछ हिस्सा अच्छे कामों में ख़र्च करें। इसलिए ऐसी हालत में कुछ लोगों का अमीर होना और बहुत से दूसरे लोगों का ग़रीब होना कोई बुरी बात नहीं है।

इस तरह की बातों से बहुत दिनों तक ग़रीब और अमीर दोनों को और ख़ास कर के अमीरों को सन्तोष होता रहा। पर एक समय आया जब कि ऐसी बातों से ग़रीबों में सन्तोष के बदले असन्तोष पैदा होने लगा, क्योंकि अब वे अपनी ग़रीबी की हालत समझने लगे थे। अब इस बात की ज़रूरत पड़ी कि अत्याचार को पुष्ट करने के लिए और गुलामी की प्रथा क़ायम रखने के लिए कोई नई बात गढ़ी जाय। यह नई बात अर्थशास्त्र के रूप में गढ़ी गई। अर्थशास्त्र की बदौलत इस सिद्धान्त का

प्रचार किया जाने लगा कि कुछ आदमी अपनी पूंजी लगायें और कुछ आदमी अपनी मिहनत से माल पैदा करें और इस तरह से जो कुछ नफ़ा हो वह दोनों आपस में बांट लें। थोड़े ही समय के अन्दर इस विषय पर भी अनेक पुस्तकें और लेख निकल चुके हैं। इन पुस्तकों और लेखों में यह समझाने की कोशिश की जाती है कि मालिकों और मज़दूरों तथा ज़मींदारों और किसानों का जो संबन्ध आजकल है वह वैज्ञानिक नियमों के आधार पर स्थित है। अर्थ-शास्त्र की पुस्तकों में यह बात बिना किसी सन्देह के मान ली गई है कि अगर समाज में बहुत से ऐसे डाकू और चोर हैं जो पूंजी-पतियों और ज़मींदारों के वेष में मज़दूरों और किसानों के पैदा किये हुए धन को हड़प कर जाते हैं तो इसका कारण धनियों और ज़मींदारों का अन्याय या अत्याचार नहीं बल्कि अर्थशास्त्र के वे सब नियम हैं जो सिर्फ़ धीरे धीरे बदले जा सकते हैं। इसलिए अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार जो लोग चोर और डाकू की तरह काम करते हैं और मज़दूरों तथा किसानों को लूट कर गुल-छर्रे उड़ाते हैं वे इसी तरह करते हुए अपनी ज़िन्दगी मज़े से बिता सकते हैं। इसके लिए उन्हें कोई बुरा नहीं कह सकता और न वे चोर या डाकू कहे जा सकते हैं।

यद्यपि वर्त्तमान समय के अधिकतर लोग शास्त्र के सिद्धान्त नहीं समझते पर वे यह ज़रूर जानते हैं कि इस मौजूदा हालत के लिए कोई अच्छा सबब ज़रूर है। उनको यह विश्वास है कि विद्वानों और बुद्धिमानों ने यह पूरी तरह से सिद्ध कर दिया है कि मौजूदा हालत जैसी चाहिए वैसी ही है। उनके दिल में इस ख्याल ने मज़बूती से घर कर लिया है कि मौजूदा हालत में कोई ख़राबी नहीं है। इसलिए हम लोग बिना इसमें कुछ परिवर्त्तन करने

की कोशिश किये हुए शान्ति के साथ रह सकते हैं। वे इसमें छेड़ छाड़ करने की कोई ज़रूरत नहीं समझते । यही कारण है जिससे समाज के नेक और भले आदमी जानवरों की तकलीफ़ और आराम का इतना ख़्याल रखते हैं और उनकी ज़रा सी तकलीफ़ देख कर दया के मारे पिघल उठते हैं, पर अपने मज़दूर और किसान भाइयों की तकलीफ़ का कुछ ख़्याल नहीं करते और न उन पर किये गये ज़ुल्मों की बदौलत गुलछर्रे उड़ाने में कोई पीड़ा ही अनुभव करते हैं।

अगर आप अर्थ-शास्त्र के विद्वानों से पूछें "किसानों और मज़दूरों की इस मौजूदा हालत का सबब क्या है और वे किस तरह इस हालत से छुटकारा पा सकते हैं ? " तो वे जवाब देंगे, "किसानों और मज़दूरों की मौजूदा हालत का सबब यह है कि जिन कम्पनियों, कारख़ानों, और खेतों में किसान और मज़दूर काम करते हैं वे पूँजीपतियों और ज़मींदारों के क़ब्ज़े में हैं; और यह हालत तभी सुधर सकती है जब मज़दूर और किसान आपस में एका करके अपनी अपनी सभाएं बनाएं और सहयोग के सिद्धान्तों पर मिल-जुल कर काम करें तथा हड़तालों के द्वारा सरकार और मालिकों पर ज़ोर डालें। ऐसा करने से उनकी मज़दूरी के घण्टे कम हो जांयगे, उनका वेतन बढ़ जायगा और फिर धीरे धीरे कुल कल-कारख़ानें उनके क़ब्ज़े में आ जायेंगे और तब सब हालत आप ही सुधर जायगी । पर अभी तो जैसी हालत है वैसी ही बनी रहनी चाहिए। उसमें कोई फेरफार करने की ज़रूरत नहीं है । "

तीसरा अध्याय

कल-कारख़ानों की गुलामी।

मज़दूरों की इस हालत का सबब यह नहीं है कि कल-कारख़ाने धनवानों और पूँजीपतियों के क़ब्ज़े में हैं बल्कि सबब यह है कि उन्हें अपनी रोज़ी कमाने के लिए गांवों का प्राकृतिक और सादा जीवन त्याग कर कल-कारख़ानों की शरण लेनी पड़ती है। आप उनके काम के घण्टे कितने ही कम क्यों न कर दें, उन की मज़दूरी कितनीही क्यों न बढ़ा दें और अन्त में कल-कारख़ाने भी उनके क़ब्ज़े में क्यों न करदें पर तब भी इस मुसीबत और तकलीफ़ की हालत से उनका छुटकारा नहीं हो सकता। क्योंकि उन की मुसीबतज़दा हालत इस बात से नहीं है कि उन्हें ज्यादा घण्टों तक काम करना पड़ता है, या उन्हें कम मज़दूरी मिलती है या कल-कारख़ाने उनके क़ब्ज़े में नहीं हैं बल्कि उनकी इस हालत का सबब यह है कि उन्हें अपनी रोज़ी पैदा करने के लिए लाचार होकर शहरों की गन्दी और अप्राकृतिक आब-हवा में रहना पड़ता है। कल-कारख़ानों की सड़ी गली हवा को सांस लेते हुए लगातार घण्टों तक एक ही तरह का काम करना पड़ता है, शहर के अनेक दूषित प्रलोभनों के जोखिम में अपने चरित्र और स्वास्थ्य को डालना पड़ता है तथा दूसरों की मरज़ी के मुताबिक़ गुलामों की तरह ज़िन्दगी बितानी पड़ती है।

हाल में मज़दूरों के काम करने के घण्टे भी कम हो गये हैं, उनकी मज़दूरी भी बढ़ गई है पर इससे उनकी हालत में कोई बड़ा

सुधार नहीं हुआ है। अगर घड़ी, चेन और रेशमी रूमाल का रखना, तम्बाकू, सिगरट और शराब का पीना तथा इसी तरह की दूसरी ऐशो-आराम की चीज़ों का इस्तेमाल करना सुधार की निशानी है तो उनकी हालत में ज़रूर सुधार हुआ है। लेकिन अगर अच्छी तन्दुरुस्ती, अच्छा चरित्र और अधिक स्वतन्त्रता का होना सुधार का चिन्ह है तो उनकी ज़िन्दगी सुधरने के बजाय और भी बिगड़ गई है। हर एक स्थान में काम करने के घण्टे कम हो गये हैं और मज़दूरी भी बढ़ा दी गई है पर तब भी खेतों में काम करनेवाले किसानों की बनिस्बत मज़दूरों की तन्दुरुस्ती ज्यादा ख़राब है, वे ज्यादा जल्दी मौत के शिकार हो जाते हैं और उनका चरित्र ज्यादा बिगड़ जाता है। ऐसा होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि मज़दूर गांवों के प्राकृतिक और पवित्र जीवन से हट कर उन शहरों में आ कर काम करते हैं जहां हर एक ओर तन्दुरुस्ती और चरित्र को बिगाड़नेवाली चीज़ें क़दम क़दम पर नज़र आती हैं।

इङ्गलिस्तान, जर्मनी, बेल्जियम इत्यादि देशों में हजारों मज़दूर ऐसे मिलेंगे जो पुश्तहापुश्त से कल-कारख़ानों में काम करते चले आ रहे हैं। ये लोग भी अपनी स्वतन्त्र इच्छा से कल-कारख़ानों में काम नहीं करते, वे कल-कारख़ानों में अपनी ज़िन्दगी इसलिए बर्बाद कर रहे हैं कि उनके सामने कोई दूसरा चारा नहीं है। उनके बाप-दादे किसी न किसी सबब से गांव छोड़ कर शहरों में आ कर बस गये थे और अपना पेट पालने के लिए वहीं के कल-कारख़ानों में भर्ती हो कर काम करने लगे थे। उनमें बहुत से ज़बर्दस्ती और लालच से इस बात के लिए लाचार किये गये कि गाँव छोड़ कर शहरों में जा कर बसें और वहां के कल-कारख़ानों में काम करें। जो किसान या मज़दूर गांवों

की ज़िन्दगी छोड़ कर शहर में आ कर बसे हैं या बस रहे हैं वे हरगिज़ अपनी मरज़ी से ऐसा नहीं करते, बल्कि उनकी आर्थिक हालत ऐसी बिगड़ी हुई है कि लाचार हो कर उन्हें ग्राम-जीवन का सुख और आनन्द छोड़ कर शहर की गन्दी समाज में आ कर ज़िन्दगी बितानी पड़ती है । इसलिए मज़दूरों को इस मुसीबत की हालत से निकालने का सवाल इस बात पर आ कर टिकता है कि जिन कारणों की बदौलत हमारे मज़दूर भाई गांवों की सुख देने वाली ज़िन्दगी से हट कर शहरों और कल-कारख़ानों की ग़ुलामी में फँस गये हैं वे कारण किस तरह से दूर किये जा सकते हैं ।

अर्थशास्त्र के ग्रन्थों में यह तो स्वीकार किया गया है कि मज़दूरों को ज़बर्दस्ती लाचार हो कर खेती-बारी का काम छोड़ कर कल-कारख़ानों की ज़िन्दगी अख़्तियार करनी पड़ी है, पर उन ग्रन्थों में इस बात के बारे में कुछ भी विचार नहीं किया गया है कि जिन कारणों से यह हालत पैदा हुई है वे किस तरह से दूर किये जा सकते हैं । अर्थशास्त्र के विद्वान् सिर्फ़ इस बात पर ज़ोर देते हैं कि मौजूदा कल-कारख़ानों में जो मज़दूर काम कर रहे हैं उनकी हालत किन किन उपायों से सुधर सकती है । उन्होंने मानों यह मान लिया है कि मज़दूरों की हालत हमेशा ऐसी ही बनी रहेगी और जो मज़दूर अब तक गांवों में बने हुए हैं उन्हें भी लाचार हो कर कल-कारख़ानों की शरण लेनी पड़ेगी ।

संसार में जितने कवि और महात्मा हुए हैं उन सबों ने ग्राम और ग्राम्य-जीवन की महिमा गाई है । अधिकतर मज़दूर स्वयं और कामों की बनिस्बत खेती का काम ज़्यादा पसन्द करते हैं । कल-कारख़ानों का काम हमेशा तन्दुरुस्ती का बिगाड़नेवाला और मन में ऊब पैदा करनेवाला होता है, इस के विरुद्ध खेती का काम

हमेशा तन्दुरुस्ती का देनेवाला और रुचि को बढ़ानेवाला होता है। कल-कारख़ानों का काम दूसरों की इच्छा पर, और अगर कल-कारख़ाने मज़दूरों के क़ब्ज़े में आ जांय तब भी मेशीनों तथा कल-पुर्ज़ों पर मुनहसिर रहता है पर खेती-बारी का काम हमेशा किसानों की इच्छा पर निर्भर रहता है। वह जब चाहे तब काम और जब चाहे तब आराम कर सकता है। कल-कारख़ाने के मज़दूरों की तरह उसे किसी की ग़ुलामी नहीं करनी पड़ती। इस के अलावा खेती का काम मुख्य और कल-कारख़ानों का काम गौण है, क्योंकि खेती-बारी ही के द्वारा कल-कारख़ानों के लिए कच्चा माल पैदा किया जाता है। अगर खेती-बारी न हो तो सब कारख़ाने ठण्डे पड़ जांय। पर इन सब बातों के होते हुए भी अर्थशास्त्र के विद्वान् यह कहते हैं कि देहात के लोगों को खेती-बारी का काम छोड़ कर कल-कारख़ानों की ज़िन्दगी अख़्तियार करने से कोई नुक़सान नहीं है।

चौथा अध्याय

सभ्यता या ग़ुलामी ?

आजकल के बड़े बड़े विद्वान्, पण्डित और विज्ञान-वेत्ता इस बर्तमान स्थिति को सभ्यता के नाम से पुकारते हैं। इस बर्तमान स्थिति से फ़ायदा उठानेवाले धनी, ज़मींदार और कल-कारख़ाने के मालिक तो इसे सबसे बड़ी सभ्यता समझते हैं। रेल, तार, फ़ोटोग्राफ़, सिनेमा, मोटर, ट्राम्वे, एलेक्ट्रिक-लाइट, कल-कारख़ाने यह सब

इस सभ्यता के बड़े भारी अंग हैं। यह सब चीजें ऐसी पवित्र समझी जाती हैं कि उन्हें एकदम उठाना तो दूर रहा उनमें कोई बड़ा सुधार या बड़ा परिवर्तन करने का ख़्याल भी मन में लाना बड़ा भारी पाप समझा जाता है। विज्ञान के अनुसार संसार की हर एक चीज़ में परिवर्तन हो सकता है, अगर परिवर्तन नहीं हो सकता तो इस वर्तमान सभ्यता में। पर यह बात दिन पर दिन ज़ाहिर होती जा रही है कि यह सभ्यता तभी तक क़ायम रह सकती है जब तक कि मज़दूर और किसान दूसरों के वास्ते काम करने के लिए मजबूर किये जाते हैं। पुरानी कहावत है "संसार रहे चाहे न रहे पर न्याय होना चाहिए।" पर आज-कल के विद्वान्, विज्ञान-वेत्ता और बड़े आदमी इस सभ्यता को ऐसी बड़ी बरकत समझते हैं कि उनके मत में "न्याय चाहे रहे या न रहे पर यह सभ्यता ज़रूर बनी रहे।" वे न सिर्फ़ ऐसा कहते ही हैं बल्कि इसके अनुसार आचरण भी करते हैं। उनके ख़्याल से दुनिया में हरएक चीज़ बदल सकती है। अगर नहीं बदल सकती तो यह सभ्यता और इस सभ्यता के वे सब चिन्ह जो शहरों, कल-कारख़ानों और बड़ी बड़ी दुकानों में दिखलाई पड़ते हैं।

बिजली की रोशनी, टेलीफ़ोन और मोटरकार ज़रूर उम्दा चीजें हैं। इसी तरह से सिनेमा, थियेटर, सिगार, सिगरेट इत्यादि भी आनन्द देनेवाली चीज़ें हैं। पर यह सब चीज़ें और न सिर्फ़ यही बल्कि इनके अलावा रेल, कल-कारख़ाने, रेशमी और बढ़िया कपड़े सब के सब इस संसार से लोप हो जांय अगर उन के बनाने के लिए यह ज़रूरी है कि ९९ फ़ी सदी काम करनेवालों को गुलामी की ज़िन्दगी बिताना पड़े और उनमें से हज़ारों आदमियों को इन चीज़ों के बनाने में कल-कारख़ानों के अन्दर अपनी

ज़िन्दगी से हाथ धोना पड़े। अगर बम्बई या कलकत्ते में बिजली की रोशनी करने या कारखाने में बढ़िया रेशमी और सूती कपड़ा तैयार करने के लिए थोड़े से भी आदमियों की ज़िन्दगी बर्बाद और चौपट हो जाय और उन्हें अपनी तन्दुरुस्ती से हाथ धोना पड़े, तो बेहतर है कि कलकत्ता और बम्बई बिना बिजली की रोशनी के रहें और लोग बिना बढ़िया कपड़े के अपना काम चलायें। सिर्फ़ एक बात सब से ज़रूरी यह है कि दुनिया से ग़ुलामी हमेशा के लिए उठ जाय और उस ग़ुलामी के सबब से लोगों की ज़िन्दगी फिर कभी बर्बाद न हो। मनुष्यों का सच्चा प्रेमी और सच्ची सभ्यता का माननेवाला घोड़े की सवारी कर लेगा या पैदल चल लेगा पर वह कभी भी रेल की सवारी पसन्द न करेगा, जिसके सबब से हर साल सैकड़ों आदमी कुचल कर या रेल लड़ने से दब कर मर जाते हैं। सच्चे और सभ्य मनुष्य का सिद्धान्त यह नहीं होना चाहिए "न्याय रहे चाहे जाय पर सभ्यता बनी रहे" बल्कि यह होना चाहिए "सभ्यता रहे चाहे न रहे पर न्याय ज़रूर क़ायम रहे।"

अगर कोई नया आदमी किसी दूसरी दुनिया से हमारी इस दुनिया में आये और उसे यहां की सब ख़ास ख़ास बातें दिखाई जांय तो वह एक बड़ा फ़र्क़ हम लोगों की ज़िन्दगी में देखेगा। वह बड़ा फ़र्क़ यह है कि कुछ लोग, जिनकी संख्या थोड़ी है, हमेशा साफ़ सुथरे रहते हैं, अच्छा कपड़ा पहनते हैं, अच्छा खाना खाते हैं, अच्छे मकानों में निवास करते हैं, बहुत हलका या बहुत कम काम करते हैं, या अकसर बिल्कुल ही काम नहीं करते, ऐशो-आराम के साथ ज़िन्दगी बसर करते हैं, तरह तरह के मज़े और गुलछर्रे उड़ाते हैं और उन गुलछर्रों पर दूसरों की गाढ़ी मिहनत

से पैदा किया हुआ असंख्य धन बर्बाद करते हैं। दूसरी ओर बहुत अधिक संख्या के लोग ऐसे दिखलाई पड़ेंगे जो हमेशा गन्दे रहते हैं, दरिद्रता के कारण या तो नंगे रहते हैं या बहुत ही कम कपड़े से गुज़ारा करते हैं। बहुत ही ख़राब खाना खाते हैं या कभी कभी भूखे सो जाते हैं, बहुत ही गन्दे मकानों में रहते हैं, सबेरे से लेकर शाम तक और कभी-कभी तो रात को भी लगातार गाढ़ी मिहनत करते रहते हैं और उन लोगों के लिए ऐशो-आराम की चीज़ें पैदा करते हैं जो ख़ुद तो मेहनत नहीं करते पर दूसरों के पैदा किए हुए धन से लगातार ख़ूब गुलछर्रें उड़ाते रहते हैं। इस तरह से साफ़ ज़ाहिर है कि इस ज़माने के लोग दो विभागों में बटे हुए हैं। एक विभाग में तो वे लोग हैं जो ग़ुलामों की तरह अपनी ज़िन्दगी बिताते हैं और दूसरे विभाग में वे लोग हैं जो उन ग़ुलामों के मालिक हैं और अपने रुपये के ज़ोर से जैसा चाहते हैं वैसा काम उनसे लेते हैं।

वर्तमान समय में सिर्फ़ कल-कारख़ाने के मज़दूर ही ग़ुलामों की तरह ज़िन्दगी नहीं बिताते। हमारे वे सब किसान भी एक तरह के ग़ुलाम हैं जो दूसरों के लिए अनाज पैदा करते हैं और आप भूखे रह जाते हैं। वे सरकार, ज़मींदार और महाजन इन तीनों की ज़ञ्जीर में ऐसे जकड़े हुए हैं कि उस से निकलना उन के लिए असम्भव मालूम पड़ता है।

हमारे ज़माने में ग़ुलामी बड़े ज़ोरों के साथ फैली हुई है पर हम ऐसे अन्धे हो रहे हैं कि उसे अनुभव नहीं कर सकते। अट्ठारहवीं शताब्दी में खुल्लमखुल्ला ग़ुलामी का रिवाज योरप में क़ायम था। किसान ज़मींदार के बिल्कुल ग़ुलाम होते थे। ज़मींदार जैसा चाहते थे वैसा काम किसानों से लेते थे। पर कोई भी उस ज़माने

में इस हालत को गुलामी नहीं समझता था। सब लोग यही ख़्याल करते थे कि यह हालत आर्थिक कारणों से पैदा हो गई है और उसमें कुछ भी परिवर्तन नहीं हो सकता। पर अट्ठारहवीं शताब्दी के अन्त में योरप के लोग धीरे धीरे इस बात को समझने लगे कि किसानों की जो हालत अब तक स्वाभाविक और उचित मानी जाती रही है वह बिल्कुल ही अनुचित और अप्राकृतिक है और उसमें बहुत बड़ा सुधार करने की ज़रूरत है। इसी तरह से इस ज़माने के लोग भी अब यह समझने लगे हैं कि आजकल के मज़दूरों और किसानों की हालत एक तरह की गुलामी की हालत है और उस में बड़ा भारी सुधार करने की ज़रूरत है। पर यह विचार सिर्फ़ थोड़े से ऊंचे ख़्यालवाले लोगों का है। अधिकतर लोग अब भी इस बात पर विश्वास करते हैं कि हम लोगों के बीच गुलामी का नाम निशान भी नहीं है।

रूस और अमरीका में गुलामी की प्रथा अभी हालही में उठाई गई है। इसीलिए लोगों में यह ग़लत ख़्याल फैला हुआ है कि पहिले चाहे गुलामी रही हो तो रही हो पर अब गुलामी दुनिया में बिल्कुल नहीं है। लेकिन असल में जिस गुलामी का रिवाज पहिले क़ायम था वह एक पुराने चाल की गुलामी थी जो अब संसार से लोप हो गई है। उसकी जगह अब एक दूसरे और नये क़िस्म की गुलामी ने ले ली है। पहिले सिर्फ़ थोड़े से लोग गुलामी की ज़ंजीर में जकड़े रहते थे अब पहिले से कहीं अधिक लोग गुलामी की ज़िन्दगी बिता रहे हैं। गुलामी की एक प्रथा तभी उठती है जब दूसरी उसकी जगह लेने को तैयार हो जाती है। कई एक ज़रिये हैं जिनकी बदौलत लोग गुलाम बनाये और रक्खे जाते हैं। अगर किसी एक ज़रिये से काम नहीं चलता तो दूसरा

ज़रिया काम में लाया जाता है। कभी कभी तो सब ज़रिये एक साथ काम में लाये जाते हैं। इन ज़रियों की बदौलत एक ऐसी हालत पैदा की जाती है जिसमें थोड़े से ज़मींदार या धनी करोड़ों किसानों और मज़दूरों की ज़िन्दगी अपनी मुट्ठी में रखते हैं। वर्तमान समय में लोगों की दुर्दशा का कारण केवल यह है कि थोड़े से लोग अधिकतर लोगों को रुपये के ज़ोर से अपने क़ाबू में किये हुए हैं। इसलिए अगर हम मज़दूरों और किसानों की हालत सुधारना चाहते हैं तो पहिले हमें यह बात स्वीकार कर लेनी चाहिए कि हम लोगों के बीच गुलामी की प्रथा है अर्थात् अधिकतर लोग थोड़े से आदमियों के क़ब्ज़े में हैं। इस बात को स्वीकार कर लेने के बाद हमें यह देखना चाहिए कि किन किन कारणों से इतने ज्यादा लोग थोड़े से आदमियों के गुलाम बने हुए हैं। इन कारणों को दरियाफ़्त कर लेने के बाद हमें चाहिए कि हम उन्हें बर्बाद करने में पूरी तरह से लग जायं।

पांचवां अध्याय

गुलामी क्या है ?

अब आइये इस बात पर विचार करें कि वर्तमान समय की गुलामी के सबब क्या हैं अर्थात् किन किन कारणों की बदौलत थोड़े से लोग अधिकतर लोगों को अपना गुलाम बनाये हुए हैं। अगर हम मज़दूरों से पूछें कि भाई तुम इस तरह गुलामी की ज़िन्दगी

क्यों बिता रहे हो तो उनमें से कुछ यह जवाब देंगे कि हम गुलामी की हालत में इसलिए हैं कि हमारे पास ज़मीन नहीं है और न हम खेती-बारी ही कर सकते हैं। कुछ यह कहेंगे कि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इतने प्रकार के टैक्स हमसे मांगेजाते हैं कि जबतक हम दूसरों की मज़दूरी न करें तब तक हम उन टैक्सों को अदा नहीं कर सकते। कुछ लोग यह कहेंगे कि हमारी आदतें ऐसी ख़राब हो गई हैं और हमारी आवश्यकताएँ इस क़दर बढ़ गई हैं कि वे बिना दूसरों की गुलामी किये हुए पूरी नहीं हो सकतीं।

कुछ लोगों का यह ख़्याल है कि अगर ज़मीन अलग अलग आदमियों के क़ब्ज़े से निकालकर कुल जाति या राष्ट्र के क़ब्ज़े में कर दी जाय तो गुलामी का पहिला कारण दूर हो सकता है अर्थात् उनका कहना यह है कि जब ज़मीन पर सबका समान अधिकार हो जायगा तो कोई मनुष्य इसलिए दूसरे की गुलामी न करेगा कि उसके पास खेती-बारी करने के लिए काफ़ी ज़मीन नहीं है। इसी तरह से यह बात भी समझ में आती है कि टैक्स का बोझा ग़रीबों के सिर पर से हटा कर अमीरों के कन्धे पर रक्खा जा सकता है। अर्थात् जिन टैक्सों के कारण बहुत से लोग गुलामी करने पर उतारू हो जाते हैं उनसे वे मुक्त हो सकते हैं। पर मौजूदा ज़माने में समाज की जैसी हालत है उससे यह आशा करना व्यर्थ है कि मज़दूरों की वह सब आदतें और आवश्यकताएं भी दूर हो जायंगी जो उन्होंने अमीरों की देखादेखी अपने ऊपर बढ़ा रक्खी हैं। क्योंकि यह असंभव सा मालूम पड़ता है कि ऐशो-आराम में पले हुए हमारे अमीरउमराव और राजा-बाबू अपनी आदतें और आवश्यकताएँ घटा दें। क्या इन अमीरों का असर मज़दूरों और कम हैसियत वाले लोगों पर न पड़ेगा? क्या अमीरों की देखा-देखी

हमारे मज़दूर और किसान भाई भी बहुत सी फ़ज़ूल आदतों में न पड़ जायेंगे ? क्या उन आदतों को पूरा करने के लिए हमारे मज़-दूर भाई अपनी स्वतंत्रता बेचने के लिए तैयार न हो जायेंगे ?

यही तीन कारण हैं जिनकी वजह से हमारे मज़दूर और किसान भाई दूसरों की ग़ुलामी में जकड़े हुए हैं। ये कारण ऐसे ज़बर्दस्त हैं और मज़दूर तथा किसान उनके चक्कर में ऐसे फँसे हुए हैं कि उनका छुटकारा होना असंभव मालूम पड़ता है। जिस किसान के पास खेती करने के लिए ज़मीन नहीं है या ज़मीन है भी तो इतनी नहीं कि उससे उसका गुज़ारा हो सके उसके सामने सिवाय इसके क्या चारा है कि वह उसे आदमी की मज़दूरी या ग़ुलामी करके अपनी और अपने बाल-बच्चों की परवरिश करे जिसके पास ज़मीन है या जो धनी अथवा कल-कारख़ाने का मालिक है ।

अगर किसी तरह से उसे गुज़ारे के लायक़ खेत मिल भी जाय तो उस पर इतना लगान लगाया जायगा और उससे इतने प्रकार के टैक्स मांगे जांयगे कि उन्हें अदा करने के लिए उसे लाचार हो कर दूसरों की ग़ुलामी क़बूल करनी पड़ेगी ।

अगर उसके पास काफ़ी ज़मीन भी हो जाय और उसके खेतों में इतनी काफ़ी पैदावार भी होने लगे कि वह मालगुज़ारी और टैक्स अदा कर सके तब भी वह ग़ुलामी से नहीं बच सकता क्योंकि जो आदतें और आवश्यकताएं उसने बढ़ा रक्खी हैं वह इतनी ज़्यादा और ख़र्चीली हैं कि उनको पूरा करने के लिए उसे मजबूरन दूसरों की ग़ुलामी में अपने को डालना पड़ेगा। इस हालत को देखते हुए यही कहना पड़ता है कि हमारे मज़दूर और किसान

भाई हमेशा किसी न किसी शक्ल में उन लोगों के गुलाम बने रहेंगे जिन के पास ज़मीन है, जो रुपयेवाले हैं, जो कल-कारखाने के मालिक हैं और जिन के क़ब्ज़े में वह सब चीज़ें हैं जिन से मज़दूरों और किसानों की आवश्यकताएं पूरी हो सकती हैं।

छठवां अध्याय

लगान, ज़मीन और जायदाद के बारे में क़ानून।

मज़दूरों और किसानों की गुलामी उन सब कानूनों की बदौलत है जिन्हें स्वार्थी मनुष्यों ने अपने फ़ायदे के लिए बना रक्खा है। एक क़िस्म का क़ानून यह है कि अगर किसी आदमी के पास काफ़ी रुपया है तो वह जितनी चाहे उतनी ज़मीन ख़रीद सकता है और उसे अपने क़ब्ज़े में रख सकता है। वह उस ज़मीन को बेच भी सकता है और अगर चाहे तो पुश्तहा-पुश्त तक अपनी औलाद के नाम छोड़ सकता है। दूसरा क़ानून यह है कि हरएक मनुष्य को टैक्स अदा करना पड़ेगा, चाहे इसके लिए उसे कितनी ही तकलीफ़ क्यों न उठाना पड़े। तीसरा क़ानून यह है कि मनुष्य जितनी चाहे उतनी जायदाद अपने क़ब्ज़े में रख सकता है। चाहे वह जायदाद कैसे ही ख़राब तरीक़े से क्यों न हासिल की गई हो। बस इन्हीं क़ानूनों की बदौलत मज़दूरों और किसानों की गुलामी दुनिया में फैली हुई है।

हम इन क़ानूनों के इतने आदी हो गये हैं और वे हमारे

जीवन में इतने मिल-जुल गये हैं कि उनके सम्बन्ध में हमें कोई अनुचित बात ही नहीं दिखलाई पड़ती। उनकी आवश्यकता और अच्छेपन के बारे में हमें कभी कोई सन्देहही नहीं हाता।पर ज्योंही सर्वसाधारण को यह पता लगेगा कि संसार की वर्तमान आर्थिक स्थिति अन्याय और बेईमानी की बुनियाद पर क़ायम है त्योंही वे इन क़ानूनों को अविश्वास और अश्रद्धा की दृष्टि से देखने लगेंगे और उन्हें तोड़ने के लिए कमर कस कर तयार हो जायेंगे।

पहिले जब गुलामी की रिवाज क़ायम थी और लोग दूसरों को कपना गुलाम बना कर रखते थे तब यह सवाल किया जाने लगा कि क्या यह उचित है कि एक आदमी दूसरे आदमी का गुलाम रहे, क्या यह उचित है कि एक आदमी मेहनत करके अन्न और दूसरी चीज़ें पैदा करे और उसका मालिक उसकी मेहनत से पैदा किये हुए माल को हड़प कर जाये। इसी तरह से अब हमें भी यह सवाल करना चाहिए कि क्या यह चित है कि धनी मनुष्य अपने रुपये के ज़ोर से जितनी चाहे उतनी ज़मीन अपने क़ब्ज़े में रख सकता है, क्या यह उचित है कि हम अपनी गाढ़ी मेहनत से पैदा किया हुआ धन टैक्स और लगान के रूप में सरकार को दें, क्या यह उचित है कि मनुष्य जितनी चाहे उतनी जायदाद अपने क़ब्ज़े में रख सकता है। क्या यह उचित है कि ज़मीन उन लोगों की जायदाद तो न समझी जाय जो उस पर काम करते हैं और उसे जोतते बोते हैं बल्कि उन धनी लोगों की जायदाद समझी जाय जो आलसी और निकम्मे होते हुए भी ऐशो-आराम की ज़िन्दगी बिताते रहते हैं।

ऐसा कहा जाता है कि अगर ज़मीन पर किसी का क़ब्ज़ा न हो तो फिर खेती में सुधार नहीं हो सकता। क्यों

कि अगर ज़मीन का मालिक क़ानूनन अपनी ज़मीन का पुश्तहा-पुश्त तक अपनी औलाद के नाम नहीं छोड़ सकता तो फिर जो चाहे उसपर क़ब्ज़ा जमा लेगा और इस तरह से ज़मीन में कोई सुधार न हो सकेगा। क्या यह सच है ? इस प्रश्न का उत्तर इतिहास से मिलता है। इतिहास पुकार पुकार कर कह रहा है कि ज़मीन पर व्यक्तिगत अधिकार या क़ब्ज़ा इस ख्याल से नहीं किया गया कि ज़मीन और खेती की तरक़्क़ी और सुधार हो बल्कि इसका सबब दूसरा ही है। पहले ज़मीन पर सब मनुष्यों का समान अधिकार था। पीछे से कुछ स्वार्थी मनुष्यों ने गरोह बनाकर ज़मीन को छीन कर अपने क़ब्ज़े में करना शुरू किया। जब ज़मीन उनके क़ब्ज़े में आगई तो उन्होंने उसे उन लोगों में बांट दिया जिन्होंने ज़मीन के जीतने में उन्हें मदद दी थी और जो उनके अनुयायी और साथी थे। इस से साफ़ ज़ाहिर है कि खेती में सुधार करने के उद्देश से यह व्यवस्था नहीं की गई। इस व्यवस्था से खेती में उन्नति होना तो दूर रहा उलटा उसे हानि पहुंचती है। इसका एक नतीजा यह है कि ज़मीन दिन पर दिन बड़े बड़े मींदारों और ताल्लुक़ेदारों के क़ब्ज़ें में चली जा रही है और छोटे छोटे किसानों की हालत दिन पर दिन ख़राब होती जा रही है। कहीं बेदख़ली और कहीं इज़ाफ़ा के सबब से किसानों के हाथों से ज़मीन निकलती चली जा रही है।

टैक्स और लगान के बारे में यह कहा जाता है कि लगान और टैक्स ज़रूर अदा होना चाहिए क्योंकि वे सब लोगों की साधारण स्वीकृति से लगाये जाते हैं। और वे सर्वसाधारण की आवश्यकता पूरी करने के लिए उनकी भलाई के कामों पर ख़र्च किए जाते हैं। क्या यह सच है ? इसका उत्तर इतिहास से तथा

संसार की वर्तमान अवस्था से मिलता है। इतिहास से पता लगता है कि टैक्स कभी भी सर्वसाधारण की स्वीकृति से नहीं लगाये गए। हमेशा यह देखने में आया है कि जब कभी किसी ने दूसरे मनुष्यों को जीतकर अपने अधीन किया है तभी उसने उन पर सर्वसाधारण की भलाई के लिए नहीं बल्कि अपने फ़ायदे के लिए टैक्स लगाये हैं। यही बात अब भी की जाती है। आजकल भी टैक्स लोगों की स्वीकृति से नहीं लगाये जाते। जो लोग ज़बर्दस्त हैं वही अपनी ज़बर्दस्ती से टैक्स वसूल करते हैं। अगर आजकल टैक्स से वसूल किये गये रुपये का एक हिस्सा सर्वसाधारण के कामों में ख़र्च होता है तो उन कामों से अधिकतर मनुष्यों को लाभ के बजाय हानि ही होती है। उदाहरण के लिए भारतवर्ष को ही लीजिये। यहां जितना टैक्स वसूल किया जाता है उसका क़रीब आधा हिस्सा फ़ौज और मारकाट के सामानों में ख़र्च होता है और बहुत ही थोड़ा हिस्सा शिक्षा पर ख़र्च किया जाता है। वह भी उस शिक्षा पर ख़र्च होता है जिससे लाभ कम और हानि अधिक होती है। जनता से टैक्स इसलिए नहीं वसूल किया जाता कि उनकी भलाई और उन्नति के कामों में ख़र्च किया जाय बल्कि इसलिए वसूल किया जाता है कि जिसमें शासक लोग अपनी इच्छा के अनुसार जैसा उचित समझें वैसा ख़र्च करें।

क्या यह उचित है कि अगर किसी चीज़ पर किसी ख़ास आदमी का क़ब्ज़ा है तो दूसरा आदमी उसे अपने काम में न लाये चाहे उसे कितनी ही ज़रूरत क्यों न हो? ऐसा कहा जाता है कि मिल्कियत के बारे में क़ानून और व्यवस्था इसलिए बनाई गई है कि जिसमें मज़दूरों और किसानों के पैदा किये हुए धन को कोई हड़प न कर सके। क्या यह सच है? अगर आप दुनिया में देखें

तो आप को मालूम होगा कि बात बिल्कुल इसके उलटे हो रही है। अर्थात् किसान और मज़दूर जो कुछ पैदा करते हैं उसका बहुत बड़ा हिस्सा सरकार, महाजन, ज़मींदार और मालिक हड़प कर जाते हैं। कल-कारख़ानों में मज़दूर मर पच कर जो पैदा करते हैं वह उनका नहीं बल्कि कल-कारख़ाने के मालिकों का धन गिना जाता है। ज़मींदार के जिस खेत को जोत बो कर किसान अन्न पैदा करता है वह उसकी संपत्ति नहीं बल्कि ज़मींदार की संपत्ति गिनी जाती है।

यह साफ़ ज़ाहिर है कि लगान, ज़मीन और जायदाद के बारे में जितने क़ानून हैं वह सब कोरे न्याय की बुनियाद पर नहीं क़ायम हैं। उन सबों में स्वार्थ का बड़ा भारी अंश घुसा हुआ है। इन सब क़ानूनों की ज़रूरत इसलिए पड़ी कि गुलामी की प्राचीन प्रथा उठ गई थी और उसकी जगह एक नई गुलामी ने ले ली थी। इस नई गुलामी को उचित ठहराने के लिए ही यह सब क़ानून बनाये गये हैं। पहले ज़माने में गुलाम ख़रीदे, बेंचे और काम करने के लिए मजबूर किये जा सकते थे इसलिए उस समय ऐसे क़ानूनों की ज़रूरत पड़ी कि जिसमें गुलामों का ख़रीद-फ़रोख्त क़ानूनन जायज़ समझा जाय। इसी तरह से आजकल नये प्रकार की गुलामी को क़ानूनन जायज़ ठहराने के लिए यह क़ानून बनाया गया कि मनुष्य जितनी चाहे उतनी ज़मीन अपने रुपये के ज़ोर से ख़रीद सकता है, से टैक्स ज़रूर अदा करना पड़ेगा चाहे इस के लिए उसे कितना ही तकलीफ़ क्यों न उठाना पड़े और वह जितनी चाहे उतनी जायदाद अपने क़ब्ज़े में रख सकता है चाहे वह जायदाद कैसे ही ख़राब तरीक़े से क्यों न हासिल की गई हो।

सातवां अध्याय

गुलामी की जड़ क़ानून है।

कुछ लोगों का यह ख्याल है कि वर्तमान समय की गुलामी उन तीन क़िस्म के क़ानूनों की वजह से पैदा हुई है जो लगान, ज़मीन और जायदाद के बारे में हैं। इसलिए जो लोग मज़दूरों और किसानों की हालत सुधारने की कोशिश करते हैं वे इन्हीं तीन क़ानूनों में सुधार करने की ओर झुकते हैं।

कुछ सुधारक इस बात पर ज़ोर देते हैं कि मज़दूरों के ऊपर से टैक्स उठा कर अमीरों पर लगाया जाय। कुछ लोग इस बात पर ज़ोर देते हैं कि ज़मीन पर किसी ख़ास आदमी का नहीं बल्कि कुल समाज का क़ब्ज़ा रहे। कुछ लोग, जो अपने को "साम्यवादी" कहते हैं, इस बात पर ज़ोर देते हैं कि कुल कल-कारख़ानें और खेती-बारी इत्यादि समान रूप से सब मज़दूरों और किसानों की सम्पत्ति गिनी जाय। इन सब सुधारों से सुधारक लोग यह आशा करते हैं कि जब इस तरह के क़ानून रद्द हो जायेंगे तो संसार से गुलामी भी उठ जायगी। पर ध्यानपूर्वक देखने से पता लगेगा कि एक क़िस्म का क़ानून रद्द होने के बादही दूसरे क़िस्म का क़ानून गढ़ दिया जाता है जो आम तौर पर दूसरे ढंग से वही काम देता है जो पहले वाला क़ानून देता था। अगर पहलेवाले क़ानून से एक प्रकार की गुलामी पैदा होती थी तो बादवाले क़ानून से एक दूसरे प्रकार की गुलामी पैदा होती है। कुछ जगहों में ग़रीबों के ऊपर से टैक्स

उठा कर अमीरों पर लगा दिये गये हैं पर वहां भी ज़मीन और कल-कारख़ानों पर व्यक्तिगत अधिकार का होना ज़रूरी समझा गया है। ऐसी जगहों में टैक्स जायदाद और कल-कारख़ानों पर लगाये जाते हैं । पर जब तक ज़मीन और कल-कारख़ानों पर किसी एक का क़ब्ज़ा है तब तक किसान और मज़दूर स्वतंत्र नहीं हो सकते, क्योंकि वे टैक्स की गुलामी से चाहे छूट गये हों पर ज़मींदारों और मालिकों की गुलामी में अब तक फँसे हुए हैं। कहीं-कहीं किसान लोग ज़मींदारों की गुलामी से अगर छूट गये हैं तो लगान और टैक्स की गुलामी में अब तक फंसे हुए हैं। जब वे लगान और टैक्स नहीं अदा कर सकते या जब फ़सल मारी जाती है तो उन्हें लाचार हो कर सूद पर महाजनों से क़र्ज़ लेना पड़ता है और वे महाजनों के चंगुल में फंस जाते हैं। कुछ लोग इस बात पर जोर देते हैं कि ऐसे क़ानून बनाये जायं जिनसे ज़मीन, जायदाद और कल-कारख़ाने किसी एक या एक से अधिक आदमी के क़ब्ज़े में न रहें पर वे भी टैक्स और लगान के बारे में क़ानूनों को बनाये रखना चाहते हैं। इस तरह से एक प्रकार की गुलामी उठाकर दूसरे प्रकार की गुलामी क़ायम करने की कोशिश की जा रही है। जिस तरह से जेलर क़ैदी के गले से ज़ञ्जीर हटा कर उसके हाथों में पहिना देता है या हाथों से हटाकर उसके पैरों में डाल देता है या जिस तरह से हाथ, पर और गला तीनों जगह से ज़ञ्जीर हटा दी जाती है और इसके बाद क़ैदी बन्द कोठरी में बन्द कर दिया जाता है उसी तरह से मज़दूर और किसान अगर एक तरह की गुलामी से हटा दिये जाते हैं तो फिर फ़ौरन ही दूसरी तरह की गुलामी में डाल दिये जाते हैं।

इसलिए साफ़ ज़ाहिर है कि जिन क़ानूनों की वजह से वर्तमान समय की गुलामी पैदा हुई है उनमें से किसी एक क़ानून के उठा देने से गुलामी नहीं दूर हो सकती बल्कि सिर्फ़ गुलामी की शक़ल बदल सकती है। अगर लगान, ज़मीन और जायदाद तीनों के बारे में क़ानून एक साथ रद्द कर दिये जांय तब भी गुलामी न दूर होगी। मौजूदा क़िस्म की गुलामी के स्थान पर एक ऐसे नये ढंग की गुलामी पैदा हो जायगी जो कभी स्वप्न में भी नहीं देखी गई।,

इससे सिद्ध हुआ कि गुलामी सिर्फ़ इन्हीं तीन क़ानूनों या किसी ख़ास क़ानून की वजह से नहीं है बल्कि इसलिए है कि दुनिया में ऐसे लोग हैं जो अपने स्वार्थ के लिए क़ानून बनाते हैं। जब तक क़ानून बनाने की ताक़त ऐसे लोगों के हाथों में रहेगी तब तक गुलामी संसार से कभी नहीं दूर हो सकती।

पिछले ज़माने में लोग खुले तौर पर गुलाम बनाये जाते थे। उस समय इस तरह के क़ानून बनाये गए कि जिनसे गुलामों का रखना क़ानूनन जायज़ माना गया। इसके बाद ज़मीन रखना, जायदाद का मालिक होना और टैक्स लगाना फ़ायदे-मन्द समझा गया। इसलिए इनके सम्बन्ध में क़ानून बनाये गए। आजकल कल-कारखानों में मज़दूरों को नौकर रखना फ़ायदेमन्द है इसलिए ऐसे क़ानून बनाये गए हैं जिनसे मज़दूर कल-कारख़ानों के मालिकों की इच्छानुसार काम करते रहें। इसलिए गुलामी का ख़ास सबब यह है कि क़ानून बनाने का हक़ कुछ लोगों के हाथों में है और वे जैसा चाहते हैं वैसा क़ानून गढ़ देते हैं।

आठवां अध्याय

सरकार और क़ानून ।

अब सवाल यह उठता है कि वह कौन सी ताक़त है जिसकी बदौलत क़ानून बनानेवाले क़ानून बनाते हैं और उनके अनुसार लोगों को चलाते हैं ? राजनीति-शास्त्र के ग्रन्थों में इस प्रश्न के बारे में बहुत विस्तार के साथ लिखा गया है। राजनीति-शास्त्र के अनेक पण्डितों ने इस प्रश्न के हल करने में अपना सिर खपाया है। पर अब तक कोई स्पष्ट उत्तर इस प्रश्न का न मिला कि वह कौन सी शक्ति है जिसकी बदौलत क़ानून बनाये जाते हैं।

राजनीति-शास्त्र में क़ानून की यह परिभाषा की गई है, "किसी देश या जाति के क़ानून उस देश या जाति के कुल मनुष्यों की इच्छा के द्योतक हैं।" अर्थात् क़ानून कुल मनुष्यों की इच्छा के अनुसार बनाये जाते हैं। पर हर एक देश में ऐसे मनुष्य अधिकतर पाये जाते हैं जो या तो क़ानून भंग करते हैं या क़ानून भंग करने की इच्छा रखते हैं किन्तु दण्ड के भय से ऐसा नहीं करते। इनके मुक़ाबिले में उन लोगों की संख्या बहुत कम है जो दिल से क़ानूनों की पाबन्दी करना चाहते हैं। इससे साफ़ ज़ाहिर है कि क़ानून सर्व-सम्मति के अनुसार नहीं बनाये गये।

उदाहरण के लिए एक क़ानून यह है कि कोई रेल की लाइन या तार के खंभों को नुक़सान न पहुंचावे, दूसरा क़ानून यह है कि फ़लां फ़लां आदमी को ख़ास ख़ास वक्त़ पर सलाम ज़रूर करना चाहिए, तीसरा क़ानून यह है कि हर एक आदमी को फ़ौज में

ज़रूर भर्ती होना पड़ेगा, चौथा क़ानून यह है कि कोई उस ज़मीन को अपने काम में नहीं ला सकता जो दूसरे की संपत्ति गिनी जाती है, पांचवां क़ानून यह है कि फ़लां फ़लां टैक्स हर एक आदमी को ज़रूर अदा करना पड़ेगा। इसी तरह के सैकड़ों क़ानून हर एक देश में प्रचलित हैं पर उनमें से एक भी क़ानून ऐसा नहीं है जो सब लोगों की सम्मति से बनाया गया हो। इन सब क़ानूनों में एक समानता अवश्य है और वह यह कि अगर कोई आदमी इनमें से किसी क़ानून को तोड़ेगा तो वह उन लोगों के हाथ से सज़ा पायगा जिन्होंने इन क़ानूनों को बनाया है। क़ानून बनाने वाले अपने हथियार-बन्द आदमियों को भेज कर उन लोगों को गिरफ़्तार करते हैं जो क़ानून-भंग के अपराधी होते हैं। बाद को वे या तो क़ैद में छोड़े जाते हैं या फांसी की सज़ा पाते हैं।

अगर कोई आदमी अपनी गाढ़ी कमाई में से सरकार को टैक्स नहीं अदा करना चाहता तो सरकारी आदमी आकर ज़बर्दस्ती उससे टैक्स वसूल कर लेते हैं। अगर वह सरकारी आदमियों को ऐसा करने से रोकता है तो वे उसे पकड़ ले जाते हैं और उसकी स्वतंत्रता छीन कर उसे क़ैदख़ाने की हवा खिलाते हैं। यही हालत उस आदमी की भी होती है जो उस चीज़ को अपने काम में लाता है जो दूसरे की संपत्ति समझी जाती है। जिस देश में हर एक आदमी के लिए फ़ौज में भर्ती होना लाज़िम है, वहां यही हालत उस आदमी की भी होती है या तो जो स्वयं फ़ौज में भर्ती नहीं होता या दूसरों को उसमें भर्ती होने से रोकता है। इसी तरह से हर एक क़ानून के भंग करनेवाले को उन लोगों के हाथों सज़ा मिलती है जो क़ानून के बनानेवाले हैं।

इंगलिस्तान, अमेरिका, फ्रांस, जापान इत्यादि देशों में प्रजा

को स्वराज्य का अधिकार प्राप्त है। इन सब देशों में शासन प्रजा की राय के मुताबिक़ होता है। पर इन सब जगहों में भी क़ानून सब लोगों की इच्छा के अनुसार नहीं बल्कि उन लोगों की इच्छा के अनुसार बनाये जाते हैं जिनके अधिकार में राज्य की शक्ति होती है। वे वही क़ानून बनाते हैं जिनसे उन्हें फ़ायदा पहुंचने की उम्मीद होती है। हर एक जगह क़ानूनों की पाबन्दी उन्हीं उपायों से कराई जाती है जिन उपायों से कोई ज़बर्दस्त आदमी किसी कमज़ोर आदमी से अपना काम करवाता है।

क़ानून इसीलिए बनाये जाते हैं कि लोग उनके मुताबिक़ काम करें। पर लोग उनके मुताबिक़ काम नहीं कर सकते जब तक कि वे मजबूर न किए जांय। क़ानून के साथ ही साथ इस बात की भी ज़रूरत होती है कि कोई ऐसी ताक़त हो जो लोगों से क़ानून की पाबन्दी करावे। वह ताक़त सरकार की सेना, पुलीस और अदालत है। सेना, पुलीस और अदालत के द्वारा ही सरकार और सरकारी अफ़सर लोगों से अपने क़ानूनों के मुताबिक़ जैसा चाहते हैं वैसा काम कराते हैं। इसलिए क़ानून न्याय के आधार पर अथवा सब लोगों की सम्मति के अनुसार नहीं बनाये जाते बल्कि इसलिए बनाये जाते हैं कि कुछ ज़बर्दस्त लोग, जिनके हाथों में राज्य की कुल शक्ति होती है, अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ लोगों को चला सकें।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है उससे इस प्रश्न का उत्तर मिल जाता है कि वह कौन सी ताक़त है जिसकी बदौलत सरकार क़ानून बनाती है और उसके अनुसार लोगों को चलाती है?

नवां अध्याय

क्या बिना किसी सरकार के हम रह सकते हैं ?

किसानों और मज़दूरों की दुखभरी हालत का सबब यह है कि वे ज़मींदारों और मालिकों की ग़ुलामी में जकड़े हुए हैं। उनकी ग़ुलामी का कारण सरकारी क़ानून हैं। क़ानून की पाबन्दी फ़ौज, पुलीस और अदालतों के ज़रिये से कराई जाती है। इस लिए मज़दूरों और किसानों की हालत तभी सुधर सकती है जब फ़ौज, पुलीस और अदालतें बर्बाद कर दी जांय। पर कोई सरकार बिना फ़ौज, पुलीस और अदालत के नहीं क़ायम रह सकती। दूसरे लफ़्ज़ों में हम यह कह सकते हैं कि वास्तव में फ़ौज, पुलीस और अदालतें ही सरकार हैं। इसलिए सवाल यह उठता है कि क्या बिना किसी सरकार के हम रह सकते हैं? लोगों का यह ख़्याल है कि बिना सरकार के अराजकता और गड़बड़ी फैल जायगी, कुल उन्नति और सभ्यता मिट्टी में मिल जायगी और मनुष्य फिर पहले की तरह जङ्गली और असभ्य हालत में आ जायगा। लोगों का यह कहना है कि "अगर वर्त्तमान हालत में कुछ भी फेरफार करने और सरकार को उलटने की कोशिश की जायगी तो चारों ओर ऐसा भयङ्कर दङ्गा-फ़साद, लूट-पाट और ख़ून-ख़राबा होने लगेगा कि जैसा कभी सुनने में नहीं आया और इसका नतीजा यह होगा कि जितने बदमाश और बदचलन हैं वे तो राज्य करेंगे और अच्छे मनुष्य ग़ुलाम की तरह ज़िन्दगी बितायेंगे।" पर जिस भयङ्कर हालत, लूट-पाट और ख़ून-ख़राबा का डर हम लोगों को दिखलाया जा रहा

है वह सब तो इस वर्त्तमान हालत में होता ही रहा है और अब भी देखने में आ रहा है। अगर मान भी लें कि मौजूदा हालत में उलट-फेर करने से अराजकता, उपद्रव और अशान्ति फैल जायगी तो इससे यह नहीं सिद्ध होता कि मौजूदा हालत अच्छी है और हमेशा क़ायम रखने के लायक़ है।

अगर बहुत सी ईंटें एक दूसरे के ऊपर रक्खी जायं तो कई फ़ीट ऊंचा एक पतला सा खम्भा बन जायगा पर वह खम्भा इतना डगमगाता रहेगा कि अगर आप एक हलका सा भी धक्का दें तो वह धड़ाम से नीचे आ गिरेगा। बिल्कुल यही हालत वर्त्तमान सरकार की भी है। वर्त्तमान सरकार की इमारत इतनी बनावटी और कमज़ोर बुनियाद पर क़ायम है कि अगर आप हलका सा भी धक्का दें, तो वह बहुत जल्द बर्बाद हो सकती है। पर इससे यह नहीं सिद्ध होता कि सरकार का होना बहुत ही जरूरी है। इससे यही सिद्ध होता है कि पहले चाहे सरकार की आवश्यकता रही हो पर अब तो इसकी बिल्कुल आवश्यकता नहीं है और इसलिए इससे सिवाय नुक़सान के और कुछ नहीं हो सकता। सरकार नुक़सान पहुंचाने वाली और खतरनाक इसलिए है कि इसकी बदौलत समाज की बुराइयां न सिर्फ़ नहीं घटतीं और नहीं सुधरतीं बल्कि और भी मज़बूत और पक्की होती जाती हैं। यह बुराइयां और भी मज़बूत और पक्की इसलिए होती जाती हैं क्योंकि वे या तो छिपाई जाती हैं या बड़े अच्छे रूप-रङ्ग के साथ दिखलाई जाती हैं और उन्हें उचित ठहराने की बड़ी भारी कोशिश की जाती है।

अभी तक बहुत से मनुष्यों का यही विश्वास क़ायम है कि हम बिना सरकार के नहीं रह सकते। सरकार इस बात की कोशिश लगातार किया करती है कि लोगों का यह विश्वास ढीला न होने

पावे। पर अब योरप के और ख़ास कर के रूस के मज़दूर और किसान असली बात समझने लगे हैं और उनका यह विश्वास बहुत कुछ ढीला हो गया है।

सरकारें अपनी प्रजा से कहती हैं कि "अगर सरकार न रहेगी तो दूसरी क़ौमें तुम पर चढ़ आयेंगी और तुम्हें अपना गुलाम बना लेंगी।" पर वास्तव में देखा जाय तो क़ौमें नहीं बल्कि सरकारें एक दूसरे पर चढ़ाई करती हैं। सरकारें अपनी प्रजाओं में इस बात का डर फैलाये रहती हैं कि दूसरी क़ौमें तुम पर हमला कर देंगी अगर सरकार की छत्र-छाया तुम पर से उठ जायगी। यह डर इसलिए फैलाया जाता है जिसमें कि प्रजाएं हमेशा सरकार के क़ब्ज़े में बनी रहें। हर एक देश की सरकार फ़ौजी ख़र्च बढ़ाने के समय अपनी प्रजा से यही कहती है कि हम केवल शत्रुओं से तुम्हारी रक्षा करने के लिए यह ख़र्च बढ़ा रहे हैं, हमारा उद्देश दूसरी जातियों पर हमला करने का नहीं है। पर यह बात हमारी समझ में नहीं आती कि जब सभी सरकारें एकमात्र अपनी प्रजा की रक्षा के उद्देश से ही यह सब कर रही हैं और जब किसी का भी उद्देश हमला करने का नहीं है तो फिर हमले का डर कहां से हो सकता है। वास्तव में बात यह है कि एक देश की सरकार दूसरे देश की सरकार को अविश्वास और भय की दृष्टि से देखा करती है और व्यापार तथा राजशक्ति में एक दूसरे से आगे बढ़ जाना चाहती है। इसीलिए वे अपनी सेना और अपना सैनिक सामान नित्य-प्रति बढ़ाती जा रही हैं। जब हरएक देश इस तरह से युद्ध के लिए हमेशा तैयार खड़ा रहता है तो फिर मामूली सी मामूली बात पर भी युद्ध छिड़ जाते हैं, दोनों ओर की सेनाएं युद्ध के मैदान में आकर डट जाती

हैं और एक दूसरे को संहार करने लगती हैं।

सरकारें अपनी प्रजाओं से कहती हैं कि हम क़ानूनों के द्वारा तुम्हारी ज़मीन और जायदाद की रक्षा करती हैं। पर वास्तव में देखा जाय तो इन क़ानूनों का नतीजा यह है कि कुल ज़मीन और जायदाद धीरे धीरे अमीरों, ज़मींदारों, कम्पनियों और पूंजीपतियों के क़ब्ज़े में चली जा रही है और अधिकतर किसान तथा मज़दूर बिना ज़मीन और जायदाद के होते जा रहे हैं।

सरकारें अपनी प्रजाओं से कहती हैं कि हमारे बहुत से क़ानून इस मन्शा से बनाये गये हैं कि हरएक आदमी जो कुछ पैदा करे वह उसी की संपत्ति समझी जाय और वह उसका जैसा चाहे वैसा उपयोग कर सके। पर वास्तव में इन्हीं क़ानूनों की बदौलत यह देखा जाता है कि मज़दूर और किसान ज़िन्दगी की सब ज़रूरी चीज़ें और ऐशो-आराम के सामान पैदा करते हैं पर उनके हाथ कुछ भी नहीं लगता और वे कोरे के कोरे रह जाते हैं। वे तमाम ज़िन्दगी भर उन अमीरों, महाजनों और ज़मींदारों के आश्रित रहते हैं जो उनकी मेहनत से बेजा फ़ायदा उठा कर मालामाल हो रहे हैं।

इसलिए यह विचार बिल्कुल ग़लत है कि बिना सरकार के हम अपनी ज़िन्दगी नहीं क़ायम रख सकते। क्या हम लोग बैल और घोड़े हैं कि बिना सरकारी चाबुक के नहीं चल सकते? क्या यह शर्म की बात नहीं है कि हम उन लोगों के शासन में रहें और उन लोगों के बनाये हुए क़ानूनों को मानें जो देवता नहीं बल्कि हमारे ही समान नाक, कान, हाथ, पैर इत्यादि रखते हैं? कौन सी ऐसी बात है जिससे यह साबित

हो कि शासक लोग शासित लोगों से अधिक चरित्रवान हैं ? आम तौर पर यही देखा जाता है कि जिन लोगों के हाथ में राज्य की शक्ति और अधिकार रहता है वे दूसरों की अपेक्षा अधिक दुश्चरित्र, खोटे और झूठे होते हैं ।

अगर मुझ से कोई पूँछे कि "बिना सरकार के मनुष्य कैसे रह सकते हैं ? " तो मैं उससे पूछूँगा कि "जिन मनुष्यों में कुछ भी बुद्धि और समझ है वह किस तरह सरकारी क़ानूनों के दबाव में रह सकते हैं और किस तरह इस सिद्धान्त को स्वीकार कर सकते हैं कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का शासन कर सकता है ? "

दो में से एक बात ठीक हो सकती है :— या तो मनुष्यों को ईश्वर ने बुद्धि दी है या वे बिना बुद्धि के हैं । यदि ईश्वर ने मनुष्यों में बुद्धि नहीं पैदा की तो सभी मनुष्य बुद्धि-रहित हैं । इसलिए कोई कारण नहीं है कि कुछ लोगों को तो शासन का अधिकार हो और दूसरे लोग बिना इस अधिकार के रहें । अब अगर ईश्वर ने मनुष्यों को बुद्धि दी है तो उनका सम्बन्ध एक दूसरे के साथ शक्ति के सिद्धान्त पर नहीं बल्कि बुद्धि के सिद्धान्त पर होना चाहिए । बुद्धि इस बात की गवाही नहीं देती कि यदि शक्ति के ज़ोर से कुछ लोगों ने शासन का अधिकार अपने हाथ में कर लिया है तो हम उनके शासन को हमेशा मानते रहें । इसलिए हम यह हरगिज़ नहीं मान सकते कि सरकार हमारे लिए ज़रूरी है और हम उनके बिना नहीं रह सकते ।

दसवां अध्याय

सरकारें दुनिया से किस तरह उठाई जा सकती हैं ?

दुनिया में ग़ुलामी के कारण क़ानून हैं । क़ानून सरकारों के द्वारा बनाये जाते हैं । इसलिए लोग ग़ुलामी से तभी आज़ाद हो सकते हैं जब दुनिया से कुल सरकारें उठा दी जायं। पर सवाल यह उठता है कि दुनिया से सरकारें किस तरह उठाई जा सकती हैं ?

अब तक दुनिया में जहां कहीं हथियार के ज़ोर से सरकार को बर्बाद करने की कोशिश की गई है वहां वहां यही नतीजा हुआ है कि जब एक सरकार बर्बाद हो जाती है तो फ़ौरन दूसरी और अक्सर उससे अधिक अत्याचारी सरकार उसकी जगह पर क़ायम हो जाती है और दुनिया में ग़ुलामी पहिले की तरह बनी ही रहती है ।

दुनिया में ग़ुलामी का असली सबब यही है कि कुछ लोग अपनी इच्छा के अनुसार दूसरे लोगों को काम करने के लिए मजबूर करते हैं । इसलिए जब तक लोग हथियार या ताक़त के ज़ोर से दूसरों की इच्छा के अनुसार काम करने के लिए मजबूर किये जायंगे तब तक दुनिया में ग़ुलामी क़ायम रहेगी । हथियार या ताक़त के ज़ोर से ज़बर्दस्ती ग़ुलामी उठाने की कोशिश करना वैसा ही है जैसा कि एक आग से दूसरी आग बुझाने या एक नहर के पानी से दूसरी नहर के पानी को बांधने की कोशिश करना । इसलिए ग़ुलामी से छूटने का उपाय अगर कोई है तो

यह है कि एक सरकार को बर्बाद करने के बाद दूसरी सरकार न क़ायम की जाय बल्कि सरकार का नामोनिशान ही हमेशा के लिए उठा दिया जाय।

दुनिया में जहां कहीं सरकार क़ायम है वहां वहां यही देखा जाता है कि थोड़े से लोग हथियारबन्द हैं और हरएक तरह के अधिकार अपने हाथ में रक्खे हुए हैं। पर अधिकतर लोग या तो बिना हथियार और बिना अधिकार के हैं या बहुत कम हथियार और बहुत कम अधिकार उनके हाथ में हैं। प्राचीन समय से लेकर अब तक दुनिया के हरएक देश में कुछ लोग दूसरे लोगों पर इसीलिए हुकूमत करते आये हैं कि कुछ लोग हथियारबन्द हैं और दूसरे लोग हथियारबन्द नहीं हैं।

प्राचीन समय में योद्धा लोग अपने अगुआओं के कहने से दूसरे लोगों पर हमला करके उन्हें लूट-पाट लेते थे। लूट-पाट से जो धन-माल उनके हाथ लगता था उसे वे आपस में अपने अपने हिस्से के मुताबिक़ बाट लेते थे। पर आजकल हरएक देश की हथियारबन्द फ़ौजें जो अधिकतर किसान और मज़दूरों में से भर्ती की जाती हैं, दूसरे देशों, दूसरी क़ौमों और दूसरे निःशस्त्र मनुष्यों पर अपने किसी फ़ायदे के लिए हमला नहीं करतीं। वे सरकार और सरकारी अफ़सरों के कहने से उन लोगों के फ़ायदे के लिए दूसरों पर हमला कर देती हैं जो स्वयं उस हमले में बिलकुल हिस्सा नहीं लेते। इस प्रकार दूसरे के खून से अपना हाथ रंगने का गुनाह तो करते हैं बेचारे अनजान और भोले-भाले सिपाही, और उससे फ़ायदा उठाती है सरकार और उसके बड़े बड़े अफ़सर!

दुनिया की सरकारों और लूट-पाट करनेवाले डाकुओं में

सिर्फ़ यह फ़र्क़ है कि डाकू लोग दूसरों पर एकाएक हमला करते हैं और अगर वह लोग जिन पर हमला किया जाता है, अपना धन और माल देने से इनकार करते हैं तो डाकू उन्हें हर एक तरह से सताते हैं और उन्हें क़त्ल भी कर देते हैं। पर दुनिया की सरकारें और उनके राजा, मंत्री, सभापति इत्यादि स्वयं दूसरों पर हमला लूट-पाट और मार-काट नहीं करते बल्कि इन्हीं भोले-भाले सिपाहियों के द्वारा करवाते हैं। डाकू लोग जो कुछ भी करते हैं वह अपनी इच्छा से और अपने फ़ायदे के लिए करते हैं। पर सरकारी सेनाएं जो कुछ करती हैं वह दूसरे की इच्छा से और दूसरे के फ़ायदे के लिए करती हैं। इसका कारण यही है कि भोले-भाले किसान और मज़दूर धोखा देकर फ़ौज में भर्ती किये जाते हैं और उनसे दूसरों पर हमला और दूसरों का ख़ून कराया जाता है। इसलिए दुनिया से सरकार का भूत उठाने के लिए सब से ज़रूरी यह है कि सरकार की धोखेबाज़ी लोगों पर और ख़ास करके किसानों और मज़दूरों पर ज़ाहिर कर दी जाय, क्योंकि इसी धोखेबाज़ी की बदौलत सरकार और उसके थोड़े से लोग अधिकतर लोगों को अपनी गुलामी में जकड़े हुए हैं।

सरकार और उसके कर्मचारी लोगों को यह कह कर धोखा देते हैं कि "देखो, तुममें से अधिकतर लोग मूर्ख और अशिक्षित हैं, तुममें इतनी शक्ति नहीं है कि तुम अपना शासन आप कर सको, इसलिए हम इस भार को अपने हाथ में लेते हैं और तुम्हारी भलाई के लिए तुम्हारा शासन करते हैं। हम तुम्हारी रक्षा बिदेशी शत्रुओं से करेंगे, देश के अन्दर शान्ति और अमन-आमान क़ायम रक्खेंगे, तुम्हारे बीच इन्साफ़ करने के लिए अदालतें खोलेंगे, तुम्हारी शिक्षा के लिए स्कूल और कालिज खोलेंगे और तुम्हारी भलाई का हरएक

ख्याल रक्खेंगे। इसके बदले में हम सिर्फ़ थोड़ी सी बात चाहते हैं और उसमें से मुख्य बात यह है कि तुम अपनी आमदनी का एक हिस्सा हमें देते रहो और हमारी फ़ौज में भर्ती हो जाओ, जो तुम्हारी रक्षा के लिए बहुत ही ज़रूरी है।"

अधिकतर लोग इन शर्तों को इसलिए नहीं मानते कि वे इनसे होनेवाले फ़ायदे और नुक़सान पर पहले से विचार कर लेते हैं बल्कि इसलिए मानते हैं कि वे जन्म से ही अपने को इन हालतों में पाते हैं। पर ज्योंही रुपया और सिपाही सरकार के क़ब्ज़े में आ जाते हैं त्योंही वह अपनी प्रजा की रक्षा विदेशी शत्रुओं से करने और उनकी ख़ुशहाली बढ़ाने के बजाय ऐसा उपाय करती है जिससे कि पास-पड़ोस की जातियां चिढ़ जांय और उन पर हमला करने का मौक़ा उसे मिल जाय। इस तरह से सरकार की बदौलत युद्ध में जो भयानक मार-काट और ख़ून-ख़राबी होती है उससे जातियों की बड़ी भारी हानि और बहुधा उनका नाश भी हो जाता है।

"सहस्र-रजनी-चरित्र" में एक बटोही की मनोरंजक कहानी है। उस कहानी में लिखा है कि एक बटोही रास्ता चलते चलते एक सून-सान टापू में पहुंचा। वहां उसे एक बुड्ढा आदमी दिखलाई पड़ा। जिसकी टांगें लक़वा लगने से बिल्कुल बेकाम हो गई थीं। वह एक नदी के किनारे बैठा हुआ था। उसने बटोही से कहा कि "हे भले आदमी, मैं तुम्हारा बड़ा उपकार मानूँगा यदि तुम मुझे अपने कन्धों पर सवार करा कर इस नदी के पार उतार दोगे।" बटोही ने उसकी बात स्वीकार कर ली। पर ज्योंही वह बुड्ढा आदमी उस के कन्धे पर सवार हुआ त्योंही उसने इतनी ज़ोर से अपनी टांगें उसकी गर्दन के चारों तरफ़ कस दीं कि वह बिल्कुल लाचार हो गया और पूरी तरह से बुड्ढे के क़ब्ज़े में आ गया। वह जिस तरफ़

चाहता उस तरफ़ बटोही को ले जाता । वह उसके कन्धे पर चढ़ा हुआ पेड़ों से तोड़ तोड़ कर आप फल खाता और बटोही को कुछ न देता । इसके अलावा वह बटोही का उपकार मानना तो र रहा उलटे हरएक प्रकार से उसका निरादर और अपमान करता था ।

यही सलूक उन जातियों के साथ भी होता है जो अपनी अपनी सरकार को रुपये और सिपाही से सहायता देती हैं । प्रजा के दिये हुए रुपये से सरकार सेनाओं को अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित करती है, युद्ध की तैयारी में नये नये क़िले, नये नये शस्त्रागार, नये नये जहाज़, नये नये एयरोप्लेन, नये नये अस्त्र शस्त्र लगातार बनाती है और इन सब बातों पर हर साल करोड़ों रुपया पानी की तरह बहाती है । तनख्वाह की लालच से बेचारे भोले-भाले किसान और मज़दूर फ़ौज में भर्ती होते हैं । फ़ौज के लिए ऐसे कड़े क़ानून बनाये जाते हैं कि बेचारे सिपाही अपनी इच्छा के अनुसार कुछ भी नहीं कर सकते । वे न्याय अथवा अन्याय की बिल्कुल परवाह न करते हुए राजा, पार्लियामेन्ट या उनके मंत्रियों की निरंकुश इच्छा और आज्ञा के अनुसार जहां कहा जाता है वहीं कूंच कर देते हैं । वे इस बात की तनिक भी परवाह नहीं करते कि जिस पक्ष को लेकर हम लड़ रहे हैं वह न्याय-युक्त है या नहीं । वे एक ऐसी उम्र में अपने घर, कुटुम्ब, भाई-बन्धु, खेती-बारी और व्यापार धन्धे से अलग कर दिये जाते हैं जब कि उन्हें इस बात का काफ़ी अनुभव नहा होता कि जो हम कर रहे हैं वह न्याय है या अन्याय । घर-द्वार से अलग हो कर वे तंग बारिकों में एक साथ रक्खे जाते हैं । विचित्र ढंग की वर्दी उन्हें पहिनाई जाती है । हर रोज़ उन्हें क़वायद करना, बन्दूक़ चलाना, निशाना लगाना और मेशीनगन चलाना सिखाया जाता है । उनसे उसी तरह काम लिया जाता

है जिस तरह किसी मेशीन से लिया जाता है। उन्हें क़वायद वग़ैरह इसलिए सिखाई जाती है कि जिसमें वे अपनी सरकार के हुक्म से दूसरों का खून करने के लिए हमेशा तैयार बैठे रहें और उन ज्यादतियों तथा अत्याचारों में बिना उज़्र शरीक हो जायं जो सरकार की ओर से किये जाते हैं। इसी फ़ौज के ज़रिये से कुल जाति की जाति सरकार के क़ब्ज़े में आ जाती है और उसकी गुलामी से नहीं निकल सकती। जब कुल जाति इस तरह से सरकार के क़ब्ज़े में आ जाती है तो फिर उस पर अपना क़ब्ज़ा जमाये रखने के लिए सरकार उसे हमेशा राज-भक्ति की शिक्षा देती रहती है। यही सरकार की सब से बड़ी धोखेबाज़ी है।

इसलिए दुनिया की सरकारों को बर्बाद करने का एकमात्र उपाय यह है कि उनकी धोखेबाज़ी लोगों में अच्छी तरह से ज़ाहिर कर दी जाय। लोगों के लिए यह समझ लेना बहुत ही ज़रूरी है कि जातियों को एक दूसरे से अपनी रक्षा करने की कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि जातियों के बीच जो शत्रुताएं होती हैं वह सरकारों ही के द्वारा उत्पन्न होती हैं। लोगों को यह भी समझ लेना चाहिए कि जातियों को सेनाओं की कोई आवश्यकता नहीं है। अगर किसी को सेना की आवश्यकता है तो केवल सरकार और उनके थोड़े से कर्मचारियों को। जातियों को सेनाओं से सिवाय हानि के कोई लाभ नहीं है क्योंकि इन्हीं सेनाओं की बदौलत जातिओं की गुलामी और भी मज़बूत होती है।

इसी धोखेबाज़ी की बदौलत थोड़े से लोग, जो सरकार के नाम से पुकारे जाते हैं, जातियों पर अपना प्रभाव जमाये रहते हैं और न सिर्फ़ उन्हें बर्बाद करते हैं बल्कि बचपन से ही उन्हें पुश्तहापुश्त के लिए ख़राब कर देते हैं। और यह सब इसलिए

किया जाता है कि जिसमें दुनिया की क़ौमें हमेशा सरकारों की गुलाम बनीं रहें।

यदि आप विचारपूर्वक देखें तो आपको बिश्वास हो जायगा कि सरकारों और मामूली लुटेरों में कोई फ़र्क़ नहीं है। अगर कोई फ़र्क़ है तो यह कि लुटेरों और डाकुओं की अपेक्षा सरकारें अधिक अत्याचारी और अधिक अन्यायी होती हैं। डाकू और लुटेरे अधिकतर अमीरों को लूटते हैं पर सरकारें अधिकतर ग़रीबों को लूटती हैं और उन अमीरों, ज़मींदारों तथा पूंजीपतियों की रक्षा करती हैं जो अत्याचार और अन्याय में सरकार का हाथ हरएक प्रकार से बटाते हैं। लुटेरे किसी को ज़बर्दस्ती अपने गरोह में नहीं भर्ती करते पर सरकारें आमतौर पर ज़बर्दस्ती सिपाहियों को फ़ौज में भर्ती करती हैं। डाकू और लुटेरे किसी के साथ पक्षपात नहीं करते। उनकी नज़र में सब बराबर हैं। पर सरकारें उन लोगों का अधिक पक्षपात करती हैं जो उनके धोखे-बाज़ी के कामों में उन्हें सहायता देती हैं। सबसे अधिक पक्षपात सम्राट्, राजा या सभापति का किया जाता है। प्रजा से बसूल किये गये रुपये का अधिक भाग वही ख़र्च करते हैं। उनके बाद कमान्डर-इनचीफ़ (सेनापति), मंत्री, गवर्नर और पुलीस अफ़सर से लेकर मामूली कान्स्टेबिल तक का नंबर आता है। इनमें से जो जितनी सहायता सरकार को अत्याचार और अन्याय करने में देता है उसके साथ उतना ही अधिक पक्षपात किया जाता है। पर जो मनुष्य सरकार की बुराइयों के साथ सहयोग नहीं करता अथात उसे टैक्स नहीं देता, उसकी फ़ौज में नहीं भर्ती होता, उसकी अदालत में नहीं जाता, उसके क़ानूनों को नहीं मानता उस पर सरकार मनमाना अत्याचार करती है, क़ैदख़ाने की हवा

खिलाती है और कभी कभी तो फांसी पर भी लटका देती है। लुटेरे जान-बूझ कर लोगों के चरित्र और जीवन को नहीं बिगाड़ते पर सरकारें अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए बचपन से ही अपनी प्रजा को राजभक्ति, देशभक्ति और झूठे धर्म की शिक्षा देकर उनके चरित्र और जीवन को भ्रष्ट किया करती हैं। लुटेरों और सरकारों में एक सब से बड़ा फ़र्क़ यह है कि मामूली लुटेरों और डाकुओं के क़ब्ज़े में रेल तार इत्यादि नहीं होते पर दुनिया की सरकारें रेल, तार इत्यादि वैज्ञानिक आविष्कारों की सहायता से अपने लूट-पाट का काम बड़ी खूबी के साथ जारी रखती हैं। रेल, तार, अदालत, जेलखाना, फ़ौज इत्यादि की बदौलत हरएक देश की सरकार लोगों को खूब अच्छी तरह गुलाम बना सकती है और उनपर मनमाना अत्याचार कर सकती है।

अब हर एक मनुष्य को यह समझ लेना चाहिए कि सरकारें न सिर्फ़ बेफ़ायदा ही हैं बल्कि लोगों के जानो-माल और चरित्र को बहुत ही नुक़सान पहुंचानेवाली हैं। कोई ईमान्दार और सच्चा आदमी न तो सरकार के कामों में शरीक हो सकता है और न उसे शरीक होना चाहिए। हरएक ईमान्दार और सच्चा आदमी कभी न चाहेगा कि हम सरकार के द्वारा कोई फ़ायदा उठायें और न उसे कभी ऐसी इच्छा करनी चाहिए। ज्यों ही लोगों की समझ में यह बात आने लगेगी त्योंही वे सरकार के साथ असहयोग करना प्रारम्भ कर देंगे। जब अधिकतर लोग सरकार से असहयोग कर देंगे तभी सरकार की धोखेबाज़ी का ख़ातमा होजायगा और तभी लोग सरकार की गुलामी से छुटकारा पा जायेंगे। बस यही एक उपाय गुलामी से छूटने का है।

ग्यारहवां अध्याय

हर एक मनुष्य का कर्त्तव्य ।

जो लोग आराम से ज़िन्दगी बिता रहे हैं और जो बहुत सी ख़राब आदतों के शिकार हो रहे हैं उनके लिए अपनी आदतों का छोड़ना या अपने जीवन का क्रम बदलना असम्भव मालूम पड़ता है। अगर उनसे इस सम्बन्ध में कुछ कहा जाता है तो वे जबाब देते हैं कि "भाई, तुम्हारी बातें चाहे ठीक हों पर वे अमल में हरगिज़ नहीं लाई जा सकतीं।"

अमीर, ज़मींदार और कल-कारख़ाने के मालिक गुलाम रखने के इतने आदी हो गये हैं कि जब किसानों और मज़दूरों की हालत सुधारने का सवाल उठता है तो वे इस तरह की बातें करते हैं जिन से प्रगट होता है कि मानो वे अपने को किसानों और मज़दूरों का बिधाता समझते हैं। पर यह उनके ख़्याल में कभी नहीं आता कि उन्हें दूसरे आदमियों को अपना ग़ुलाम बनाने या उनसे अपना काम लेने का कोई अधिकार नहीं है। अगर वे सचमुच किसानों और मज़दूरों की भलाई करना चाहते हैं तो मुख्य बात, जो उन्हें करना चाहिए और जिसे वे कर सकते हैं, यह है कि उन्हें फ़ौरन उस बुराई को बन्द कर देना चाहिए जिसे वे अब तक करते आ रहे हैं। जो बुराई वे कर रहे हैं वह बहुत ही स्पष्ट और निश्चित है अर्थात् यह कि वे उस प्रथा को क़ायम रक्खे हुए हैं जिस के अनुसार करोड़ों किसान और मज़दूर दूसरों की ग़ुलामी में जकड़े हुए अनेक कष्ट और दुःख अनुभव कर रहे हैं। बस यही एक मुख्य

बात है जिसे उन्हें फ़ौरन बन्द कर देना चाहिए।

पर अधिकतर किसान और मज़दूर गुलामी में रहते रहते ऐसे गिर गये हैं कि वे सच्ची हालत समझ ही नहीं सकते। वे यही समझते हैं कि अगर हमारी हालत ख़राब है तो इसका दोष ज़मींदारों और मालिकों के मत्थे है, क्योंकि वे उन्हें बहुत ही कम मज़दूरी देते हैं और कुल ज़मीन, कल-कारख़ाने वग़ैरह अपने क़ब्ज़े में किये हुए हैं। उनके ख़्याल में यह कभी भी नहीं आता कि उनकी इस बुरी हालत का सबब ख़ुद वही हैं। वे कभी यह सोचते भी नहीं कि अगर वे अपनी और अपने भाइयों की हालत सुधारना चाहते हैं तो मुख्य बात यह है कि वह उस बुराई में हरगिज़ न शरीक हों जो उनके साथ की जाती है। खेद के साथ कहना पड़ता है कि वे मूर्खता के कारण उन्हीं बातों से अपनी हालत सुधारना चाहते हैं जिन बातों से वे गुलामी की हालत में आये हैं। किसानों और मज़दूरों ने ऐसी बुरी बुरी आदतें डाल रक्खी हैं और अपनी आवश्यकताएं इतनी ज़्यादा बढ़ा रक्खी हैं कि उन आदतों और आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अपनी स्वतन्त्रता और आत्माभिमान खो बैठते हैं और अपने तथा दूसरों के लिए फ़ज़ूल और नुक़सान पहुंचानेवाली चीज़ें पैदा करते हैं। उनकी बुरी हालत का एक दूसरा बड़ा सबब यह है कि वे सरकार को टैक्स और लगान दे कर तथा सरकार की फ़ौज में भर्ती हो कर वे उस सरकार की सहायता करते हैं जिसका उद्देश लोगों को हमेशा गुलाम बनाए रखना है।

किसानों और मज़दूरों की हालत तभी सुधर सकती है जब वे यह समझ लें कि "सहनाई का बजाना और चने का चबाना दोनों साथ नहीं हो सकता।" अर्थात् तब तक किसानों और मज़दूरों की

हालत नहीं सुधर सकती जब तक कि वे यह ख़्याल करते हैं कि हमें तकलीफ़ भी न उठाना पड़े और हमारा सुधार भी हो जाय। देश और समाज का सुधार बिना लोगों के आत्मत्याग के नहीं हो सकता। इसलिए अगर लोग केवल अपनी ही भलाई नहीं बल्कि अपने भाइयों की भलाई करना चाहते हैं तो उन्हें न सिर्फ़ अपने जीवन का कुल ढङ्ग ही बदलना पड़ेगा और न सिर्फ़ अपनी व्यक्तिगत भलाई का ख़्याल ही छोड़ना पड़ेगा बल्कि एक बड़े भारी संग्राम के लिए भी तयार रहना पड़ेगा। यह संग्राम केवल सरकार के साथ ही नहीं बल्कि अपने और अपने कुटुम्ब के साथ भी करना पड़ेगा। सरकार की आज्ञाओं और क़ानूनों के न मानने से जो अत्याचार उन पर और उनके कुटुम्ब पर किये जायेंगे उनके लिए हमेशा तयार रहना पड़ेगा।

अब "क्या करना चाहिए ?" इस प्रश्न का उत्तर बहुत ही सहज है। इस प्रश्न का उत्तर प्रत्येक मनुष्य आसानी के साथ दे सकता है, क्योंकि इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए उसे किसी दूसरे के पास नहीं जाना है। उसे केवल अपने हृदय को ही सन्तुष्ट करना है। वह उत्तर यह है कि यदि कोई मनुष्य चाहे वह किसान हो या ज़मींदार, मज़दूर हो या मालिक—न सिर्फ़ अपनी बल्कि अपने कुल भाइयों की हालत सुधारना चाहता है तो उसे उन कामों में न शरीक होना चाहिए जिनसे उसकी या उसके भाइयों की गुलामी पैदा होती है। जिन कामों से उसकी या उसके भाइयों की गुलामी पदा होती है उनसे बचने के लिए यह ज़रूरी है कि वह न तो अपनी इच्छा से और न किसी की ज़बर्दस्ती से सरकारी कामों में शरीक हो। उसे न तो फ़ौज में भर्ती होना चाहिए, न किसी सरकारी ओहदे को क़बूल करना चाहिए, न

कौन्सिल या पार्लियामेन्ट का मेम्बर होना चाहिए और न किसी ऐसे काम में शरीक होना चाहिए जिसका सम्बन्ध सरकार से हो। दूसरी बात यह है कि उसे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सरकार को कोई टैक्स न अदा करना चाहिए। यही नहीं बल्कि टैक्स से बसूल किये गये रुपये से कोई फ़ायदा उसे न उठाना चाहिए और न उन संस्थाओं में कोई भाग लेना चाहिए जो टैक्स के द्वारा बसूल किये गये रुपये से चलाई जाती हैं। तीसरी बात यह है कि उसे किसी प्रकार की सहायता या रक्षा सरकार के हाथ से न लेनी चाहिए। सारांश यह कि सरकार ही हमारी गुलामी की जड़ है, उसी के द्वारा सब बुराइयां पैदा होती हैं इसलिए उसके साथ किसी बात में हमें सहयोग न करना चाहिए।

पर बहुत से लोग शायद यह कहेंगे कि "सरकार के हरएक काम के साथ असहयोग करना असम्भव है"। अगर हम सरकार से पूरा-पूरा असहयोग करें तो इसके माने यह हैं कि हम जिन्दा नहीं रह सकते। जो मनुष्य क़ानून के विरुद्ध सेना में भर्ती होने से इनकार करेगा वह क़ैद की सज़ा पायेगा, जो मनुष्य टैक्स या लगान न अदा करेगा उसका माल क़ुर्क़ हो जायगा; अपने गुज़ारा के लिए कोई सिल-सिला न होते हुए भी अगर कोई सरकारी नौकरी करने से इनकार करेगा तो वह और उसका कुटुम्ब दोनों भूख से मर जायेंगे; यही हाल उन लोगों का भी होगा जो सरकार से कोई रक्षा कराना अस्वीकार करेंगे, इसी तरह से सरकारी डाकख़ाना, रेल, तार, सड़क, पुल, इत्यादि से कोई ताल्लुक़ न रखना असंभव होगा।

यह सच है कि वर्तमान समय के मनुष्यों के लिए सरकार के हरएक कामसे असहयोग करना बहुत ही कठिन है। अगर हरएक

आदमी सरकार से पूरा पूरा असहयोग नहीं कर सकता तो इसके माने यह नहीं हैं कि वह कोशिश करने पर दिन बदिन सरकार से ज्यादा आजादी नहीं हासिल कर सकता । कम से कम कुछ लोग तो जरूर ऐसे मिलेंगे जो सरकार के साथ पूरा पूरा असहयोग कर सकते हैं और करने के लिए तैयार हैं । अगर हरएक आदमी में इतनी हिम्मत नहीं है कि वह जबर्दस्ती फौज में भर्ती होने के क़ानून को तोड़ सके तो कम से कम हरएक मनुष्य इतना तो अवश्य कर सकता है कि वह अपनी इच्छा से सरकार की फ़ौज, पुलिस या दूसरी सरकारी नौकरी में न भर्ती हो । कम से कम इतना तो अवश्य कर सकता है कि वह सरकारी नौकरी न करे चाहे उसमें अधिक वेतन क्यों न मिलता हो। उसे चाहिए कि वह ग़ैर-सरकारी नौकरी या ग़ैर-सरकारी काम करे चाहे उसमें कम ही तनख़ाह क्यों न मिलती हो। बहुत से लोग ऐसे हैं जो कम से कम इतना तो अवश्य कर सकते हैं और करते भी हैं।

यह सब कोई स्वीकार करते हैं कि हमारे जीवन का वर्तमान क्रम बहुत ही ग़लत और ख़राब तरीक़े का है । पर इस बात को बहुत कम लोग जानते हैं कि हमारी ख़राब हालत अर्थात् हमारी गुलामी की जड़ सरकार है। इसलिए गुलामी को मिटाने के लिए सरकार को मिटाना जरूरी है । पर सरकार को मिटाने का केवल एक उपाय है, वह यह कि लोग सरकार के कामों में सहयोग न दें और उसके साथ कोई वास्ता न रक्खें। हम इस बात पर विचार करना नहीं चाहते कि सरकार के साथ असहयोग करना कठिन है या आसान अथवा असहयोग का लाभदायक फल जल्दी मिलेगा या देर में। हमारा सिर्फ़ यही कहना है कि गुलामी से छूटने का एक-मात्र उपाय केवल असहयोग है। जब संसार का

हरएक देश असहयोग-मंत्र का पुजारी हो कर सरकार की गुलामी से छूटेगा तभी संसार में फिर एक बार सत्ययुग और सच्ची स्वतंत्रता का प्रादुर्भाव होगा। वही समय जो जाड़े की ठंडी हवा के झकोरों से ठिठरी हुई पखुड़ियों में बसन्त के प्रातःसमीर से नव-जीवन संचार करता है, जो योरप की जंगली जातियों को सभ्यता के उच्च शिखर पर लाता है, जो छोटे से रोम को संसार का साम्राज्य देता है—वही समय—एक न एक दिन अवश्य इस असहयोग के द्वारा संसार में सच्ची स्वतंत्रता और रामराज्य का युग स्थापित करेगा।

द्वितीय खण्ड ।

सरकार और प्रजा ।
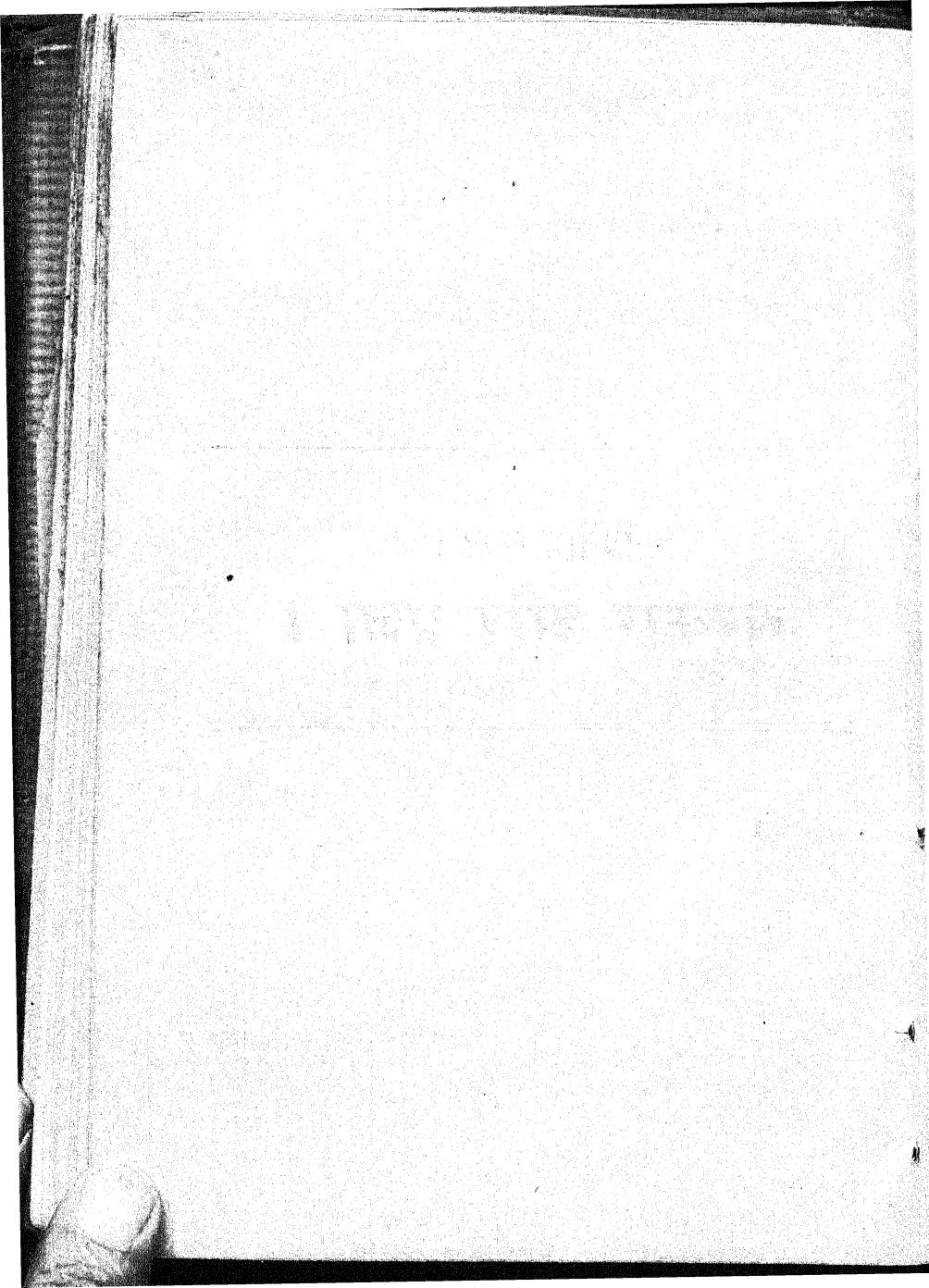
१—समाज-सुधारकों से अपील ।

अपने "किसानों और मजदूरों के नाम सन्देश" में मैंने यह विचार प्रगट किया था कि अगर मजदूर और किसान अत्याचार से स्वतन्त्र होना चाहते हैं तो उनके लिए यह जरूरी है कि वे जिस तरह से ज़िन्दगी बिता रहे हैं उस तरह से ज़िन्दगी बिताना छोड़ दें, अपने भाइयों से तुच्छ स्वार्थ के लिए लड़ना झगड़ना बन्द कर दें और "दूसरों के साथ वैसा ही बर्ताव करें जैसा वे चाहते हैं कि दूसरे उनके साथ करें या दूसरों के साथ वैसा न करें जैसा वे चाहते हैं कि दूसरे उनके साथ न करें।"

जसी मुझे आशा थी उसी के अनुसार चारों ओर से मेरे इस मत का खण्डन बड़े ज़ोर के साथ हुआ। सबों ने एक स्वर से यही कहा कि "टाल्स्टाय का यह मत स्वप्न के समान है, भला ऐसे विचार कहीं अमल में लाये जा सकते हैं ? लोग तो लगातार अत्याचार और अन्याय के शिकार हो रहे हैं और आप कहते हैं कि जब तक तुम पवित्र, सत्याग्रही और सदाचारी न हो जाओगे तब तक इस अत्याचार से छुटकारा नहीं मिल सकता। क्या जब तक हमारा जीवन पवित्र, सत्याग्रही और सदाचारी न हो जाय तब तक हम हाथ पर हाथ रक्खे बैठे रहें और अन्याय तथा अत्याचार को चुपचाप सहते रहें ?"

इसलिए मैं थोड़े से लफ़्ज़ों में यह बतलाना चाहता हूं कि मेरा यह मत किस तरह अमल में लायेजाने के योग्य है। मेरा यह विश्वास है कि समाज-सुधार के लिए जितने प्रस्ताव और तरीक़े अब तक निकले हैं उन सबों में मेरा प्रस्ताव या मेरा बतलाया हुआ

तरीक़ा ज़्यादा अच्छा और अधिक ध्यान देने के योग्य है। मैं ख़ास करके उन सुधारकों से कुछ कहना चाहता हूं जो ख़ाली शब्दों से नहीं बल्कि सच्चे हृदय से अपने भाइयों की सेवा करना चाहते हैं। मेरी अपील ऐसे ही लोगों से है।

सामाजिक जीवन का उद्देश समय समय पर बदला करता है और उसके साथ ही साथ मनुष्य के जीवन का ढङ्ग भी बदलता रहता है। एक समय था जब कि सामाजिक जीवन का उद्देश पशुओं की तरह पूर्ण स्वतन्त्रता के साथ जीवन व्यतीत करना था। इस उद्देश के अनुसार मनुष्य-जाति का एक भाग दूसरे भाग को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीति से भक्षण करने को तैयार रहता था। तब एक ऐसा समय आया जब कि सामाजिक उद्देश में परिवर्तन हो गया। इस परिवर्तन के अनुसार मनुष्य अपने राजाओं, शासकों और सरदारों को ईश्वर की तरह पूजने लगे और उनकी आज्ञाओं को बड़े उत्साह और प्रेम के साथ मानने लगे। इस परिवर्तन के अनुसार समाज की शक्ति अलग अलग समुदाय या मनुष्यों के हाथ से निकल कर एक मनुष्य के हांथ में आ टिकी जिसे लोग राजा, शासक, बादशाह, हाकिम, सरदार इत्यादि कहने लगे। इसके बाद फिर सामाजिक उद्देश में परिवर्तन हुआ। इस परिवर्तन के अनुसार समाज का सङ्गठन किसी एक मनुष्य के स्वार्थ के लिए नहीं बल्कि कुल मनुष्यों की भलाई के लिए किया गया। इस सामाजिक सङ्गठन का नाम प्रतिनिधि-सत्तात्मक-राज्य, रिपब्लिक, प्रजातन्त्र इत्यादि रक्खा गया। आजकल सामाजिक उद्देश में फिर एक प्रकार के परिवर्तन करने की चर्चा चल रही है। इस परिवर्तन का उद्देश यह होगा कि ज़मीन, खेत, कान, कल-कारख़ाना इत्यादि जितनी चीज़ें किसानों और मज़दूरों के द्वारा चलाई जाती हैं वह सब किसी एक की

सम्पत्ति नहीं बल्कि कुल समाज या राष्ट्र की सम्पत्ति गिनी जायंगी। यह सब उद्देश चाहे आपस में कितने ही भिन्न क्यों न हों पर एक समानता उनमें यह है कि वह सब शक्ति या बल पर निर्भर हैं। उन सबों का उद्देश यही है कि ज़बर्दस्ती डरा कर, धमका कर या तलवार के ज़ोर से राज्य या सरकार के क़ानून लोगों से मनवाये जांय।

लोगों ने इस बात को मान लिया है कि सब की भलाई इसी में है कि कुछ लोगों को समाज की रक्षा और सङ्गठन का भार सौंप दिया जाय। लोगों का यह विश्वास जम सा गया है कि जब तक कुछ लोगों के हाथ में शक्ति न रख दी जायगी तब तक लोगों की जान-माल और स्वतन्त्रता की रक्षा एक दूसरे से नहीं हो सकती। आश्चर्य की बात तो यह है कि न सिर्फ़ वही लोग जो समाज की मौजूदा हालत को ज़रूरी समझते हैं बल्कि वह सब साम्यवादी, विप्लववादी और अराजक लोग भी, जो मौजूदा हालत को बिल्कुल बदल देना चाहते हैं, शक्ति का रखना आवश्यक समझते हैं। वे भी इस बात को ज़रूरी समझते हैं कि समाज की रक्षा के लिए कुछ लोगों के हाथ में इतनी शक्ति अवश्य रहे कि वे दूसरों से क़ानून की पाबन्दी ज़बर्दस्ती करा सकें।

पर प्राचीन समय से ले कर अब तक जिन जिन आदमियों से ज़बर्दस्ती क़ानून की पाबन्दी कराई गई है वे कभी भी इन क़ानूनों को सब से अच्छा नहीं समझते थे। इसीलिए दुनिया में सरकार और हाकिमों के ख़िलाफ़ बलवे होते रहे हैं। न जाने कितने बादशाह, राजे, महाराजे और हाकिम तख़्त से उतारे जा चुके हैं, न जाने कितने अत्याचारी शासक और तलवार के ज़ोर से क़ानून की पाबन्दी करानेवाले हाकिम, गोली से मारे गये और फांसी पर लटकाए

गये हैं। बलवों और परिवर्तनों के बाद भिन्न भिन्न समय में समाज का जो नवीन सङ्गठन हुआ है उससे कुछ दिनों के लिए तो लोगों को संतोष मिलता रहा है पर चूंकि जिन लोगों के हाथ में शक्ति आ जाती है वे हमेशा न्याय पर स्थिर नहीं रह सकते, इसलिए नये शासक और अधिकारी भी कुछ दिनों के बाद अपनी शक्ति को सर्वसाधारण की भलाई के लिए नहीं बल्कि अपने स्वार्थ के लिए उपयोग में लाने लगते हैं। कभी कभी तो नये शासक, हाकिम या नई राज्य-प्रणाली पुराने शासक, हाकिम या पुरानी राज्य-प्रणाली से भी अधिक अत्याचारी और अन्यायी होती है, यदि पुराने शासक, हाकिम या पुरानी राज्य-प्रणाली को हटाने में लोग सफल नहीं होते। अगर उनका बलवा या विद्रोह कामयाब नहीं होता तो पुराने शासक या हाकिम सावधान हो कर पहले से भी अधिक अपनी रक्षा का बन्दोबस्त कर लेते हैं और बलवाइयों को कुचल डालते हैं। इससे लोगों की स्वतंत्रता को और भी हानि पहुंचती है।

योरप की कुल १९ वीं शताब्दी का इतिहास राज्यक्रान्तियों, बलवों और विद्रोहों से भरा हुआ है। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में जितनी राज्यक्रान्तियां और बलवे हुए, उन सबों में प्रायः सफलता मिली, पर नेपोलियन इत्यादि जितने शासक वर्ग इन राज्यक्रान्तियों के बाद राजगद्दी पर बैठे उनसे लोगों की स्व-तंत्रता में कोई उन्नति या बढ़ती नहीं हुई। पर उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तर भाग में राज्यक्रान्ति या बलवा करने के जितने प्रयत्न हुए वे सरकार से दबा दिये गये। इसका नतीजा यह हुआ कि सर-कार अपनी रक्षा का प्रयत्न पहले से अधिक करने लगी। अब हर एक सरकार की ताक़त इतनी ज्यादा बढ़ गई है, और विज्ञान की बदौलत उसके पास ऐसे ऐसे सामान, हथियार और गोले

हो गये हैं कि सरकार के ख़िलाफ़ बलवा करना या उससे लड़ना सर्वसाधारण के लिए एक प्रकार से असंभव हो गया है। हर एक सरकार न सिर्फ़ लोगों की दौलत छीन कर बहुत दौलतमन्द हो गई है और न सिर्फ़ उसके क़ब्ज़े में बड़ी भारी फ़ौज है बल्कि वह सब द्वार भी उसके हाथ में हैं जिनके ज़रिये से वह अपना प्रभाव लोगों पर बचपन से ही डाल सकती है। स्कूल और कालिज उस के हाथ में हैं, प्रेस और अख़बार उसके अधिकार में हैं और लोगों की नैतिक तथा आत्मिक उन्नति के द्वार उसके क़ब्ज़े में हैं। इन सब चीज़ों की बदौलत वह अपना सिक्का लोगों पर ख़ूब पूरी तरह से जमाये रहती है।

यह विचित्रता केवल हमारे ही समय की है। नीरो, चंगेज़ खां, औरङ्गज़ेब इत्यादि बादशाह कितने ही शक्तिशाली और प्रबल क्यों न रहे हों पर अपने राज्य की सीमाओं पर या दूर के प्रान्तों पर होनेवाले बलवों का दबाना या अपनी प्रजा की शिक्षा, सभ्यता तथा मानसिक विकास के द्वार को अपने अधिकार में रखना और उनको अपनी इच्छा के अनुसार चलाना उनके लिए असम्भव था, पर आजकल ख़ुफ़िया पुलीस, प्रेस और अख़बार, रेल और तार, जेल और अदालत, अटूट धन, बच्चों की शिक्षा का द्वार और सब के ऊपर फ़ौज यह सब सरकार के हाथ में हैं जिनकी बदौलत वह मनमाना अत्याचार और अन्याय कर सकती है।

हर एक सरकार का संगठन इस प्रकार का है कि वह आसानी के साथ बहुत थोड़े प्रयत्न से ही क्रान्ति और बलवा मचाने वालों की कोशिशों को मिट्टी में मिला सकती है। इसलिए सरकार को दबाने और उसके ऊपर विजय पाने का सिर्फ़ एक

उपाय है और वह यह कि फ़ौजें, जिनमें अधिकतर किसान, मजदूर और सर्वसाधारण लोग शामिल हैं, सरकार के अन्याय और अत्याचार को जानकर उसकी सहायता करना छोड़ दें और उससे पूरा पूरा असहयोग कर दें। पर सरकार अच्छी तरह से जानती है कि हमारी प्रधान शक्ति फ़ौजों पर निर्भर है, इसलिए उसने सेनाओं का संगठन ऐसी रीति से किया है और उनके लिए ऐसे कड़े कड़े नियम बनाये हैं कि कितना ही आन्दोलन और प्रचार क्यों न किया जाय पर फ़ौज सरकार के हाथ से नहीं निकल सकती। जिस तरह से कि आंख बिना पलक भांजे नहीं रह सकती इसी तरह से कितना ही सच्चा, ईमान्दार और कितने ही ऊंचे राजनैतिक विचार का मनुष्य क्यों न हो पर यदि वह फ़ौज में भर्ती है और फ़ौजी क़वायद और क़ानून के चक्कर में पड़ा हुआ है तो वह फ़ौजी हुक्म मानने से बाज़ नहीं रह सकता। उससे जिस किसी पर गोली चलाने के लिए कहा जाता है वह उसी पर गोली चला देता है। उससे जिसके विरुद्ध लड़ने के लिए कहा जाता है वह उसी के विरुद्ध लड़ने के लिए कूंच कर देता है। वह इस बात की परवाह नहीं करता कि जिस पक्ष को लेकर हम लड़ रहे हैं वह न्याय के अनुकूल है या प्रतिकूल, उचित है या अनुचित। इस लिए आजकल सरकार के विरुद्ध हथियार के ज़ोर से कोई बड़ा बलवा करना असंभव है और यदि कोई बलवा हो भी जाय तो वह फ़ौरन दबा दिया जायगा। उसका नतीजा सिर्फ़ यही होगा कि बहुत से आदमी ज़ाया जायंगे और सरकार की ताक़त और भी बढ़ जायगी। क्रान्तिवादियों और साम्यवादियों की समझ में कदाचित् यह बात नहीं आ सकती पर उन सब लोगों की समझ में यह बात आये बिना नहीं रह सकती जो ऐतिहासिक घटनाओं

को जानते हैं और उन पर स्वतंत्र हृदय से विचार करते हैं।

सरकार की अजेय शक्ति प्रजा की इच्छा पर निर्भर नहीं है बल्कि उसकी फ़ौज, उसकी पुलीस और उसके अस्त्र शस्त्र पर निर्भर है। बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि लोग सरकार के ऊपर विश्वास नहीं करते पर साथ ही उसके क़ानूनों और हुक्मों को मानकर उसकी इज़्ज़त भी बढ़ाते हैं। लेकिन लाचार होकर उन्हें ऐसा करना पड़ता है। अगर वे ऐसा न करें तो फिर वे कर ही क्या सकते हैं।

पर वर्त्तमान समय में जब से हर एक सरकार की ताक़त बढ़ी है तब से एक नई शिक्षा का प्रचार लोगों में होने लगा है। इस नई शिक्षा के अनुसार सच्ची स्वतन्त्रता इस बात में नहीं है कि सरकार, शासक या हाकिम के डर से उसकी आज्ञाओं को मनुष्य पूरा करे बल्कि सच्ची स्वतन्त्रता इस बात में है कि हरएक मनुष्य अपने विश्वास के अनुसार आचरण करे, लगान या टेक्स अदा करे या न करे, फ़ौज में भर्ती हो या न हो, दूसरी जातियों के साथ शत्रुता का व्यवहार करे या न करे। पर ज्योंही ऐसी सच्ची स्वतन्त्रता लोगों में आ जायगी त्योंही वे इस बात को गवारा न करेंगे कि कुछ थोड़े से आदमी, जो सरकार के नाम से पुकारे जाते हैं, दूसरों पर शासन कर सकें या अपना अधिकार उन पर जमा सकें।

इस नई शिक्षा के अनुसार सरकार की शक्ति कोई ऐसी चीज़ नहीं है जो ईश्वर की ओर से आई हो और न वह शक्ति सामाजिक जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक ही है, बल्कि सरकार की शक्ति एक तरह से उस अत्याचार और अन्याय का परिणाम है जो थोड़े से मनुष्य दूसरे मनुष्यों पर करते हैं। सरकार की शक्ति किसी

निरंकुश राजा के हाथ में हो अथवा किसी उत्तरदायी राजा के, किसी गवर्नर के हाथ में हो या मंत्री के, पार्लियामेण्ट के हाथ में हो या कौन्सिल के, देशी आदमियों के हाथ में हो या विदेशियों के, प्रेसीडेण्ट के हाथ में हो या प्रायममिनिस्टर के—चाहे किसी के हाथ में हो—इसमें कोई शक नहीं कि हर हालत में कुछ थोड़े से आदमी दूसरे आदमियों पर अपना अधिकार अवश्य रक्खेंगे और उन्हें अपनी इच्छा के अनुसार अवश्य चलायेंगे। इस शिक्षा के अनुसार हम ऐसी हालत को स्वतन्त्रता के नाम से नहीं पुकार सकते। ऐसी हालत में भला कहीं स्वतन्त्रता का निवास हो सकता है ? हां, मनुष्य जाति के एक भाग पर दूसरे भाग का अन्याय और अत्याचार अवश्य होगा। अतएव सच्ची स्वतन्त्रता के लिए सब से ज़रूरी यह है कि सरकार की शक्ति या एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य पर अधिकार सदा के लिए उठा दिया जाय। पर सवाल यह है कि सरकार की शक्ति या कुछ मनुष्यों का दूसरे मनुष्यों पर अधिकार किस तरह से उठाया जाय और जब यह अधिकार या शक्ति उठ जाय तो किस तरह से ऐसा इन्तज़ाम किया जाय कि मनुष्य फिर अपनी जङ्गली हालत की तरह एक दूसरे के ऊपर अन्याय, अत्याचार या उद्दण्डता का व्यवहार न कर सके।

प्रायः बहुत से लोग इस बात पर सहमत हैं कि अगर सरकार की शक्ति कभी उठेगी तो वह शारीरिक शक्ति या हथियार के ज़ोर से कभी न उठेगी; क्योंकि जब एक शारीरिक शक्ति दूसरी शारीरिक शक्ति को बर्बाद कर देगी तो कम से कम एक शारीरिक शक्ति तो अवश्य बनी रहेगी। इसलिए सरकार की शक्ति तभी बर्बाद होगी जब लोगों के हृदयों में यह विश्वास दृढ़ हो जायगा कि सरकार की शक्ति बेफ़ायदा और नुक़सान पहुंचानेवाली है।

अतएव मनुष्यों को चाहिए कि वे न तो उसकी आज्ञाओं का पालन करें और न उससे किसी प्रकार का ताल्लुक़ रक्खें। यह एक सत्य और कट्टर सिद्धान्त है कि संसार से सरकार की शक्ति तभी उठ सकती है जब लोग सच्चे और दृढ़ हृदय से सरकार से हरएक प्रकार का सम्बन्ध तोड़ने के लिए तैयार हों और ऐसा करने के लिए यदि उन पर आफ़तें आयें, मुसीबतें खड़ी हों तो वे उन आफ़तों और मुसीबतों को मज़बूती के साथ बर्दाश्त करें। इसी का नाम है सत्याग्रह और इसी को कहते हैं असहयोग। जब जब लोगों में अत्याचार और अन्याय के विरुद्ध यह सत्याग्रह का भाव फैला है तब तब उन्हें विजय मिली है और अन्याय तथा अत्याचार की हार हुई है। अपने में सत्याग्रह का भाव लाने के लिए यह ज़रूरी है कि मनुष्य पवित्र, शुद्ध और सदाचारी जीवन व्यतीत करनेवाला हो। अब मनुष्य इस बात को समझने लगे हैं और इसके अनुसार आचरण करने का यत्न कर रहे हैं। यह भविष्य के लिए बहुत अच्छा चिन्ह है।

सच्चे मनुष्यों और समाज-सुधारकों से मुझे सिर्फ़ यही कहना है कि यदि आप अपनी शक्ति अपने भाइयों की सेवा में लगाना चाहते हैं तो जो कुछ मैंने ऊपर कहा है उस पर ध्यान दीजिए। अगर आप सरकार के साथ इस मतलब से सहयोग करते हैं या सहयोग करना चाहते हैं कि हम इस तरह से अपने भाइयों की सेवा कर सकेंगे तो मैं आप से सिर्फ़ यह पूछूँगा कि ज़रा सोचिये, सरकार क्या है और उसकी शक्ति किस बात पर निर्भर है? अगर आप यही प्रश्न अपने हृदय से करेंगे तो आप को पता लगेगा कि कोई भी सरकार ऐसी नहीं है जो अन्याय या अत्याचार न करती हो, जो दूसरों को न लूटती हो, दूसरों की हत्या न करती हो और

दूसरों को अपना गुलाम न बनाती हो।

अमेरिका के एक बड़े भारी लेखक थोरो ने एक लेख इस विषय पर लिखा है कि मनुष्य को सरकार की आज्ञाओं को क्यों तोड़ना चाहिए। उस लेख में उसने बतलाया है कि जो सरकार अन्याय करती हो, जो अत्याचार का साथ देती हो उसकी आज्ञाओं का मानना या उसके साथ सहयोग करना अपराध ही नहीं बल्कि बड़ा भारी पाप भी है। उस लेख में उसने यह भी लिखा है कि मैंने अमेरिका की सरकार को टैक्स देना इसलिए बन्द कर दिया कि मैं उस सरकार की कोई भी सहायता नहीं करना चाहता जो नीग्रो लोगों की गुलामी को क़ानूनन जायज़ समझती है। क्या यही बर्ताव दुनिया की हरएक सरकार के साथ न होना चाहिए? क्यों कि सभी सरकारें तो एक न एक प्रकार का अत्याचार और अन्याय अपनी प्रजाओं के साथ करती हैं। इसलिए कोई सच्चा आदमी, जो अपने भाइयों की सेवा करना चाहता है और जिसे सरकार की सच्ची हक़ीक़त मालूम हो गई है, सरकार के साथ कभी भी सहयोग नहीं कर सकता।

आप कदाचित् यह कहें कि हम सरकार के साथ सहयोग कर के और उसके क़ानूनों को काम में लाकर उसके हाथ से लोगों के लिए अधिक स्वतन्त्रता और अधिक अधिकार लेना चाहते हैं। पर लोगों की स्वतन्त्रता और उनके अधिकार तभी बढ़ सकते हैं जब सरकार और उसके कर्मचारियों की शक्ति में कमी हो और सरकार तथा उसके कर्मचारियों की शक्ति तभी बढ़ सकती है जब लोगों की स्वतन्त्रता और अधिकार में कमी हो। जितनी ही अधिक स्वतन्त्रता और अधिकार लोगों को होगा उतनी ही कम शक्ति और लाभ सरकार को उनसे होगा। सरकार यह सब अच्छी तरह से

जानती है। इसीलिए वह बातें बड़ी उदारता की कर देती है और लोगों के साथ प्रायः सहानुभूति भी प्रगट कर दिया करती है। वह कभी कभी कुछ तुच्छ सुधार भी लोगों को दे दिया करती है कि जिसमें लोग कुछ दिनों के लिए शान्त हो जायं। उन सुधारों में भी कुछ ऐसा अड़ङ्गा लगा दिया जाता है कि वे प्रजा के किसी काम के नहीं रहते। इसका नतीजा यह होता है कि सरकार और उसके साथियों तथा कर्मचारियों की शक्ति और भी बढ़ जाती है। इस लिए जो मनुष्य लोगों की भलाई के ख्याल से सरकार के साथ सहयोग करना चाहता है वह अपने उद्देश में जितना ही सच्चा होगा उतना ही अधिक सरकार की शक्ति बढ़ाने में सहायक होगा।

लोग शान्ति और सुख के साथ आपस में एक दूसरे की सहायता करते हुए तभी रह सकते हैं जब तलवार की शक्ति पर स्थापित सरकार संसार से हमेशा के लिए उठ जाय और एक ऐसा स्वराज्य क़ायम हो जिस में रह कर लोग बिना किसी दबाव के, बिना किसी अत्याचार के, दूसरों के साथ वैसा ही बर्ताव करें जैसा वे चाहते हैं कि दूसरे उनके साथ करें। यह स्वराज्य तभी क़ायम हो सकता है जब हम तलवार के ज़ोर पर क़ायम रहनेवाली सरकार से कोई वास्ता न रक्खें, उसकी आज्ञाओं को न मानें, उसके लगान और टैक्स को न अदा करें, उसकी अदालतों में न जायें और उसकी फ़ौजों में भर्ती न हों, अर्थात् स्वाराज्य तब तक क़ायम नहीं हो सकता जब तक कि सत्याग्रह और असहयोग का भाव लोगों में पूरी तरह से न फैल जाय। इसलिए अन्त में समाज-सुधारकों से तथा प्रजा की सेवा में लगे हुए पुरुषों से मुझे केवल यही अपील करना है कि यदि आप समाज की सेवा सच्चे हृदय से करना चाहते हैं और यदि आप चाहते हैं कि लोगों का उद्धार इस

अत्याचार और अन्याय से हो तो आप स्वयं सत्याग्रही बनें और अपने भाइयों में भी सत्याग्रह के भाव का प्रचार अपनी पूरी शक्ति के साथ करें। यही समाज की सब से बड़ी सेवा है और इसी से उसका उद्धार होगा।

२—सरकार और देश-भक्ति।

मैं कई बार अपने इस विचार को प्रगट कर चुका हूं कि वर्त्तमान समय में देश-भक्ति का भाव एक अप्राकृतिक, न्याय-विरुद्ध और हानिकारक भाव है। यह भाव उन बहुत सी बुराइयों की जड़ है जिनसे मनुष्य-समाज अनेक प्रकार की पीड़ाओं से पीड़ित हो रहा है। इसलिए कोई उपाय ऐसा करना चाहिए जिससे लोगों में इस भाव की शिक्षा बिल्कुल न फैलाई जाय बल्कि कोशिश यही होनी चाहिए कि यह भाव हरएक उपाय से लोगों के हृदयों से दूर कर दिया जाय। पर आश्चर्य की बात है कि यद्यपि इसी भाव की बदौलत संसार में अनेक नाशकारी युद्ध हुए हैं और हरएक देश में सैनिक व्यय तथा अस्त्र-शस्त्र की संख्या बढ़ रही है तथापि मेरे इस मत के विरुद्ध बड़ी आवाज़ उठाई गई और यह कहा गया कि सिर्फ़ अन्यायपूर्ण और झूठी देश-भक्ति का जो भाव है वही ख़राब है, पर न्यायपूर्ण और सच्ची देश-भक्ति का भाव कभी ख़राब नहीं है, बल्कि सच्ची देश-भक्ति का भाव बहुत ही ऊंचा और श्रेष्ठ भाव है जिसका खण्डन करना और जिसे निकृष्ट समझना न केवल मूर्खता बल्कि दुष्टता का भी चिन्ह है।

पर सच्ची देश-भक्ति क्या है यह कोई भी नहीं बतलाता। हां, आमतौर पर यह कहा जाता है कि सच्ची देश-भक्ति इसी में है कि हम अपने देश, जाति या राष्ट्र के लिए ऐसा हित-साधन करें जिस से दूसरी जातियों या दूसरे देशों को कोई हानि न पहुंचे। पर इस तरह की देश-भक्ति केवल कुछ लोगों की कल्पना-शक्ति में है। वास्तव में देश-भक्ति इसी को लोग समझते हैं कि हमारा देश सब देशों से आगे बढ़ जाय, हमारी जाति सब जातियों में श्रेष्ठ मानी जाय, हमारा व्यापार सब देशों के व्यापार से बढ़ जाय और हमारी सरकार सब देशों की सरकारों से ज्यादा मज़बूत हो जाय। इसी देश-भक्ति के भाव से प्रेरित हो कर हरएक देश के लोग दूसरे देशों के विरुद्ध लड़ाई के मैदान में जा डटते हैं और एक दूसरे के खून से अपने हाथों को रंगते हैं। इसी देश-भक्ति के भाव की बदौलत मनुष्य-जाति को इतनी भयङ्कर हानियां पहुंच रही हैं। इसलिए साफ़ ज़ाहिर है कि देश-भक्ति का भाव बहुत ही निकृष्ट और हानि पहुंचानेवाला भाव है और इस भाव का प्रचार करना संसार के साथ बड़ा भारी अन्याय और अत्याचार करना है।

एक समय था जब कि देश-भक्ति के भाव की ज़रूरत हरएक देश के लोगों को थी, क्योंकि उस समय हरएक जाति दूसरी जाति के लोगों पर अपने लाभ के लिए हमला करती थी और उनके जान-माल को हानि पहुंचाती थी। उस समय अपनी रक्षा के लिए देश-भक्ति के भाव का प्रचार करना हरएक जाति के लिए बहुत ही आवश्यक था। पर आजकल रेल, तार, व्यापार और वैज्ञानिक आविष्कारों की बदौलत एक जाति के मनुष्य दूसरी जाति के मनुष्यों से इतने ज्यादा हिलमिल गये हैं और उनका सम्बन्ध आपस में इतना घनिष्ट हो गया है कि अब एक जाति पर दूसरी जाति के

हमले का डर बिल्कुल लोप हो गया है। अब सब देश और सब जाति के लोग आपस में शान्ति के साथ रहते हैं, एक दूसरे के साथ व्यापार और रोज़गार करते हैं, एक दूसरे के कवियों, विद्वानों और तत्त्ववेत्ताओं का आदर करते हैं और एक दूसरे के प्रसिद्ध पुरुषों की प्रतिष्ठा करते हैं। इस सम्बन्ध को तोड़ने की या इस शान्ति में विघ्न डालने की उन्हें कोई आवश्यकता नहीं है। इसलिए अब देश-भक्ति का भाव हमेशा के लिए उठ जाना चाहिए। पर दुनिया की हरएक सरकार की बदौलत यह जीर्ण और हानिकारक भाव घटने के बजाय दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है।

एक जाति के लोगों का दूसरी जाति के लोगों के साथ लड़ने में कोई लाभ नहीं है। तब यह प्रश्न हो सकता है कि फिर एक जाति के लोग दूसरी जाति के लोगों पर हमला करने में अपनी सरकार की मदद क्यों करते हैं? इसका उत्तर यह है कि हरएक देश की सरकार, हाकिम और कर्मचारी तथा वह सब धनी, ज़मींदार, पूंजीवाले और अख़बारवाले जिनका स्वाथ सरकार के स्वार्थ के साथ सना हुआ है, सर्वसाधारण में देश-भक्ति के भाव को सदा जागृत किया करते हैं। इन सबों के हाथों में लोगों पर अपना प्रभाव डालने के ऐसे ऐसे ज़रिये मौजूद हैं कि वे हमेशा लोगों को इस भाव की शिक्षा बड़ी सफलता के साथ दे सकते हैं।

जो सरकारी अफ़सर जितना ही देश-भक्त होता है उसकी उतनी ही ज्यादा तरक्क़ी सरकार में होती है। इसी तरह जो फ़ौजी आदमी अपने देश या सरकार के लिए जितनी ही वीरता के साथ लड़ता है वह उतनी ही ज्यादा तरक्क़ी पाता है। देश-भक्ति के नाम पर अख़बारवाले तथा अन्य व्यापारी असंख्य धन पैदा करते हैं। जो लेखक, अध्यापक और सम्पादक जितनी ही अधिक देश-भक्ति

की शिक्षा लोगों को देता है वह उतना ही बड़ा समझा जाता है। जो राजा या बादशाह जितनी ही अधिक देश-भक्ति अपने कामों में प्रगट करता है वह उतनी ही अधिक प्रसिद्धि लोगों में पाता है।

सरकार, उसके कर्मचारी और उसके पिट्ठुओं के हाथों में अनगिनत रुपया, फ़ौज, स्कूल, कालिज और अखबार मौजूद हैं। स्कूलों में वे अपने देश के प्रति भक्ति और दूसरे देशों के प्रति घृणा का भाव बच्चों के हृदयों में पैदा करते हैं। वहां ऐसे ऐसे इतिहास बच्चों को पढ़ाये जाते हैं जिनमें यह सिखलाया जाता है कि हमारी जाति सब से अच्छी जाति है और हम लोग जो कुछ करते हैं सदा उचित ही करते हैं। जवानों और बुड्ढों में देश-भक्ति का भाव वे झूठे अखबारों, जलूसों, यादगारों और सभाओं के द्वारा पदा करते हैं। सब के ऊपर वे देश-भक्ति का भाव लोगों में निम्नलिखित प्रकार से जागृत करते हैं:— पहले वे हर प्रकार का अन्याय और अत्याचार दूसरी जातियों पर करते हैं जिनकी वजह से शत्रुता का भाव उन जातियों में जागृत हो जाता है। तब वे अपने देशवालों से कहते हैं कि देखो अमुक जाति के लोग तुम्हारे साथ शत्रुता करते हैं, उन्हें तुम अपना शत्रु समझो और उनसे युद्ध करने के लिए हमेशा तैयार रहो। देश-भक्ति का यह भयानक भाव योरप के लोगों में आग की तरह सुलग रहा है और उसकी ज्वाला दिन पर दिन बढ़ रही है। वर्त्तमान समय में यह भाव अपनी पूरी हद तक पहुंच गया है। अब इसके आगे वह किस हालत तक पहुंचेगा यह कहा नहीं जा सकता।

जर्मन लोगों ने इस भयानक भाव के मद से उत्तेजित हो कर क्या क्या उत्पात किये हैं यह जर्मनी के आधुनिक इतिहास से पता लगता है। जर्मनी के शासकों ने जर्मन लोगों की देशभक्ति

को इतना अधिक उत्तेजित किया कि उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तर भाग में एक क़ानून वहां पास हुआ जिसके अनुसार जर्मनी के हरएक आदमी को फ़ौज में ज़रूर भर्ती होना पड़ता था। सब मनुष्यों को चाहे वे विद्वान् हों या मूर्ख, धार्मिक हों या नास्तिक, पिता हो या पुत्र—सब को फ़ौज में भर्ती होकर मार-काट की विद्या का अभ्यास करना पड़ता था। विद्वान से विद्वान् और उदार से उदार जर्मन भी अपने फ़ौजी अफ़सर का गुलाम रहता था और उसकी आज्ञा से जिसको कहा जाता था उसको मारने के लिए वह हमेशा तैयार रहता था। वह इस बात का कोई ख़्याल न करता था कि जिन आदमियों को मारने के लिए हमसे कहा जा रहा है वे न्याय पर है या अन्याय पर। वे अपने अधिकार के लिए खड़े हुए हैं या अन्याय पक्ष के लिए। वह अपने बाप और भाई की भी परवाह न करता था। अफ़सर के कहने से वह उन पर भी गोली चला देता था। इस बात की शपथ फ़ौज में भर्ती होने के पहले उनसे ले ली जाती थी कि उनका अफ़सर जो उनसे कहेगा वह उन्हें बिना किसी सोच विचार के फ़ौरन करना होगा। हाल का महा संग्राम इसी देशभक्ति के भयानक भाव का परिणाम था। जर्मनी की देखा-देखी फ्रान्स, रूस आदि दूसरे देशों ने भी फ़ौज में ज़बर्दस्ती भर्ती करने की प्रथा का प्रचार किया। जब योरप के हरएक देश की प्रजा देशभक्ति के मद में चूर हो कर मतवाली हो गई तो फिर हरएक सरकार के अभिमान, अत्याचार और पागलपन का कोई ठिकाना न रहा। एशिया, अफ्रिका और अमरीका में थोड़ी थोड़ी सी ज़मीन के लिए इन सब क़ौमों में लाग-डांट शुरू हुई जिसकी बदौलत इन सब देशों के बीच दिन पर दिन शत्रुता, अविश्वास और घृणा का भाव बढ़ता गया।

जो देश या ज़मीनें इन क़ौमों के क़ब्ज़े में आईं वहां के लोग बाक़ायदा तौर पर इसलिए बर्बाद कर दिये गये कि जिसमें इन गोरी क़ौमों को अपना पैर फलाने की जगह मिले। सिर्फ़ सवाल यह था कि कौन सी क़ौम दूसरी जातियों के मुल्कों और ज़मीनों को छीनने के लिए और वहां के निवासियों को बर्बाद करने के लिए सब से आगे बढ़ती है। जो क़ौमें जीत कर ग़ुलाम बना ली गई हैं उनके मामूली से मामूली अधिकारों को सरकारें पैरों के तले कुचल रही हैं। हरएक देश की प्रजाएं अपनी अपनी सरकार के साथ उसके अन्याय, अत्याचार, लूट-पाट और मार-काट में पूरी पूरी सहानुभूति करती हैं। वे न केवल सहानुभूति ही करती हैं बल्कि बड़ी प्रसन्न होती हैं जब वे सुनती हैं कि दूसरी सरकार ने नहीं वरन उन्हीं की सरकार ने यह सब अत्याचार किये हैं।

भिन्न भिन्न देशों और जातियों के बीच आपस में शत्रुता इस दर्जे तक बढ़ गई है कि हरएक देश की सरकार दूसरे देशों पर पंजा मारने और उन्हें हड़प जाने के लिए हमेशा तैयार रहती है। देश-भक्ति की बदौलत योरप के हरएक देश की क़ौमें ऐसी ख़ूँख़ार हो गई हैं कि न सिर्फ़ फ़ौजी लोग ही मारकाट और युद्ध को चाहते हैं और उनसे प्रसन्न होते हैं बल्कि योरप और अमरीका के सर्वसाधारण लोग भी जो शान्ति के साथ अपने अपने घरों में रहते हैं, युद्ध की ख़बरों को सुन कर प्रसन्न होते हैं और दूसरे देशों पर अपनी सरकार की विजय मनाया करते हैं। हरएक क़ौम के सिर्फ़ जवान और बूढ़े ही नहीं बल्कि छोटे छोटे बच्चे और बालक भी बड़े प्रसन्न होते हैं जब वे सुनते हैं कि उनकी फ़ौजों ने दुश्मनों के बहुत से आदमियों को मार डाला है या

घायल कर दिया है। उनके माता पिता भी उन्हें इस तरह से उत्साही करते हैं कि जिसमें वे और भी अधिक उत्साह इन सब भयानक बातों में लेने लगें।

जब एक क़ौम अपनी फ़ौज बढ़ाती है तो उसकी देखादेखी पड़ोसी क़ौमों को भी अपनी अपनी फ़ौज बढ़ानी पड़ती है। इस तरह से दुनिया में दिन पर दिन फ़ौजों की तादाद और उनके ऊपर होनेवाला खर्च बढ़ रहा है। इसी तरह से हरएक देश में क़िलों की और जहाज़ी बेड़ों की तादाद भी बढ़ती जा रही है। इंगलैंड अगर एक जहाज़ बनाता है तो अमरीका दो बनाता है। जर्मनी अगर एक क़िला बनाता है तो फ्रान्स दो बनाता है।

छोटे छोटे लड़के शराबी और बदमाश आदमी आपस में लड़ते हैं और जब उनमें से एक दूसरे को एक तमाचा या एक मुक्का मारता है तो दूसरा पहले को दो तमाचा या दो मुक्का जमाता है। बस यही तमाशा योरप की क़ौमों के बीच हो रहा है। योरप के हरएक देश के प्रतिनिधि आपस में उसी तरह से लड़ते हैं जिस तरह से कि जानवर, शराबी या छोटे छोटे लड़के आपस में लड़ते हैं। अफ़सोस की बात है कि ये ही प्रतिनिधि, मंत्री, राजे, बादशाह और राजनीतिज्ञ दूसरों को सभ्यता सिखाने का दावा करते हैं।

हालत दिन पर दिन ख़राब होती जा रही है और नहीं मालूम यह हालत किस हद तक पहुंचनेवाली है। कुछ भोले-भाले और विश्वासी आदमियों को यह आशा है कि अन्तर्राष्ट्रीय मामलों को तै करने के लिए जो "लीग-आफ़-नेशन्स" या राष्ट्र-मण्डल क़ायम हुआ है उससे युद्ध की संभावना अब न रह जायगी। पर योरप की जैसी हालत है, जिस तरह से एक देश दूसरे देश को दबाना चाहता है, जिस तरह से पराधीन देशों की

स्वतंत्रता पैरों तले रौंदी जा रही है, जिस तरह से हरएक देश का फ़ौजी ख़र्च दिन पर दिन बढ़ रहा है उसे देखते हुए उनकी आशाओं पर पानी फिर जाता है। वर्त्तमान हालत को देखते हुए यह साफ़ ज़ाहिर हो जाता है कि जबतक सरकारें और उनकी फ़ौजें मौजूद हैं तब तक संसार से युद्ध नहीं उठ सकता। दो देशों या जातियों में परस्पर सद्भाव होने के लिए यह ज़रूरी है कि वे एक दूसरे पर विश्वास करें। पर दोनों का एक दूसरे पर विश्वास तब तक नहीं हो सकता जब तक कि वे अपना हथियार न रख दें और अपनी फ़ौजें न तोड़ दें।

जब तक दुनिया की सरकारें एक दूसरे को अविश्वास और घृणा की दृष्टि से देखती हुई अपनी फ़ौजें बढ़ा रही हैं और एक दूसरे पर हमला करने का मौक़ा देखती रहती हैं तबतक कोई समझौता उनमें नहीं हो सकता। ऐसी हालत में समझौता करने की कोशिश करना या तो मूर्खता है या दुनिया को धोखा देने का एक बड़ा भारी बहाना है। अभी हाल में जो महा संग्राम हुआ है उससे कम से कम एक फ़ायदा तो हुआ है अर्थात् उससे यह साफ़ तौर पर ज़ाहिर हो गया है कि जिन बुराइयों के पंजे में लोग फंस रहे हैं वे सरकारों के ज़रिये से नहीं दूर हो सकतीं। सरकारें अगर चाहें तब भी युद्ध को नहीं बन्द कर सकतीं या फ़ौजों को नहीं तोड़ सकतीं।

अपना अस्तित्व सिद्ध करने के लिए सरकार को दूसरी क़ौमों के हमले से अपनी प्रजा की रक्षा करने की आवश्यकता है। पर कोई भी जाति दूसरी जाति पर न तो हमला करती है और न करना चाहती है। इसलिए दुनिया की सरकारें शान्ति चाहने के बजाय बड़ी फ़िक्र के साथ इस बात की कोशिश करती हैं कि दूसरी

जातियों की शत्रुता अपनी प्रजा के प्रति उत्तेजित की जाय। दूसरी जातियों की शत्रुता को भड़काने के बाद सरकारें अपनी प्रजा में देश-भक्ति का भाव उत्तेजित करती हैं और उनसे कहती हैं कि देखो, अमुक जाति तुम पर हमला करना चाहती है, अगर तुम इस ख़तरे से बचना चाहते हो तो लड़ने के लिए हमेशा तैयार खड़े रहो नहीं तो बचने की और कोई दूसरी सूरत नहीं है।

पुराने ज़माने में एक जाति को दूसरी जाति के हमलों से बचने के लिए कदाचित् सरकार की ज़रूरत थी, पर आजकल तो सरकारें कृत्तिम उपायों से ज़बर्दस्ती उस शान्ति को बर्बाद करना चाहती हैं जो परस्पर जातियों के बीच में पाई जाती है। वे उनमें एक दूसरे के बीच ऐसी शत्रुता का भाव पैदा कर रही हैं जो जन्म-जन्मान्तर में भी जानेवाला नहीं है।

बीज बोने के लिए जोतना ज़रूरी है, पर जब बीज बोया जा चुका हो उस समय खेत में बराबर हल चलाते जाना मूर्खता के सिवाय और क्या कहा जा सकता है और उससे सिवाय हानि के और क्या हो सकता है। ठीक यही बात दुनिया की सरकारें अपनी अपनी प्रजाओं से करवा रही हैं। वे जातियों के बीच युद्ध मचवा कर उनकी एकता को नष्ट करती हैं और उन्हें एक दूसरे का शत्रु बना देती हैं। अगर सरकारें न हों तो जातियों के बीच युद्ध या शत्रुता कभी नहीं हो सकती।

अब आइये देखें कि वास्तव में सरकार क्या चीज़ है जिसके बिना, लोगों का ख़्याल है, कि हम जिन्दा नहीं रह सकते? कदाचित् एक समय ऐसा रहा हो जब एक दूसरे से रक्षा करने के लिए सरकार की आवश्यकता थी पर अब सरकार की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि सरकार ख़ुद ही लोगों के लिए एक ख़तरा हो रही है

और उन सब ख़तरों से ज़्यादा ख़तरनाक है जिनका डर वह अपनी प्रजा के हृदयों में बैठाया करती है।

अगर सरकार के चलानेवाले सब महात्मा और पवित्र विचार वाले होते तो सरकार से लोगों को कोई ख़तरा न था, पर हम देखते हैं कि जितने आदमी सरकार के चलानेवाले हैं वे सब महा अभिमानी, स्वार्थी और झूठ सच का कोई ख़्याल न रखनेवाले हैं। इस लिए आम तौर पर सब सरकारें और ख़ास तौर पर फ़ौजी शक्ति पर विश्वास रखनेवाली सरकार बड़ी भयानक चीज़ है। सरकार जिसमें पूंजीवाले, धनी, ज़मींदार और ताल्लुक़ेदार इत्यादि भी शामिल हैं, एक ऐसी संस्था है जिसमें अधिकतर लोग थोड़े से आदमियों और कर्मचारियों के क़ब्ज़े में रख दिये गये हैं। इन थोड़े से आदमियों और कर्मचारियों के ऊपर भी थोड़े से आदमी हैं। उन थोड़े से आदमियों के ऊपर भी कुछ आदमी हैं और उन कुछ आदमियों के ऊपर भी एक आदमी है जिसे बादशाह, वाइसराय, प्रेसीडेण्ट इत्यादि कहते हैं। वह फ़ौजी ताक़त के ज़ोर से बाक़ी लोगों पर अधिकार रखता है और उनसे जैसा चाहता है वैसा काम लेता है।

सरकार के सिरे पर या उसके अगुआ वही लोग होते हैं जो और लोगों की बनिस्बत अधिक चालाक, अधिक उद्दण्ड और अधिक कुटिल होते हैं। सरकार की गद्दी पर बैठनेवाले समय समय पर बदला करते हैं। उदाहरण के तौर पर आज अकबर हैं तो कल औरङ्ग़ज़ेब हैं, आज लुई चौदहवां है तो कल नेपोलियन हैं, आज ज़ार हैं तो कल क़ैसर हैं, आज ऐस्क्विथ हैं तो कल लायड जार्ज हैं, आज लार्ड चेम्सफ़ोर्ड हैं तो कल लार्ड रीडिंग हैं, आज ईस्ट इण्डिया कम्पनी है तो कल महारानी विक्टोरिया हैं।

सरकार की शक्ति न केवल हमारे जान-माल पर है बल्कि

हमारी उन सब बातों पर भी है जिन का सम्बन्ध हमारी शिक्षा, सभ्यता, धर्म और नीति से है। लोग ऐसी भयानक शक्ति को जिस किसी के हाथ में चली जाने देते हैं और आप ग़ुलामों की तरह उसकी आज्ञाओं को मानने के लिए तैयार रहते हैं। लेकिन जब उससे कोई बुराई पैदा होती है तो उन्हें आश्चर्य होता है और वे उसके सुधार में लगते हैं पर उससे होता ही क्या है। लोग अराजकों के बम गोले से इतना डरते हैं पर वे उस सरकार के ख़तरे से बिल्कुल नहीं डरते जो उनके सिर पर हमेशा सवार रहती है और उनको बड़ा से बड़ा नुक़सान पहुंचा सकती है।

युद्ध और अस्त्र-शस्त्र की भयानक बुराइयों से बचने के लिए मनुष्य-जाति को न तो शान्ति-सभाओं की ज़रूरत है, न सन्धि-पत्रों की ज़रूरत है, न राष्ट्र-मण्डल की ज़रूरत है, न पञ्चायती अदालतों की ज़रूरत है, बल्कि ज़रूरत इस बात की है कि सरकार जो तमाम बुराइयों की जड़ है और जिससे मनुष्य को बड़ी से बड़ी हानियां पहुंच रही हैं, हरएक देश से हमेशा के लिए उठा दी जाय। सरकार से छुटकारा पाने के लिए सिर्फ़ एक बात की ज़रूरत है और वह यह कि लोगों की समझ में यह बात अच्छी तरह से आ जाय कि जिस देश-भक्ति के भाव की बदौलत सरकार टिकी हुई है वह एक अनुचित और हानि पहुंचानेवाला भाव है, क्योंकि इसी देश-भक्ति के भाव के कारण एक जाति के साथ दूसरी जाति की शत्रुता और युद्ध होता है, इसी के कारण एक जाति दूसरी जाति की ग़ुलाम बनाई जाती है, इसी के कारण सरकार की शक्ति थोड़े से चालाक और कुटिल आदमियों के अधिकार में आ जाती है और इसी के कारण मनुष्य अपने को ईश्वर की सन्तान स्वीकार करने के बदले

जन्मभूमि या देश की सन्तान कहने में अभिमान करता है ।

अगर यह बात एक बार भी लोगों की समझ में पूरी तरह आजाय तो फिर जिस सरकार रूपी भयानक जंजीर से हम जकड़े हुए हैं वह आपही आप टुकड़े टुकड़े होकर गिर जायगी और उसके साथ ही साथ वह सब बुराइयां भी दूर हो जायंगी जो उसकी बदौलत पैदा होती हैं। खुशी की बात है कि लोग अब इस बात को समझने लगे हैं । उदाहरण के तौर पर देखिये एक अमरीकन सज्जन इस बारे में क्या लिखते हैं :—

"हम सब या तो किसान हैं या मजदूर हैं या कारीगर हैं या व्यापारी हैं या अध्यापक हैं या लिखने पढ़ने का काम करते हैं। हम सिर्फ इतनाही चाहते हैं कि हम अपना काम स्वतंत्रता के साथ कर सकें। हमारे बालबच्चे हैं, हम अपने मित्रों से प्रेम करते हैं, हम अपने बालबच्चों और कुटुम्बियों को प्यार करते हैं और हम अपने पड़ोसियों के कामों में कोई दखल नहीं देते। हमारे पास काफ़ी काम करने के लिए है और हम काम करते भी हैं। हम सिर्फ यही चाहते हैं कि हमारे काम में कोई दखल न दे। पर ये राजनैतिक मनुष्य हमें शान्ति के साथ अलग नहीं रहने देते। वे हम पर जबर्दस्ती हकूमत करनाही चाहते हैं। वे हम पर टैक्स लगाते हैं, हमारा सत्त खींचे लेते हैं, हमारे बच्चों को फौज में भर्ती करके अपने स्वार्थ के लिए युद्धों में भेजते हैं।

सरकार अपना भारी और फ़जूल खर्च चलाने के लिए हम लोगों पर टैक्स लगाती है। उस टैक्स को सफलता के साथ इकट्ठा करने के लिए वह स्थायी फौज रखती है। यह केवल एक झूठा बहाना है कि फौज की ज़रूरत मुल्क की हिफ़ाज़त और रक्षा के लिए है। फ्रान्सीसी सरकार फ्रेंच लोगों को डराया करती है कि

देखो जर्मन लोग तुम पर हमले के लिए तैयार हैं। इसी तरह से अंगरेज़ी सरकार हिन्दुस्तानियों को रूस का हव्वा दिखाया करती है। अब हमारी अमरीकन सरकार भी अपनी प्रजा से कहने लगी है कि अगर तुम अपनी फ़ौज और अपना जहाज़ी बेड़ा न बढ़ाओगे तो फिर तुम योरप के मुक़ाबिले में नहीं ठहर सकते।

यह सरासर झूठ और धोखेबाज़ी है। फ्रान्स, जर्मनी, इंगलैन्ड, और अमरीका के सर्वसाधारण लोग युद्ध के बिल्कुल विरुद्ध हैं। वे सब यही चाहते हैं कि हमारे काम में कोई दूसरा आदमी दख़ल न देने पावे। जिन आदमियों के बाल-बच्चे हैं, जिनके बुड्ढे बाप और मां हैं, जिनके मकान और खेत हैं वे दूसरे के साथ युद्ध करने के लिए लड़ाई के मैदान में जाना कभी भी न पसन्द करेंगे। हम सब स्वभाव से ही शान्ति के साथ रहना पसन्द करते हैं इसलिए हम युद्ध से डरते हैं और उससे घृणा करते हैं।

यह एक निश्चित सी बात है कि जिस देश में बड़ी स्थायी सेना हमेशा मौजूद रहती है वह कभी न कभी युद्ध में ज़रूर कूद पड़ता है। जिस आदमी को अपने बल का घमण्ड रहता है वह एक न एक दिन अवश्य उस आदमी से भिड़ जाता है जो अपने को उससे भी अधिक बलवान् समझता है। जर्मनी और फ्रान्स दोनों ही अपने अपने बल के अभिमान में रहते हैं और दोनों ही यह देखना चाहते हैं कि दोनों में कौन अधिक बलवान है। इसीसे वे कई बार आपस में लड़ चुके हैं और वे फिर ज़रूर लड़ेंगे। इसका कारण यह नहीं है कि दोनों देशों के लोग एक दूसरे से लड़ना चाहते हैं, पर बात यह है कि दोनों देशों की सरकार, धनी पूंजीवाले और राजनीतिज्ञ अपने अपने देशवासियों को एक दूसरे के विरुद्ध उत्तेजित करते हैं और उनके हृदयों में यह भाव पैदा

करते हैं कि यदि वे अपनी मातृभूमि अपने घर-द्वार और अपने बाल-बच्चों की रक्षा करना चाहते हैं तो उन्हें अवश्य युद्ध में प्रवृत्त होना चाहिए।

"अब सवाल यह है कि हम किस तरह सरकार और उसकी फ़ौजों से छुटकारा पा सकते हैं? क्या हमें उनके साथ लड़ना चाहिए? क्या हमें अपना हाथ उनके ख़ून से रंगना चाहिए? नहीं, हम ख़ून गिराने या मार-काट करने के पक्ष में नहीं हैं। मार-काट या ख़ूनख़राबे पर हमारा विश्वास नहीं है। इसके अलावा अगर हम ख़ूनख़राबा और मार-काट करें तब भी हम सरकार से जीत नहीं सकते क्योंकि तोप और बन्दूक़ उनके हाथ में है, मेशीन-गन और हवाई जहाज़ उनके क़ब्ज़े में हैं और रुपया पैसा उनके अधिकार में है।

"सिर्फ़ एक उपाय है जिससे हम सरकार को जीत सकते हैं और वह यह है कि हम अपने भाइयों को यह शिक्षा दें और उनमें स्वतन्त्रता के साथ इस बात का प्रचार करें कि सरकार के साथ सहयोग करना और उसकी फ़ौज में भर्ती होना बड़ा भारी पाप और अन्याय है। लोगों को यह बतलाओ कि दूसरे को मारना एक बड़ा अन्याय है। सरकार की गोलियों की परवाह न करते हुए उसका विरोध करने की शिक्षा लोगों को दो। लोगों से कहो कि वे फ़ौज में और पुलीस में भर्ती मत हों। लोगों से कहो कि वे अफ़सरों के कहने से किसी पर गोली मत चलावें। लोगों से कहो कि वे केवल तभी तक सरकार को टैक्स और लगान अदा करें जब तक कि टैक्स अदा करना बहुत ही ज़रूरी हो, पर ज्यों ही टैक्स का अदा करना ज़रूरी न समझा जाय त्योंही उसका देना बन्द कर दिया जाय। इसका ऐसा भारी असर सरकार पर पड़ेगा

कि वह लंगड़ी लूली हो कर आपही हमेशा के लिए बैठ जायगी। जब ऐसा हरएक देश में होगा तभी संसार में शान्ति का साम्राज्य स्थापित होगा उसके पहले नहीं।"

यह एक अमरीकन के विचार हैं और इसी तरह के विचार हर तरफ़ से भिन्न भिन्न रूप में सुनाई पड़ रहे हैं। अब धीरे धीरे लोग इस बात को समझने लगे हैं कि इस देश-भक्ति की शिक्षा हरएक देश की सरकार लोगों को दे रही है वह केवल उन्हें धोखा देने और ठगने के लिए है।

आम तौर पर लोग यह प्रश्न करते हैं कि "यदि सरकार उठ जायगी तो फिर उसकी जगह पर क्या होगा?" इसका उत्तर यह है कि होगा क्या, कुछ नहीं। एक चीज़ जो बहुत दिनों से बे-क़ायदा चली आ रही है और जिससे बड़ी बड़ी हानियां हो रही हैं वह हमेशा के लिए उठ जायगी। एक संस्था, जिसकी अब कोई आव-श्यकता नहीं है और जो बड़ी नुक़सान पहुंचानेवाली है वह अब न रहेगी। बस यही होगा।

लेकिन आम तौर पर लोग यह कहते हैं कि "नहीं अगर सरकार न रहेगी तो लोग एक दूसरे का गला काटेंगे और एक दूसरे को हानि पहुंचावेंगे।" मैं यह पूछता हूं कि जो संस्था शुरू से ही लोगों को दबाने, उन पर ज़बर्दस्ती करने के लिए बनाई गई है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी से यही काम करती चली आ रही है और जिसकी अब कोई आवश्यकता नहीं है उसके उठ जाने से लोग एक दूसरे का गला क्यों काटने लगेंगे और एक दूसरे पर अत्याचार क्यों करने लगेंगे? मेरा तो ख्याल यह है कि जब अत्याचार और ज़बर्दस्ती करनेवाली संस्था संसार से उठ जायगी तो फिर लोग भी

एक दूसरे पर अत्याचार करना और एक दूसरे का गला घोटना बन्द कर देंगे।

आज कल तो कुछ लोग सरकार की ओर से इसीलिए सिखाए पढ़ाए जाते हैं, उनसे क़वायद वग़ैरह इसीलिए कराई जाती है कि जिसमें वे दूसरों पर अत्याचार कर सकें, दूसरों को सफलता के साथ मार सकें और दूसरों पर ख़ूब अच्छी तरह हमला कर सकें। इन आदमियों का यह अधिकार समझा जाता है कि वे दूसरों पर ज़बर्दस्ती करें और दूसरों की जान जिस तरह चाहें उस तरह ले लें। इस तरह की ज़बर्दस्ती और इस तरह की हत्या के काम वीरता और प्रशंसा के कामों में गिने जाते हैं। पर जब सरकार न रह जायगी तब लोगों को इस तरह से मार-काट की शिक्षा न दी जायगी और न तब लोगों को यह अधिकार रहेगा कि वे किसी पर ज़ोर-ज़ुल्म कर सकें। तब लोग दूसरों पर अत्याचार करना या उनके ख़ून से अपना हांथ रँगना बुरा समझेंगे, चाहे उस अत्याचार का करनेवाला बड़ा से बड़ा आदमी क्यों न हो, क्योंकि तब कोई फ़ौज न रक्खी जायगी और न लोगों को फ़ौजी शिक्षा ही दी जायगी।

अगर हम मान भी लें कि ज़ोर-ज़ुल्म, मार-काट और ज़बर्दस्ती तो क़ायम ही रहेगी, तब भी इस तरह के काम आजकल से अवश्य बहुत कम होंगे, क्योंकि आजकल तो कुछ लोग इसीलिए भर्ती किए जाते हैं और इसीलिए उनकी फ़ौज बनाई जाती है कि जिसमें वे सफलता के साथ दूसरों को मारने काटने का सौभाग्य प्राप्त कर सकें। पर तब यह हालत कभी भी न रहेगी। सरकार के उठ जाने से केवल एक ऐसी संस्था का लोप हो जायगा जिस की अब कोई ज़रूरत नहीं है और जो पीढ़ी दर पीढ़ी से अत्याचार और उद्दण्डता

करती हुई चली आ रही है ।

कुछ लोग शायद यह भी कहेंगे कि "अगर सरकार न रहेगी तो फिर न तो क़ानून रहेंगे, न सम्पत्ति रहेगी, न अदालतें रहेंगी, न पुलीस रहेगी, न लोगों को शिक्षा का प्रबन्ध रहेगा ।" पर जो लोग ऐसा कहते हैं वे दो बातों को एक साथ मिला देते हैं। सरकार और चीज़ है। उसका उद्देश डरा कर, धमका कर और रोब गांठ कर फ़ौज, पुलीस और अदालत के ज़रिये से लोगों के ऊपर मन-माना अत्याचार करना और अपना स्वार्थ सिद्ध करना है । पर क़ानून, शिक्षा, न्याय, अदालत इत्यादि सामाजिक सुधार की बातें दूसरी चीज़ हैं। सरकार से और उनसे कोई सम्बन्ध नहीं है। वह सब तो हमारे हांथ की बातें हैं। समाज का सुधार करना या न करना, शिक्षा देना या न देना, न्याय करना या न करना—यह सब ऐसी बातें हैं जिनसे हमारा सम्बन्ध है। इनके लिए सरकार की कोई ज़रूरत नहीं है । अगर सरकार उठ जायगी तो इसके माने यह नहीं हैं कि समाज-सुधार के सब काम बन्द हो जांयगे। क़ानून, शिक्षा, अदालत, सम्पत्ति, पुलीस इत्यादि में जो अच्छी और गुण की बातें हैं वे रख ली जायेंगी और उनकी तरक्क़ी भी की जायगी । पर उन में से जिन जिन बातों के द्वारा अत्याचार बढ़ता है, लोगों पर ज़ोर-ज़ुल्म होता है वह सब भी सरकार के साथ ही साथ उठा दी जायंगी । सिर्फ़ वही चीज़ें बर्बाद की जायंगी जिनसे समाज में बुराइयां पैदा होती हैं और जिनकी वजह से लोगों की स्वतन्त्रता में फ़र्क़ आता है ।

अगर हम मान भी लें कि सरकार के न रहने से आपस में लोगों के बीच दंगे-फ़साद, लड़ाई-झगड़े और मार-काट शुरू हो जायगी तब भी लोगों की हालत आजकल की हालत से अच्छी

रहेगी। यह ख्याल में लाना ज़रा मुश्किल है कि आजकल जैसी हालत है उस से ख़राब हालत भी हो सकती है। लाखों आदमी दिन पर दिन सरकार के द्वारा फ़ौज और लड़ाई के ग़ुलाम बनाये जा रहे हैं, टैक्सों के ज़रिये से लोगों का ख़ून चूसा जा रहा है। रूस, हिन्दुस्तान और चीन के करोड़ों आदमी यह नहीं जानते कि भरपेट भोजन किसे कहते हैं, लाखों आदमी प्लेग और अकाल के शिकार हर साल हाते हैं। क्या इससे भी बदतर हालत कोई हो सकती है? यह सब किस की बदौलत? सिर्फ़ सरकार और उस के कर्मचारियों की बदौलत। इन सब के लिए अगर कोई जिम्मेदार है तो वह सरकार को छोड़ कर और कोई नहीं है। इसलिए अगर सरकार के चले जाने पर अराजकता भी फैल जाय तो कोई चिन्ता की बात नहीं है। क्योंकि किसी तरह भी अराजकता की हालत आजकल की हालत से ख़राब न होगी। हां, उन सब बुराइयों से हमारा छुटकारा अवश्य हो जायगा जो सरकार के कारण पैदा हो गई हैं और जो सरकार के साथ ही साथ चली जायंगी।

आदमियो, ज़रा होश सम्हालो और देखो कि तुम किस हालत में पड़े हुए हो! अपनी शारीरिक और आध्यात्मिक भलाई के लिए, अपने भाइयों और बहिनों के लिए, अपने बाल-बच्चों की दशा के लिए ज़रा ठहरो और सोचो कि तुम क्या कर रहे हो और किधर जा रहे हो?

सोचो और तब तुम समझोगे कि तुम्हारे शत्रु अंग्रेज़, जर्मन, फ्रेंच या रूसी नहीं हैं बल्कि ख़ुद तुम्हीं अपने दुश्मन हो, क्योंकि तुम्हीं अपनी मूर्खता को बदौलत उस सरकार को क़ायम किये हो जा तुम पर अत्याचार करती है और तुम्हारी जिन्दगी बिगाड़ रही है।

सरकार का यह दावा है कि हम तुम्हारी रक्षा करते हैं, ख़तरे से तुम्हें बचाते हैं, पर इस रक्षा के भार को वह इस दर्जे तक ले आई है कि आप सब उस के सिपाही और ग़ुलाम हो रहे हैं, आप की बर्बादी दिन पर दिन होती जा रही है और किसी लहमें में ऐसी हालत आनेवाली है कि आप और आप के बच्चों का क़त्ल हो सकता है। किसी क्षण में ऐसा भयानक युद्ध आपकी सरकार तथा दूसरी सरकार के बीच हो सकता है कि उसमें लाखों आदमी काम आ सकते हैं। पर उस युद्ध के बाद भी हालत वैसी ही बनी रहेगी, बल्कि सरकार और भी ज़ोर के साथ अपना शैतानी काम जारी रक्खेगी, फ़ौजों की तादाद और भी बढ़ायेगी और फ़ौज के नये नये सामानों पर अपनी प्रजा का करोड़ों रुपया ख़र्च करती रहेगी। इस हालत को रोकने या बन्द करने में कोई तुम्हारी मदद न करेगा अगर तुम ख़ुद अपनी मदद न करोगे।

सिर्फ़ एक उपाय है जिससे तुम अपनी मदद कर सकते हो और वह यह कि तुम सकरार से कोई वास्ता न रक्खो और न उसके किसी काम में सहायता दो। पर सरकार से सम्बन्ध तभी छूट सकता है जब देश-भक्ति के भाव का भूत तुम्हारे सिर से उतर जाय।

याद रक्खो कि जिन चत्याचारों और बुराइयों के शिकार तुम हो रहे हो उनका सबब यही है कि तुम उन सम्राटों, बादशाहों, राजाओं, पार्लियामेंट या कौन्सिल के मेम्बरों, गवर्नरों, अफ़सरों, ज़मींदारों, पूंजीवालों, पाधाओं, पुरोहितों और राजनीतिज्ञों के चक्कर में पड़े हुए उनके इशारे पर नाचा करते हो जो देश-भक्ति के नाम पर तुम्हें सरासर धोखा दे रहे हैं।

चाहे तुम अंग्रेज़ हो या अमरीकन, फ्रेंच हो या जर्मन, आइ-

टिश हो या इन्डियन, पर याद रक्खो कि तुम्हारा सच्चा स्वार्थ, तुम्हारी सच्ची भलाई और तुम्हारा सच्चा सुख दूसरी जातियों के सुख और स्वार्थ से किसी प्रकार भी भिन्न नहीं है । तुम्हारी और उनकी भलाई, स्वार्थ और सुख इसी में है, तुम्हारे और उनके व्यापार की वृद्धि इसी बात पर निर्भर है कि तुम सब शान्ति के साथ एक दूसरे से मिलजुल कर रहो ।

इस बात को याद रक्खो कि मेसोपोटामियां तुम्हारी सरकार के हाथ में रहे या तुर्की सरकार के, ईस्ट अफ्रिका तुम्हारी सरकार के क़ब्ज़े में रहे या जर्मन सरकार के, पोर्ट आर्थर रूसी सरकार के अधिकार में रहे या जापानी सरकार के, भारतवर्ष की उत्तर-पच्छिमी सरहद के उस पार वाली ज़मीन अंगरेज़ी सरकार के हाथ में रहे या काबुल की सरकार के—इससे तुम्हें कोई वास्तविक हानि या लाभ नहीं है । अगर इन सब प्रान्तों या देशों पर तुम्हारी सरकार का क़ब्ज़ा रहे तो इसके माने यह होंगे कि उनपर हमला करने, उन पर क़ब्ज़ा जमाने और वहां के लोगों पर अनेक प्रकार का अत्याचार करने में तुम्हें भी अपनी सरकार की सहायता करना और उसका हाथ बटाना पड़ेगा ।

यह याद रक्खो कि जिन अत्याचारों के शिकार तुम हो रहे हो, जिन बिपत्तियों से तुम सताये जा रहे हो उनसे तुम्हारा छुटकारा तभी हो सकता है जब तुम एक चित्त देशभक्ति के भाव को अपने हृदय से निकाल कर सरकार और उसकी आज्ञाओं का मानना, उसकी फ़ौज में भर्ती होना और उसे टैक्स देना बन्द कर दोगे और जब तुम उदारभाव से प्रेरित होकर सब जातियों के लोगों को अपना भाई समझने लगोगे । अगर सब लोग यह समझने लगें कि हम चाहे जिस भाषा के

बोलनेवाले हों, चाहे जिस देश में रहते हों, चाहे जिस मत या सम्प्रदाय के माननेवाले हों, गोरे हों या काले, ऊंच हों या नीच, पर हम सब हैं एक ही परम पिता परमेश्वर के पुत्र— अगर हम सब लोग यह समझने लगें—तो फिर एक जाति दूसरी जाति की शत्रु या गुलाम नहीं हो सकती। जब ऐसी हालत हो जायगी तभी सरकार का नाम इस संसार से उठ जायगा और तभी सरकार के द्वारा होनेवाले अत्याचारों, अन्यायों और विपत्तियों का लोप भी संसार से हमेशा के लिए हो जायगा।

३—युगान्तर।

जब संसार में एक युग का अन्त और दूसरे युग का प्रारंभ होता है तो मनुष्यों के जीवन में महान परिवर्त्तन होते हुए दिखलाई पड़ते हैं। उस समय प्राचीन उद्देश, प्राचीन सभ्यता, प्राचीन भाव, प्राचीन विचार, प्राचीन बिश्वास के स्थान पर नवीन उद्देश, नवीन सभ्यता, नवीन भाव, नवीन विचार, और नवीन विश्वास घर करने लगते हैं। इस परिवर्त्तन के समय बड़ी बड़ी विपत्तियां, बड़े बड़े युद्ध, बड़े बड़े अत्याचार मनुष्यों के बीच होते हैं। जिस तरह प्रसव के समय गर्भ की माता की पीड़ा और वेदना इस बात का चिन्ह है कि एक नवीन बालक का जन्म होने वाला है उसी तरह यह सब विपत्तियां, युद्ध और अत्याचार इस बात के चिन्ह हैं कि संसार में एक नवीन युग का आदुर्भाव होने वाला है। न केवल भारतवर्ष में बल्कि संसार के प्रायः हरएक

देश में इस युगान्तर के चिन्ह दिखलाई पड़ रहे हैं । भारतवर्ष में तो इस युगान्तर के चिन्ह पूरी तरह से प्रगट हो रहे हैं। भारतवर्ष का असहयोग और सत्याग्रह आन्दोलन, रूस का बोल्शोविज़्म और आयर्लेन्ड का शीनफ़ीन आन्दोलन संसार में एक नवीन युग की साक्षी दे रहे हैं। इसके अलावा जिस देश में देखिये उस देश में किसान या मज़दूर पूंजीपतियों और ज़मींदारों के खिलाफ़ सिर उठा रहे हैं और उनके पंजे से छूटने की कोशिश कर रहे हैं। यह सब इस बात के चिन्ह हैं कि संसार में एक महान परिवर्त्तन होने वाला है।

हाल में जो महा संग्राम योरप में हुआ है उसमें वर्तमान सभ्यता की सब से बड़ी शक्ति जर्मनी ऐसी चकनाचूर हुई कि फिर उठना उसके लिए असम्भव हो रहा है । यह महा संग्राम और उसमें जर्मनी की हार इस बात का बड़ा भारी चिन्ह है कि संसार में वर्तमान सभ्यता का अन्त और एक नये युग का प्रारंभ होनेवाला है।

हाल में इस युद्ध से यह बात निश्चित रूप से सिद्ध हो गई है कि सरकार की आज्ञाओं के अनुसार चलने से, उसके क़ानूनों के मानने से और उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाने कैसे से कैसे खतरे हरएक देश के लोगों को हैं। बिना ज़रूरत सिर्फ़ अपना स्वार्थ पूरा करने या अपनी बात क़ायम रखने के लिए एक सरकार दूसरी सरकार पर चढ़ाई कर देती है । घमासान लड़ाई होती है और दोनों ओर के हज़ारों लाखों आदमी एक दूसरे की गोलियों और संगीनों के शिकार हो जाते हैं। किसानों और मज़दूरों की मेहनत से पैदा किया हुआ न जाने कितना रुपया और सामान लड़ाई में स्वाहा

हो जाता है । लड़ाई खत्म हो जाने और सुलह होने के बाद भी दोनों देशों के लोगों में गहरी शत्रुता न जाने कितने दिनों तक क़ायम रहती है। फिर एक दूसरे से आगे बढ़ जाने की कोशिश करते हैं और नतीजा यह होता है कि शान्ति होने के बदले फिर युद्ध के काले बादल दोनों देशों में उठने लगते हैं । अब हरएक देश की प्रजा युद्धों से ऊब गई है और युद्धों का असली कारण क्या है यह समझने लगी है। यही उस महान् परिवर्त्तन का बड़ा भारी चिन्ह है जो संसार में होनेवाला है।

क्रान्ति या परिवर्त्तन तभी शुरू होता है जब लोग अपने जीवन के पुराने उद्देश और पुराने क्रम को त्याग कर जीवन का एक नया उद्देश और एक नया क्रम अख्तियार करने लगते हैं। जब लोगों के जीवन का क्रम उस ऊंचे उद्देश तक नहीं उठता जो उन्होंने अपने सामने रख छोड़ा है अर्थात जब उनके जीवन के आदर्श और उनके जीवन के क्रम में ऐसा महान अन्तर पड़ जाता है कि उस हालत में और अधिक दिनों तक बने रहना उनके लिए असम्भव हो जाता है तभी वे उस हालत से निकलने की कोशिश करते हैं। जिस जाति में अधिकतर लोग इस विचार और उद्देश के हो जाते हैं वहीं क्रान्ति या परिवर्तन प्रारम्भ हाता है। क्रान्ति या परिवर्तन किस प्रकार का होगा और उसमें कौन से तरीक़े अख्तियार किये जायेंगे यह इस बात पर निर्भर है कि परिवर्त्तन किस उद्देश से किया जा रहा है।

अट्ठारहवीं शताब्दी में योरप के राजों, महाराजों, सम्राटों, पादरियों, पुजारियों, ज़मींदारों, अमीरों और सरकारी कर्मचारियों की निरंकुश शक्ति और अत्याचार बहुत बढ़ गया था। लोग उनके अत्याचारों की चक्की के नीचे पिस रहे थे । इन अत्या-

...ों का अनुभव न केवल वही लोग कर रहे थे ...इ अत्याचार होते थे बल्कि उसका अनुभव बहुत ...ग्यवाले राजे, महराजे, ज़मींदार इत्यादि भी करते थे और कभी कभी इसके लिए अपना विरोध भी प्रकट कर देते थे। पर कहीं भी लोग गुलामी और अत्याचार से इतना नहीं ऊबे थे, जितना कि फ्रान्स के लोग ऊब गये थे। इसलिए १७९३ की महान् क्रान्ति या राज्य-विप्लव फ्रान्स में शुरू हुआ। उस समय फ्रान्सीसी लोगों को स्वतंत्रता तथा समान अधिकार प्राप्त करने का सब से सहज उपाय यही मालूम पड़ा कि वे, ज़बर्दस्ती अधिकारियों से वह सब अधिकार छीन लें जो उन अधिकारियों के हांथ में थे। इसीलिए उन लोगों ने अपना उद्देश्य मारकाट और खूनख़राबे के ज़रिये से हासिल किया।

जो अन्याय और अत्याचार सरकारों के द्वारा फ्रान्सीसी बिप्लव के ज़माने में योरप के लोगों पर होते थे उनसे कहीं बढ़कर अन्याय और अत्याचार आजकल हरएक सरकार के द्वारा सब जातियों और सब मनुष्यों पर हो रहे हैं। इन्हीं अत्याचारों और अन्यायों से स्वतँत्रता पाने के लिए आज संसार में एक महान परिवर्तन के लक्षण दिखलाई पड़ने लगे हैं। फ्रान्सीसी राज्यक्रान्ति के कर्ताओं ने स्वतंत्रता और समानता का अधिकार प्राप्त करने के लिए उपद्रव और मारकाट का उपाय अख़्तियार किया, पर वर्तमान क्रान्तियां, बिप्लव, अशान्ति, उपद्रव या मारकाट के उपायों से न पूरा होगा। इस महान् परिवर्तन के लिए हमें शान्तिपूर्ण उपायों से काम लेना होगा। जिस युग का आरंभ अब होनेवाला है वह एक शान्तिपूर्ण युग

होगा । उस युग का विकास पूर्ण रूप से तभी होगा जब हम शान्तिपूर्ण उपायों से काम लेकर शान्तिपूर्ण परिवर्तन करने का यत्न करेंगे ।

मारकाट और उपद्रव आदि भयानक उपायों के द्वारा क्रान्ति या विप्लव करने का ज़माना अब गया । भयानक उपायों से उत्पन्न होनेवाली क्रान्ति के द्वारा जो कुछ मिलना था वह मिल चुका । भयानक क्रान्ति से क्या नहीं मिल सकता यह भी साफ़ तौर पर अब ज़ाहिर हो गया है । फ्रान्सीसी लोगों ने भयानक राज्यक्रान्ति करके अट्ठारहवीं सदी की सरकार से अपना पिण्ड छुटाया, पर उसका नतीजा क्या हुआ ? वे फिर एक दूसरी सरकार के चंगुल में फँस गये । पहले एक निरंकुश सरकार उन पर अत्याचार करती थी, आज खुद उसकी चुनी हुई सरकार उन पर अत्याचार कर रही है । पहले उनके टैक्स का रुपया निरंकुश सरकार की फ़ौजों और लड़ाइयों में खर्च किया जाता था, आज वह रुपया प्रजातंत्र सरकार की फ़ौज़ों और लड़ाइयों में खर्च होता है । पहले वे निरंकुश राजाओं की फ़ौजों में भर्ती होते थे, आज वे प्रजातंत्र-राज्य की फ़ौजों में भर्ती होते हैं । पहले वे निरंकुश शासकों की आज्ञा से जहां कहा जाता था वहां कूच कर देते थे और जिसे कहा जाता था उस पर गोली चला देते थे, आज वे प्रजातन्त्र सरकार की आज्ञा से जहां कहा जाता है वहां कूच कर देते हैं और जिस पर कहा जाता है उस पर गोली चला देते हैं ।

अब जो क्रान्ति होनेवाली है वह इसलिए नहीं होगी कि एक सरकार के स्थान पर दूसरी सरकार क़ायम की जाय । या एक अत्याचार के बदले में दूसरा अत्याचार खड़ा किया जाय ।

उदाहरण के तौर पर भारतवर्ष के ३० करोड़ आदमी, जिनमें अधिकतर किसान और मज़दूर हैं, इसलिए परिवर्तन करना नहीं चाहते कि एक ज़बर्दस्त सरकार या एक भयानक शक्ति के स्थान पर दूसरी ज़बर्दस्त सरकार या दूसरी भयानक शक्ति क़ायम की जाय। वे यह सुधार या वह सुधार नहीं चाहते। वे कौन्सिल या पार्लियामेन्ट नहीं चाहते, वे होमरूल या प्रजातन्त्र राज्य भी नहीं चाहते। वे सिर्फ़ चाहते हैं ऐसी स्वतंत्रता जिससे उन पर कोई भी शक्ति, राज्य या सरकार ज़बर्दस्ती अपना अधिकार या दबाव न रख सके। सारांश यह कि वे हर प्रकार की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करना चाहते हैं। यही उस महान् परिवर्तन या युगान्तर का उद्देश और अर्थ है जो भारतवर्ष में प्रारंभ हो रहा है और जो समय के अनुसार समस्त संसार में फैलनेवाला है।

जो परिवर्तन मनुष्य-समाज में अब होनेवाला है उसकी ख़ास बात यह है कि मनुष्य का जीवन पूर्ण स्वतंत्रता का सुख अनुभव कर सकेगा। किसी दूसरे मनुष्य की शारीरिक शक्ति को वह भय से सिर न झुकायेगा। चूँकि इस महान् भावी परिवर्तन का उद्देश और दूसरे परिवर्तनों से, जो अबतक हुए हैं, भिन्न हैं, इसलिए जो लोग इस परिवर्तन में भाग लेते हैं या भाग लेनेवाले हैं उनके आचरण और उनके कार्य भी उन लोगों के आचरणों और कार्यों से भिन्न होने चाहिए जो पिछले परिवर्तनों या राजक्रान्तियों में भाग ले चुके हैं।

पहले के परिवर्तनों या राजक्रान्तियों में भाग लेनेवालों का ख़ास मतलब यही रहता था कि हम किसी तरह ज़बर्दस्ती धींगा-धींगी से राज्य को उलटपलट कर अपने हाथ में सरकार की

बागडोर कर लें। इस नये परिवर्तन या राज्य-क्रान्ति में भाग लेने वालों की कार्रवाई इससे बिल्कुल उलटी होनी चाहिए। उन्हें चाहिए कि वे किसी ऐसी सरकार की आज्ञाओं और क़ानूनों को न मानें जिसका अस्तित्व शारीरिक शक्ति, सांसारिक बल, सेना तथा अस्त्र-शस्त्र पर है। उन्हें यह भी चाहिए कि वे अपने जीवन को सरकार से अलग रह कर नियमित करें।

इस नये परिवर्तन या राजक्रान्ति की एक ख़ास बात यह है कि अब तक जितनी राज्य-क्रान्तियां हुई हैं उनके करनेवाले अधिकतर और ख़ास करके ऊंची जाति या पेशे के लोग तथा उनके नेतृत्व में शहर के मज़दूर लोग थे पर अब जो राज्यक्रान्ति होने वाली है उसमें अधिकतर किसान और देहात के लोग रहेंगे। पहले जो राज्यक्रान्तियां हुई हैं वे अधिकतर शहरों में हुई हैं पर अब जो राज्य-क्रान्ति होनेवाली है वह अधिकतर देहातों में किसानों के द्वारा होगी। पहले की राज्य-क्रान्तियों में भाग लेनेवालों की संख्या जाति के कुल मनुष्यों की १० या २० फ़ी सदी से अधिक न होती थी पर अब जो राज्य-क्रान्ति होनेवाली है उसमें भाग लेनेवालों की संख्या ८० या ९० फ़ीसदी से कम न होगी। पर खेद की बात है कि शहर के लोगों की कार्रवाइयां इस भारी राज्य-क्रान्ति में सहायता देने की अपेक्षा उसे और भी हानि पहुंचा रही हैं। इस राज्य-क्रान्ति के आन्दोलन को सरकार उतना नुक़सान नहीं पहुंचाती जितना शहर के बड़े बड़े लोग, अमीर उमराव, सेठ साहूकार, ज़मींदार, ताल्लुक़ेदार, धनवान और पूंजीवाले पहुंचा रहे हैं। यही सब लोग सरकार के साथ सहयोग करके उसकी जड़ को और भी मज़बूत करते हैं।

देश को इस समय ख़तरा इस बात का है कि यह आन्दोलन

कहीं दूसरा रूप न धारण कर ले और देश स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए शान्त तथा अहिंसात्मक उपायों को छोड़ कर अशान्त तथा अहिन्सात्मक उपायों को ग्रहण न कर ले। बड़ा भारी डर इस समय इस बात का है कि जो शान्ति-पूर्ण और अहिंसात्मक राज्य-क्रान्ति हमारी आंखों के सामने हो रही है वह कहीं उन भयानक राज्य-क्रान्तियों की नक़ल न करने लगे जो पहले योरप के कई एक देशों में हो चुकी हैं।

इस ख़तरे से बचने के लिए भारतवासियों को चाहिए कि वे सबसे पहले अपने ऊपर भरोसा करना या आत्मनिर्भ-र होना सीखें। हमें क्या करना चाहिए और कैसे करना चाहिए इसके लिए हमें योरप या अमेरिका का मुँह देखने या उनकी नक़ल करने की ज़रूरत नहीं है। उन्हें सिर्फ़ अपनी आत्मा की इच्छाओं के अनुसार चलना चाहिए। उन्हें सिर्फ़ यह देखना चाहिए कि उनकी आत्मा क्या कहती है। अपने उच्च और महान् उद्देश को पूरा करने के लिए भारतवासियों को न सिर्फ़ सरकार से हरएक ताल्लुक़ तोड़ देना चाहिए बल्कि सरकार का ख़्याल भी दिल से निकाल देना चाहिए। इस समय स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए भारतवासियों को न सिर्फ़ सरकार से हरएक नाता तोड़ देना चाहिए, बल्कि उन सब कार्रवाइयों से भी दूर रहना चाहिए जो सरकार और लिबरल दल वाले उन्हें फँसाने के लिए काम में लाते हैं।

अधिकतर किसान और मज़दूर जिस तरह देहातों में रहते हुए खेतीबारी का काम करते आये हैं उन्हें उसीतरह खेतीबारी में लगे रहना चाहिए। सरकार और ज़मींदार उनपर कितनाही अत्या-चार क्यों न करें पर उन्हें सरकार की किसी बात से लगान न

रखना चाहिए, उन्हें राज़ी से सरकार को टैक्स या लगान न देना चाहिए, उन्हें सरकार की फ़ौज या पुलीस में न भर्ती होना चाहिए, उन्हें सरकार के किसी अन्याय, अत्याचार या धींगाधींगी में शरीक न होना चाहिए। इसीतरह उन्हें उन सब उपद्रवों, ख़ून-ख़राबियों और हिंसात्मक कार्यों से दूर रहना चाहिए जिन्हें करने के लिए क्रान्तिवादी लोग उन्हें हमेशा उसकाया करते हैं। जहां किसानलोग ज़मींदारों के ख़िलाफ़ उपद्रव करेंगे या हिंसात्मक उपाय काम में लावेंगे वहां झगड़ा अवश्य बढ़ेगा और आन्दोलन शान्तिमय रूप छोड़ कर अशान्तिमय रूप ग्रहण कर लेगा। इस तरह के उपद्रवों, बलवाओं और ख़ूनख़राबियों से चाहे मौजूदा सरकार बर्बाद हो जायगी और फ़ौरन ही एक दूसरी सर-कार क़ायम हो जायगी और क़ौम पर वैसे ही अत्याचार फिर होने लगेंगे। किसानों और ज़मींदारों का तथा मज़दूरों और मालिकों का झगड़ा फिर वैसा ही क़ायम रहेगा, ज़मीन फिर उसी तरह धनी आदमियों के क़ब्ज़े में बनी रहेगी और किसान तथा मज़दूर फिर पहले की तरह ज़मींदारों और पूंजीवालों के ग़ुलाम बने रहेंगे। सिर्फ़ उसी वक्त किसान और मज़दूर इन सब अत्याचारों और अन्यायों से छूट सकते हैं जब वे सरकार से असहयोग करके उसे टैक्स या लगान देना, उसकी फ़ौज और पुलीस में भर्ती होना और उसकी अदालतों और कचहरियों में जाना बन्द कर दें। जब लोग ऐसा करेंगे तभी वे उस राज्य-क्रान्ति से फ़ायदा उठा सकेंगे जो बहुत शीघ्र होनेवाली है।

शहर के बड़े बड़े लोगों, अमीरों, सौदागरों, वकीलों, डाक्टरों, लेखकों और पूंजीवालों से हमें सिर्फ़ यही कहना है कि हिन्दोस्तान की ३१ करोड़ आबादी में उनकी संख्या बहुत ही थोड़ी है। उन्हें

समझ लेना चाहिए कि जो राज्य-क्रान्ति अब होनेवाली है उसका उद्देश एक अत्याचारी राज्य के स्थान पर दूसरा अत्याचारी राज्य स्थापित करना या एक सरकार के स्थान पर दूसरी सरकार क़ायम करना नहीं है। इस राज्य-क्रान्ति का उद्देश कुल जाति को और ख़ास करके किसान और मज़दूर भाइयों को हरएक क़िस्म के अत्याचार से, फ़ौजी गुलामी से, अदालतों की लूट से, ज़मींदारों के अन्याय से बचा कर उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता देना है। इसलिए शहरों के बड़े बड़े नेता और बड़े बड़े आदमी अगर सचमुच इस क्रान्ति में सहायता देना चाहते हैं तो पहले उन्हें सरकार से अपना ताल्लुक़ तर्क करना चाहिए और दूसरे उन्हें गांवों में अपने किसान भाइयों के बीच बसकर उनके कामों में हिस्सा लेने, उनके सुख-दुख में साथ देने और उन्हें उनकी असली हालत बतलाने की कोशिश करनी चाहिए।

पर कुछ लोग शायद यह सवाल करेंगे कि जब लोग सरकार के क़ानूनों को न मानेंगे तो फिर सरकार किस तरह क़ायम रहेगी और जब सरकार न रहेगी तो फिर लोगों की रक्षा एक दूसरे से किस तरह होगी ? इस सवाल का जवाब यह है कि इस देश में बहुत प्राचीन ज़माने से ग्राम-पंचायतें चली आरही हैं। देश में कोई बादशाह क्यों न हो, सरकार की बागडोर किसी के हाथ में क्यों न हो, पर ग्राम के लोग अपने अपने कामों में पुर्ण स्वतंत्र रहते थे। वे ग्राम-पंचायतों के द्वारा अपना कुल मामला तै कर लेते थे, गांव का सब इन्तज़ाम करते थे और एक दूसरे को सहायता पहुँचाते थे। सरकार या राजा से उनका बहुत ही थोड़ा ताल्लुक़ रहता था। हरएक गांव एक तरह से स्वतन्त्र राज्य रहता था। अधिकतर भारतबासियों को सरकार की आवश्यकता कभी न

रहती थी। बल्कि सरकार हमेशा एक बोझ की चीज़ समझी जाती थी। इसलिए यह कहना कि अगर सरकार न रहेगी तो फिर लोगों की रक्षा न होगी बिल्कुल निरर्थक बात है। बल्कि सरकार न रहेगी तो ग्राम का वह पञ्चायती और सामाजिक जीवन और भी दृढ़ हो जायगा जो उनके लिए इतना लाभदायक है और जिसका ह्रास इस ज़माने में लगातार होता जा रहा है।

इसलिए सरकार के उठ जाने के बाद भारतवासियों को इस बात की ज़रूरत नहीं है कि कोई दूसरी सरकार गढ़ी जाय। उनकी ग्राम-पञ्चायतें पहले ही से मौजूद हैं जिन में सिर्फ़ फिर से जीवन डालने की ज़रूरत है। जो राज्य-क्रान्ति अब होनेवाली है वह पहले वाली राज्य-क्रान्तियों से ख़ास कर के इस बात में भिन्न रहेगी कि पहलेवाली राज्य-क्रान्तियों की बदौलत एक भयानक सरकार के स्थान पर दूसरी भयानक सरकार क़ायम होती रही है। पर इस राज्य-क्रान्ति में एक सरकार के स्थान पर दूसरी सरकार क़ायम करने की ज़रूरत नहीं है। सिर्फ़ ज़रूरत इस बात की है कि सरकार की बुराइयों और उसके अत्याचारों के साथ कोई सहयोग न किया जाय। इसलिए जो लोग यह चाहते हैं कि ज़बर्दस्ती या धींगा-धींगी से एक अत्याचारी सरकार को उठा कर दूसरी ज़बर्दस्त सरकार क़ायम की जाय वे इस भावी राज्यक्रान्ति के असली स्वरूप को नहीं समझे हैं और न वे इस राज्यक्रान्ति में कोई सहायता ही दे सकते हैं। सिर्फ़ वही लोग इस महान् राज्यक्रान्ति में सहायता दे सकते हैं जो सरकार से असहयोग करते हुए अपना संगठन आप करने का यत्न करेंगे और इसके लिए अगर कोई अत्याचार उन पर होगा तो उसे शान्ति के साथ सहने के लिए हमेशा तैयार रहेंगे पर सरकार के साथ कभी सहयोग न करेंगे

और न उसकी आज्ञाओं को कभी मानेंगे।

इसलिए सरकार के उठजाने के बाद क्या होगा इस सवाल का जवाब यह है कि जो चीज़ लोगों को हमेशा एक दूसरे से लड़ाया करती थी, जो शक्ति किसानों की जमीन छीन कर ज़मींदारों और पूंजीवालों को दिया करती थी, वह हमेशा के लिए उठ जायगी और लोग युद्धों और लड़ाइयों से तथा सेनाओं और अस्त्र शस्त्रों से मुक्त होकर सुख देनेवाले ग्राम्य-जीवन को फिर से अख्तियार करेंगे और तन्दुरुस्ती देनेवाले खेती के कामों को करते हुए सुख से अपना जीवन बितावेंगे। जब लोगों का छुटकारा सरकार से हो जायगा तब वे फिर पहिले की तरह खेतीबारी के जीवन की ओर झुकेंगे, जिससे उनका सामाजिक जीवन अधिक सुसंगठित हो जायगा और वे एक दूसरे की सेवा और सहायता करते हुए पूर्ण स्वतन्त्रता के साथ दिन काट सकेंगे।

आधुनिक सभ्यता के हिमायती—राजे, महाराजे, प्रेसिडेन्ट, मन्त्री, सरकारी अफ़सर, ज़मींदार, ताल्लुक़ेदार, सेठ, साहूकार, वकील, डाक्टर, टीचर, प्रोफ़ेसर, लेखक, सम्पादक इत्यादि—यह कहते हैं कि यदि सरकार और उसके क़ानून क़ायदे न रहेंगे, यदि सरकार के द्वारा हमारी रक्षा का प्रबन्ध न रहेगा तो हमारी वर्तमान सभ्यता बिल्कुल चौपट हो जायगी और सभ्यता की कुल बातें छिन्न भिन्न हो कर मिट्टी में मिल जायंगी, इसका नतीजा यह होगा कि हम लोग फिर पहले की सी जंगली हालत में आजायेंगे। अगर उन से पूछा जाता है कि आप सभ्यता किसे कहते हैं तो वे रेल, तार, बिजली की रोशनी, अजायबघर, नाटकघर, स्कूल, कालेज, बड़े बड़े शहर, आलीशान इमारत, अस्पताल और यतीमख़ानों की ओर इशारा करते हैं। पर वे यह नहीं देखते कि इसी सभ्यता

की बदौलत करोड़ों आदमी खाने को मोहताज हो रहे हैं, करोड़ों आदमी अकाल और प्लेग के शिकार हो रहे हैं, करोड़ों आदमी फ़ौजी गुलामी के शिकंजे में जकड़े हुए हैं, लाखों स्त्रियां अपना सतीत्व बेच रही हैं, लाखों आदमी युद्धों और लड़ाइयों में स्वाहा हो रहे हैं, करोड़ों रुपया अस्त्र शस्त्र के बनाने में पानी की तरह बह रहा है, करोड़ों किसानों और मज़दूरों की मेहनत से पैदा किया हुआ धन आलसी और निखट्टू अमीरों और धनवानों की ऐयाशी में ख़र्च हो रहा है। इसी सभ्यता की बदौलत एक तरफ़ लोग फ़ाक़ाकशी कर रहे हैं तो दूसरी तरफ़ शराब के प्याले उड़ रहे हैं, एक तरफ़ लोग माघ-पूस के जाड़े में ठिठरे हुए राम राम करके रात काट देते हैं तो दूसरी तरफ़ लोग मख़मल के गद्दों पर सोये हुए स्वर्ग का सुख अनुभव करते हैं!

वर्तमान सभ्यता के पुजारी इस सभ्यता को एक ऐसी बड़ी बरकत समझते हैं कि उसे एकदम उठाना तो दूर रहा उस में कुछ फेरफार करने का ख़्याल भी मन में लाना बड़ा भारी जुर्म गिनते हैं। पर रूस, चीन और हिन्दुस्तान के करोड़ों आदमियों से पूछिये तो वे आपको बतलायेंगे कि जिस सभ्यता के आप पुजारी बने हुए हैं वह हमारे लिए बरकत है या उसका बिल्कुल उलटा। अगर आप संसार भर के उन किसानों और मज़दूरों से पूछिये जो दुनिया की कुल आबादी का नौ बटा दस हिस्सा हैं तो वे आपको जबाब देंगे कि जिस सभ्यता की बदौलत अनेक बड़े बड़े अत्याचार हम लोगों पर होते हैं, जिस सभ्यता की बदौलत हम भूखों मरते हैं पर हमारे पदा किये हुए धन से अमीर, ज़मींदार और पूंजीवाले गुलछर और मज़े उड़ाते हैं, जिस सभ्यता की बदौलत हमारी कमाई का करोड़ों रुपया फ़ौजों और लड़ाइयों में स्वाहा

होता है, जिस सभ्यता की बदौलत हमारा सीधासादा और प्राकृतिक जीवन नष्ट हो रहा है और शहर का बनावटी और अप्राकृतिक जीवन तरक्की पा रहा है, जिस सभ्यता की बदौलत गांव उजड़ कर शहर बस रहे हैं वह सभ्यता हमारे लिए अनावश्यक ही नहीं बल्कि बड़ी हानि पहुंचानेवाली है।

इसमें कोई शक नहीं कि इस सभ्यता के जमाने में विज्ञान की तरक्की ख़ूब हुई है। पर इस विज्ञान की तरक्की से लाभ किन लोगों को हुआ है ? सिर्फ़ उन थोड़े से लोगों को जो किसानों और मज़दूरों को अपने स्वार्थ की चक्की में पीसते हुए ज़िन्दगी के मज़े उड़ा रहे हैं। पर किसान और मज़दूर सदा की तरह इस विज्ञान की तरक्की में भी ग़ुलाम के ग़ुलाम बने हुए हैं।

आधुनिक सभ्यता के बहुत से पक्षपाती और हिमायती मिश्र की "पिरामिड्स" नामक बड़ी बड़ी मीनारों को देख कर उन के बनवानेवालों की निर्दयता पर बड़ा क्रोध प्रगट करते हैं और जिन मज़दूरों की मेहनत से वे बनाये गये थे उन पर बड़ी तरस खाते हैं पर क्या वे कभी उन लोगों पर भी क्रोध करते हैं जो न्यूयार्क, लन्डन, पेरिस और बर्लिन में चालीस २ मंजिल ऊँचे मकान बनवाकर अपनी निर्दयता और पागलपन का सबूत देते हैं ? वे इन इमारतों को निर्दयता और पागलपन का उदाहरण समझना तो दूर रहा उलटा उन्हें बड़े अभिमान की चीज़ समझते हैं। चारों ओर खुली और साफ़ हवा, चमकीली और सुहावनी सूरज की रोशनी, हरा और चड़ा मैदान, रमणीक और हरे भरे जंगल पड़े हुए हैं पर मनुष्य अपने भयानक परिश्रम और प्रयत्न से चालिस चालिस मंज़िल

ऊँचे मकान खड़ा कर के सूर्य, हवा और प्रकाश को आने से रोक देते हैं। वहां न तो साफ़ हवा जाती है और न सूर्य का प्रकाश पूरी तरह से पहुंचता है। वहां न तो शुद्ध पानी मिलता है और न शुद्ध भोजन। वहां रहनेवालों का जीवन दूषित, मलीन और रोगी रहता है। वहां रहते रहते लोगों की तन्दुरुस्ती हमेशा के लिए जाया हो जाती है। क्या यह निर्दयता और पागलपन नहीं है कि लोग प्राकृतिक जीवन को इस तरह घृणा की दृष्टि से देखें और शहर के गन्दे और तन्दुरुस्ती बिगाड़नेवाले जीवन को सभ्यता का चिन्ह समझें और उस पर गर्व करें? क्या इसे आप सभ्यता कह सकते हैं?

इस सभ्यता के पुजारी और पक्षपाती कहते हैं कि "हम बुराइयों और ख़राबियों को दूर करने के लिए तैयार हैं लेकिन सिर्फ़ इस शर्त पर कि जो उन्नति मनुष्यजाति ने सभ्यता में की है वह वैसी ही बनी रहे।" यह कहना तो ऐसा ही है कि जैसे कोई आदमी, जिसने बुरे कामों से अपनी तन्दुरुस्ती चौपट कर दी है, डाक्टर से यह कहे कि "डाक्टर साहब, आप जो कहेंगे वह सब करने के लिए तयार हैं, लेकिन सिर्फ़ शर्त यह है कि मैं जिस तरह व्यभिचार का जीवन बिताता आ रहा हूं उसी तरह बिताता जाऊँ।" इस तरह के मनुष्य से डाक्टर सिर्फ़ यही कहेगा कि भाई, अगर तुम अपनी तन्दुरुस्ती सुधारना चाहते हो तो तुम्हें अपनी ज़िन्दगी का तरीक़ा बदलना पड़ेगा, वरना तुम्हारा अच्छा होना नामुमकिन है। इसी तरह से मनुष्य जाति को अगर अपनी हालत सुधारनी है तो उसे इस सभ्यता को सदा के लिए दूर करना पड़ेगा नहीं तो कोई दूसरा उपाय नहीं है।

सभ्यता अच्छी है या बुरी, उस से लाभ पहुंचता है या

हानि — इस प्रश्न का उत्तर यह है कि उस सभ्यता से समाज में अच्छाई अधिक है या बुराई । हमारी समाज में जहां सभ्यता की बदौलत थोड़े से धनी, ज़मींदार और ऊंची जात के लोग अधिक संख्यावाले किसानों और मज़दूरों को पैरों तले रौंद रहे हैं वहां सभ्यता एक बड़ी ज़बर्दस्त बला है । लोगों को अब समझ लेना चाहिए कि जिसे वे सभ्यता के नाम से पुकारते हैं और जिसपर वे इतना नाज़ करते हैं वह गुलामी का एक बड़ा भारी ज़रिया है, जिसकी बदौलत हाथ पैर से काम करनेवाले करोड़ों आदमी हाथ पर से काम न करनेवाले थोड़े से निखट्टुओं के गुलाम बने हुए हैं । अब वह समय आ गया है जब हमें खूब अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए कि हमारा उद्धार उस रास्ते पर चलने से न होगा जिसपर हम अबतक चलते आये हैं और न हमारा उद्धार उन सब चीज़ों को बरक़रार रखने में है जो सभ्यता के नाम से पुकारी जाती हैं, बल्कि हमारा उद्धार इस बात को अच्छी तरह से समझ लेने में है कि हम अब तक ग़लत रास्ते पर बढ़ते आये हैं और अब हम ऐसे दलदल में फँस गये हैं जिस से निकलना हमारे लिए बहुत ही ज़रूरी है । उस दलदल से निकलने के लिए हमें अपनी उन बहुत सी फ़ज़ूल चीज़ों से हाथ धोना पड़ेगा जो सभ्यता के नाम से पुकारी जाती हैं । हमारे सामने दो रास्ते हैं—या तो हम उसी रास्ते पर बढ़ते चले जांय जिस पर हम अब तक बढ़ते आये हैं और जिसकी बदौलत थोड़े से लोग अधिकतर लोगों को गुलाम बनाये हुये हैं और या फ़ौरन ही उस रास्ते को छोड़ कर हम एक दूसरा रास्ता अख़्तियार करें और उस पिशाची सभ्यता को दूर बहायें जिसकी बदौलत अधिकतर लोग गुलामी की ज़ंजीर में जकड़े हुए धनवानों और पूंजीवालों के

अत्याचार की चक्की में पिसते जा रहे हैं।

हमारे ज़माने के लोग स्वतंत्रता को भिन्न भिन्न विभागों में बांटते हैं। प्रेस की स्वतंत्रता, सभा की स्वतंत्रा, विचार की स्वतंत्रता, इत्यादि, इन नामों से वे स्वतंत्रता का बिभाग करते हैं। इस से साफ़ ज़ाहिर है कि उन्हें सच्ची स्वतंत्रता का अथवा उस स्वतंत्रता का बिल्कुल ज्ञान नहीं है जिसका एक मात्र सिद्धान्त यह है कि कोई भी शक्ति किसी से उसकी इच्छा या लाभ के विरुद्ध कोई काम न करा सके। लोगों का ख़्याल यही है कि स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार नहीं बल्कि सरकार, राजा, पार्लियामेण्ट या किसी दूसरी शक्ति की कृपा का फल है। वे यह समझते हैं कि जो स्वतंत्रता हमें है या होनेवाली है वह दूसरों से हमें मिली है या मिल सकती है। पर वास्तव में यह सच्ची स्वतंत्रता नहीं है। सच्ची स्वतंत्रता यह है कि कोई भी शक्ति—चाहे वह प्रजातंत्र सरकार हो या निरंकुश पार्लियामेण्ट हो या कौन्सिल—हमारे ऊपर कोई भी अधिकार न रक्खे। मैं तो यह ख़्याल करता हूं कि प्रेस की स्वाधीनता, सभा की स्वाधीनता इत्यादि जो कुछ स्वतंत्रता सरकार के हाथ से लोगों को मिली है वह उसी तरह है जिस तरह कि कोई मालिक अपने ग़ुलाम को इस बात की स्वतंत्रता या इजाज़त दे कि तुम नहा सकते हो, कपड़ा पहिन सकते हो और खाना भी खा सकते हो। क्या नहाने, खाने और कपड़ा पहिनने के लिए दूसरे से स्वतंत्रता या इजाज़त पाने की ज़रूरत है? उसी तरह क्या सभा करने, अख़बार निकालने, अपना विचार प्रगट करने इत्यादि के लिए किसी से स्वतंत्रता या आज्ञा पाने

की आवश्यकता है । स्वतंत्रता तो एक समूची चीज़ है उसके टुकड़े नहीं हो सकते ।

खेद की बात है कि जहां आप देखेंगे वहां, जिस देश में आप जायेंगे उस देश में, थोड़े से लोग, जो सरकार के कर्मचारी या अधिकारी हैं, अधिकतर लोगों पर शासन, हकूमत या राज्य करते हुए दिखलाई पड़ेंगे । हरएक जगह थोड़े से शक्तिशाली लोग अधिकतर लोगों के लिए क़ानून और क़ायदे बना कर उनके जीवनों को इस तरह से जकड़ देते हैं कि वे स्वतंत्रता के साथ कुछ भी अपना हांथ पैर नहीं हिला सकते । जितनी ही सुगठित और शक्तिशाली सरकार होगी, उतना ही घना और मज़बूत जाल उसके क़ानूनों का होगा । अगर लोग उन क़ानूनों को तोड़ते हैं या उनके विरुद्ध अपने विचार प्रगट करते हैं तो वे दूसरे क़ानूनों के द्वारा पकड़ लिए जाते हैं और उन्हें एक न एक प्रकार का दण्ड दे दिया जाता है । कितने प्रकार के क़ानून और क़ायदे सरकार की ओर से लोगों के लिए बने हैं और कितने प्रकार के क़ानन उन्हें मानने पड़ते हैं इसका बतलाना असम्भव है । अगर कोई यह कहे कि मुझसे अज्ञानावस्था में बिना जाने बूझे अमुक आज्ञा या क़ानून का भंग होगया है तो उसका यह कहना उसे सज़ा से नहीं बचा सकता । क़ानूनों के द्वारा वह ऐसी हालत में रख दिया जाता है कि नमक, कपड़ा, लोहा, तेल, चाय, चीनी इत्यादि ख़रीदने के वक़्त उसे अपनी मेहनत से पदा किये हुए धन का एक बड़ा हिस्सा उन कामों के लिए सरकार को दे देना पड़ता है जिनके बारे में उसे बिल्कुल पता नहीं रहता । जिन खेतों को वह जोतता है और जिन मकानों में वह रहता है, उनके लिए उसे टैक्स या लगान सरकार को देना पड़ता है ।

इसके अलावा कुछ मुल्कों में यह क़ानून है कि जब मनुष्य किसी ख़ास उम्र में पहुंचता है तो उसे ज़बर्दस्ती फ़ौज में भर्ती होकर कुछ वर्षों तक सरकार की सेवा करनी पड़ती है और सरकार की आज्ञा से जहां कहीं मरने मारने के लिए बिना आपत्ति के कूँच करना पड़ता है। पर आश्चर्य की बात है कि लोग ऐसी हालत में अपने को ग़ुलाम नहीं समझते, बल्कि अपने को इंगलिस्तान, फ्रांस, अमरीका, जर्मनी इत्यादि का स्वतंत्र नागरिक समझते हैं और मारे अभिमान के फूले नहीं समाते। जिस तरह कोई ग़ुलाम अपनी ग़ुलामी पर अभिमान करता है उसी तरह ये लोग अपनी इस हालत पर अभिमान करते हैं।

जिस मनुष्य में कुछ भी सचाई और ईमान्दारी है, जिसमें कुछ भी आत्मिकबल है वह ऐसी भयानक और अपमान की हालत में अपने को पाकर अपने मन में यही कहेगा कि "मुझे यह सब क्यों करना चाहिए ? मुझे सरकार के क़ानूनों को क्यों मानना चाहिए ? मैं सरकार को अपनी गाढ़ी मेहनत से पैदा किया हुआ धन टैक्स या लगान के रूप में क्यों दूं ? मैं सरकार की अदालतों, स्कूलों और कालिजों में क्यों जाऊं ? मैं सरकार की फ़ौजों में भर्ती हो कर उन दूसरे देशवालों के खून से अपने हाथ क्यों रंगूँ जिनसे मेरी कोई दुश्मनी नहीं है ? मैं अपने ढंग पर जितनी अच्छी तरह से हो सके उतनी अच्छी तरह अपने जीवन को बिताना चाहता हूं। मैं स्वयं इस बात का निश्चय करना चाहता हूं कि कौन सी चीज मेरे लिए लाभदायक तथा आवश्यक है और कौन सी चीज नहीं। मैं यह नहीं चाहता कि सरकार या दूसरा कोई इस बात का निश्चय करे। यदि मुझे अपने विश्वास और बिचार के अनुसार कार्य करने में कोई कष्ट सहना पड़े तो

मैं उसके लिए तैयार हूं । आप मेरी हरएक चीज़ ज़ब्त कर सकते हैं, आप मुझे फांसी पर लटका सकते हैं, पर मैं अपनी इच्छा से या अपनी रज़ामन्दी से गुलामी की तौक़ नहीं पहन सकता और न सरकार की किसी बात में शरीक हो सकता हूं ।" लोगों का ऐसा करना स्वाभाविक है पर अफ़सोस है कि कोई भी ऐसा करने को तैयार नहीं है ।

लोगों के दिलों में यह विश्वास बड़ी मजबूती से जड़ जमाये हुए है कि हम बिना किसी न किसी प्रकार के राज्य या सरकार के जिन्दा नहीं रह सकते । इस विश्वास की बदौलत लोग यह नहीं ख्याल करते कि हमारा सच्चा हित किसमें है और हमारी आत्मा हमें क्या करने के लिए कहती है । लोग इस विश्वास के इतने गुलाम हो गये हैं कि उनके दिमाग़ में इसके विरुद्ध कोई बात धंसती ही नहीं । वे उस चिड़िया की तरह हैं जो पिंजड़े का दरवाजा खुला रहने पर भी आदत पड़ जाने से उसी के अन्दर बैठी रहती है और पिंजड़े के बन्धन से निकलने की कोशिश नहीं करती । लोग इस बात को महसूस ही नहीं कर सकते कि हम कभी स्वतंत्र हो सकते हैं । यह ग़लत ख्याल शहर के लोगों में और अमीरों में हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है, पर उन लोगों में ग़लत ख्याल का होना बड़े आश्चर्य की बात है जो अपनी आवश्यकताओं को खुद आपही पूरा कर लेते हैं । इस तरह के लोग हिन्दुस्तान, जर्मनी, आस्ट्रेलिया, कनाडा, रूस इत्यादि के किसान हैं जो अपनी ज़रूरत की सब चीज़ें आप ही पैदा कर सकते हैं । इन लोगों को न तो उस गुलामी की ज़रूरत है जिसमें वे रहते हैं और न उससे उन्हें कोई लाभ है ।

अगर शहर के लोग इस गुलामी से निकलने की कोशिश

न करें तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि उनका स्वार्थ सरकार और उसके कर्मचारियों के स्वार्थ से इतना सना हुआ है कि जिस गुलामी में वे रहते हैं वह उनके स्वार्थ के लिए बहुत ही लाभदायक है। मिस्टर कार्नेगी, मिस्टर राकफ़ेलर, ताता इत्यादि बड़े बड़े अमीर, सेठ साहूकार और पूंजीवाले अपनी अपनी सरकार के क़ानूनों को मानने से इनकार नहीं कर सकते क्योंकि उन क़ानूनों की बदौलत वे किसानों और मज़दूरों का गला काट कर करोड़ों की दौलत इकट्ठा कर सकते हैं। इसी तरह से शहर के लोग भी इन क़ानूनों को तोड़ने की हिम्मत नहीं कर सकते क्योंकि उनका स्वार्थ भी इन्हीं क़ानूनों की बदौलत सिद्ध होता है। पर खेती-बारी करनेवाली जातियां जैसे कि हिन्दुस्तान और रूस की जातियां हैं, इस गुलामी के चक्कर में क्यों पड़ती हैं यह मेरी समझ में नहीं आता।

लकड़ी के एक गट्ठर को बांधने के लिए एक मज़बूत रस्सी की ज़रूरत पड़ती है। उसी तरह सरकार अपनी प्रजा को क़ानूनों के द्वारा बांधती है। पर प्रजा को क़ानूनों के द्वारा बांधने के लिए सरकार को फ़ौज, पुलीस और अदालत इत्यादि की ज़रूरत पड़ती है। बिना फ़ौज, पुलीस और अदालत के सरकार प्रजा को अपने रोब में नहीं ला सकती। अगर सरकार बिना ज़बर्दस्ती किये हुए, बिना धमकाये और डराये, प्रजा को अपने वश में नहीं कर सकती तो इसका मतलब यह है कि कुछ लोगों का ज़ोर दबाव और अधिकार दूसरों पर हमेशा बना ही रहेगा चाहे सरकार प्रजातन्त्र हो या निरंकुश नौकरशाही हो, या प्रजाशाही। पर जब तक सरकार मौजूद है और साथ ही उसके क़ानून, उसकी फ़ौजें, उसकी पुलीस, उसकी अदालतें और उसके जेलख़ाने मौजूद हैं तब तक न

तो सच्ची स्वतंत्रता हो सकती है और न होगी।

पर आमतौर पर लोग यह सवाल करते हैं कि अगर सरकार न रहेगी तो लोग बिना किसी प्रकार की सरकार किस तरह रहेंगे। आमतौर पर लोग किसी न किसी प्रकार की सरकार के नीचे रहने के इतने आदी हो गये हैं कि वे समझ ही नहीं सकते कि बिना सरकार के भी हम रह सकते हैं। ऐसे लोगों के प्रश्न के उत्तर में हमें सिर्फ यही कहना है कि आप जिस तरह आजकल रहते हैं उसी तरह रहेंगे पर हां, कोई जबर्दस्ती आपके पैदा किये हुए धन को आप से न छीन सकेगा, आप से जबर्दस्ती टैक्स या लगान न ले सकेगा, जबर्दस्ती आपको फ़ौज या पुलीस में भर्ती न कर सकेगा, और न फ़ौज की ज़रूरत होगी न लड़ाई की, न पुलीस की ज़रूरत होगी न अदालत की। तब सब क़ौमें एक दूसरे को भाई की तरह समझेंगी और सब आपस में एक दूसरे से हिल-मिल कर शान्ति के साथ रहेंगी।

जो लोग इस वर्त्तमान क्रान्तिकारी आन्दोलन में शरीक हैं उनमें से अधिकतर लोग इस बात का अनुभव नहीं करते। उन्हें समझ लेना चाहिए कि इस महान् क्रान्ति का उद्देश, जो हम लोगों के सामने हो रही है, यह है कि लोग सरकार की गुलामी से हमेशा के लिए छूट जायं। लोगों को यह जान लेना चाहिए कि जिस तरह उन्हें किसी भी प्रकार की बेड़ी की ज़रूरत नहीं है, चाहे वह बेड़ी सोने की हो या लोहे की, उसी तरह उन्हें किसी भी सरकार की ज़रूरत नहीं है, चाहे वह सरकार अत्यन्त प्रजातन्त्र हो या अत्यन्त निरंकुश।

अगर लोग आज सरकार और उसकी आज्ञाओं का मानना छोड़ दें तो वे देखेंगे कि न टैक्स है न लगान है, न फ़ौज है न

पुलीस है, न क़ानून हैं न अदालतें हैं, न कोई उनकी ज़मीन को ज़बर्दस्ती छीन सकेगा और न संसार में लड़ाइयां और युद्ध होंगे। यह कैसी सरल और सीधी बात मालूम पड़ती है। तब भी लोग इसके अनुसार क्यों नहीं आचरण करते? इसका कारण यही है कि अगर हम सरकार की आज्ञाओं को न मानेंगे तो हमें ईश्वर की आज्ञा माननी पड़ेगी, अर्थात् हमें धार्मिक और सदाचारी जीवन व्यतीत करना पड़ेगा। मनुष्य जिस दर्जे तक इस तरह का जीवन व्यतीत करेगा उसी दर्जे तक वह सरकार की गुलामी से छूट कर स्वतन्त्र हो जायगा। जब अधिकतर मनुष्य इस तरह का जीवन व्यतीत करेंगे, जब वे यह अनुभव करने लगेंगे कि उनकी कुल विपत्तियों का एकमात्र कारण सरकार और उसकी आज्ञाओं का पालन है, जब वे सरकार और उसके क़ानूनों का मानना एकदम बन्द कर देंगे तभी उस युगान्तर का विकाश पूर्णरूप से इस संसार में होगा जिसकी प्रतीक्षा तृषित नेत्रों से लोग इतने दिनों से करते आ रहे हैं।

४—सच्चा स्वराज्य तुम्हारे हृदय में है।

हमारा समस्त जीवन उन सब सिद्धान्तों के विरुद्ध व्यतीत होता है जो सच्चे, न्यायोचित और स्वयंसिद्ध माने जाते हैं। यह विरोध धर्म, समाज, राजनीति इत्यादि जीवन के हरएक विभाग में दिखलाई पड़ता है। अर्थात् हम अपने जीवन का हरएक कार्य अपनी अन्तरात्मा और विवेकबुद्धि के विरुद्ध करते हैं। हम में से प्रायः

प्रत्येक मनुष्य मानता है कि हम चाहे जिस भाषा के बोलनेवाले हों, चाहे जिस देश में रहते हों, चाहे जिस मत या सम्प्रदाय के हों, गोरे हों या काले, ऊंच हों या नीच, पर हम सब हैं एक ही परम पिता परमेश्वर के पुत्र और इस सम्बन्ध से हम सब एक दूसरे के भाई के समान हैं। वर्त्तमान समय का हरएक मनुष्य इस बात को जानता है कि एक ही परमपिता के पुत्र होने की हैसियत से हम सबों के अधिकार बराबर होने चाहिए और संसार के सुख भोगने तथा अपनी उन्नति करने के लिए हम सबों को समान अवसर मिलना चाहिए। हरएक मनुष्य यह जानता हुआ भी अपने चारों ओर देखता है कि कुल मनुष्य दो जातियों में बँटे हुये हैं। एक ओर तो वे सब मनुष्य हैं जो मज़दूर कहलाते हैं, जो हाथ से काम करते हैं, जो हमारे लिए अन्न पैदा करते हैं, जो दिल दहलाने वाली तकलीफों और अत्याचारों के शिकार हो रहे हैं और कहां तक कहें जिन्हें भरपेट खाने तक को भी नसीब नहीं है; और दूसरी ओर वह सब लोग हैं जो आलसी और निकम्मे हैं, जो ग़रीब किसान और मज़दूर के पैदा किए हुये धन पर गुलछर्रे और मज़े उड़ाते हैं, जो दूसरों का धन चूस कर अपनी कोठियां खड़ी करते हैं और जो ग़रीबों तथा कमज़ोरों पर अत्याचार करना अपना स्वाभाविक अधिकार समझते हैं।

इस समय के ग़रीब किसानों और मज़दूरों की हालत प्राचीन रोम के गुलामों से भी बदतर है। यद्यपि प्राचीन रोम के गुलाम बिना पैसा कौड़ी के होते थे, वे पृथ्वी के स्वामी नहीं हो सकते थे तथापि उनकी शारीरिक आवश्यकताओं को उनके स्वामी पूरी कर देते थे। उनको काफ़ी खाना और कपड़ा हमेशा मिल जाता था।

किन्तु आजकल का बेचारा ग़रीब किसान और मज़दूर भोजन और कपड़े के लिए भी तरसता है। उसका कोई रक्षक और बकील नहीं। अगर यह किसान या मज़दूर उन गुलामों से अधिक स्वतन्त्र है तो उसकी स्वतन्त्रता सिर्फ़ इसलिए है कि वह स्वच्छन्दता के साथ बिना रोक-टोक भूखों मर सके। इन ग़रीबों का घर जङ्गल में रहने वाले जानवरों की मांदों से भी ज्यादा गन्दा होता है। इनके टूटे फूटे झोपड़े इन्हें जाड़े, गर्मी और बरसात से नहीं बचा सकते। ये बेचारे रेल के तीसरे दर्जे की तकलीफ़ें सहने की अपेक्षा पैदल चलने में ज्यादा आराम समझते हैं। किसान अनाज पैदा करता है पर आप भूखा रहता है। जुलाहा कपड़ा बुनता है पर आप जाड़ों में भयानक सर्दी से ठिठरा रहता है। राज और मज़दूर दूसरों के लिए बड़े बड़े मकान तयार करते हैं पर उन्हें टूटे-फूटे झोपड़ों में ही रहना नसीब है। उधर जो हाथ से काम नहीं करता वह रुपये के ज़ोर से इन ग़रीबों के पैदा किये हुए धन और ऐश्वर्य का भोग करता है। किसान बेचारा अधिक टैक्स और लगान देता; काफ़ी खाने को नहीं पाता, काफ़ी कपड़े नहीं पहिन सकता। वह प्लेग और अकाल का पहला शिकार होता है। वह राजाओं और अमीरों के आराम के सामान पैदा करता है; सरकारी कर्मचारियों को अधिकतर तनख्वाहें वही देता है; ज़मींदारों और महाजनों के थैलों को रुपये से वही भरता है; और अन्त में आप कोरा का कोरा रह जाता है!

कैसे बड़े आश्चर्य की बात है कि जो अन्न पैदा करता है, कपड़ा बुनता है, नगर की सफ़ाई रखता है, अपने टैक्स के रुपये से स्कूल और कालेज खोलता है वह हमारे समाज में सब से नीच

समझा जाता है ? उसका छूना पाप है ! किन्तु ऊंची जातिवाले को चाहे वह कितना ही निकम्मा और दुश्चरित्र क्यों न हो, हम बड़े आदर की दृष्टि से देखते हैं। समाज में वही श्रेष्ठ समझा जाता है। एक नीची जाति का बालक हाई स्कूल और कालेज में जाना तो दूर रहा प्रारम्भिक स्कूल में भी नहीं पढ़ सकता, क्योंकि वह ज्योंही पढ़ने योग्य उम्र का होता है त्योंही उसको मज़दूरी और सेवा कर के पेट पालने की फ़िक्र हो जाती है। देश के अधिकतर स्कूल टैक्स देनेवालों के रुपयों से चलाये जाते हैं। इन टैक्स देनेवालों में अधिकतर संख्या इन्हीं ग़रीब और मेहनती किसानों और मज़दूरों की होती है। किसान और मज़दूर अपने बच्चों को स्कूलों और कालेजों में भेज कर शिक्षा नहीं दिला सकते, क्योंकि वे अत्यन्त ग़रीब हैं। नतीजा यह होता है कि धनी और ऊंची जाति के लोग इन ग़रीब किसानों और मज़दूरों के टैक्सों से चलाये गये स्कूलों और कालेजों से भरपूर फ़ायदा उठाते हैं। इस तरह ग़रीब किसान और मज़दूर सामाजिक तथा राजनैतिक अत्याचारों की भूल-भुलैयों में चक्कर मारा करते हैं। किसान और मज़दूर नीची निगाहों से देखे जाते हैं, क्योंकि वे गंवार तथा अशिक्षित हैं। पर वे शिक्षा भी नहीं पा सकते क्योंकि शिक्षा बिना रुपये के नहीं मिल सकती। उसके लिए एक तरफ़ कुआं है तो दूसरी तरफ़ खांई। करे तो वह क्या करे !

हम इन सब अत्याचारों और परस्पर-विरोधी बातों को विरोध और उनसे असहयोग करना तो दूर रहा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उनमें सहयोग दे कर उन्हें और भी पुष्ट बनाते हैं। असभ्य और अशिक्षित मनुष्यों की अपेक्षा उन मनुष्यों का जीवन तो और

भी अधिक अन्यायपूर्ण बातों का प्रचार करने और अत्याचारों को पुष्ट करने में व्यतीत होता है जो अपने को सभ्य, शिक्षित और कुलीन समझते हैं। हरएक सभ्य और शिक्षित मनुष्य भ्रातृभाव, मानव-प्रेम, दया और न्याय के सिद्धान्तों पर विश्वास करता है। पर वास्तव में उसका समस्त जीवन इन सब सिद्धान्तों के विरोध में ही व्यतीत होता है। वह जानता है कि जिन आदतों में वह पगा है उन सब आदतों की आवश्यकतायें किसानों और मज़दूरों की सख़्त मेहनत के बिना नहीं पूरी हो सकतीं। वह भ्रातृ-भाव, दया, मानव-प्रेम और न्याय के सिद्धान्तों को मानता हुआ भी इस तरह से अपना जीवन व्यतीत करता है कि बिना मज़दूरों और किसानों पर अत्याचार किए उसकी आवश्यकतायें नहीं पूरी हो सकतीं। वह अपनी ज़िन्दगी में ऐसी कार्रवाइयां करता है जिनसे यह सब बातें क़ायम रहती हैं और ज़र्रा भर भी कम नहीं होने पातीं।

कहने के लिए हम सब एक दूसरे के भाई समान हैं पर हर रोज़ हमारा मज़दूर भाई हमारे लिए हमारे बर्तनों को मांजता, हमारे जूतों को साफ़ करता और हमारे कपड़े लत्तों को झाड़ता पोंछता है। हम सब एक दूसरे के भाई हैं पर हमें हर रोज़ सवेरे उठते ही सिगरेट, चाय, पान, तम्बाकू, चीनी, शीशा, कंघी वग़ैरह चाहिए, जिनके बनाने में हमारे न जाने कितने भाइयों की तन्दुरुस्ती ख़राब होती है। हम सब एक दूसरे के भाई होते हुए भी उन बैंकों, दूकानों या कम्पनियों में काम करते हैं जिनके सबब से हमारे जीवन की अनेक आवश्यक वस्तुयें हद से ज़्यादा मंहगी हो जाती हैं; इस तरह से हम उन चीज़ों को मंहगी बनाने में शरीक होते हैं जो हमारे ग़रीब भाइयों के लिए बहुत ही ज़रूरी हैं। हम एक दूसरे के भाई होते हुए भी जज या मजिस्ट्रेट की हैसियत

से उन भाइयों पर मुक़द्दमा चलाते हैं और उन्हें सज़ा देते हैं जो किसी आवश्यकता में पड़ कर चोरी और व्यभिचार इत्यादि कर बैठते हैं और जिनके लिए सज़ा की नहीं बल्कि सुधार और सहानुभूति की आवश्यकता है। हमारे इस तरह के भाई, जो कुमार्ग में जा पड़े हैं, सज़ा से नहीं बल्कि सहानुभति और क्षमा के बर्ताव से सुधर सकते हैं। हम सब भाई हैं पर हम में से न जाने कितने मनुष्य ग़रीब मज़दूरों और किसानों से लगान और कर वसूल करने के लिए तनख़्वाह पाते हैं, जिसमें कि यह वसूल किया हुआ रुपया आलसियों और अमीरों के ऐशो-आराम में ख़र्च हो। हम सब एक दूसरे के भाई हैं पर हम अपने कुछ भाइयों को जो अछूत कहलाते हैं, छूने से अपने को अपवित्र समझते हैं। हम सब भाई हैं पर हम अपने को ऊँच तथा कुलीन और दूसरों को नीच तथा हेय समझते हैं। हम सब आपस में भाई होते हुए भी दूसरों की दवादारू बिना फ़ीस या उजरत लिए हुए नहीं करते; दूसरों को शिक्षा बिना रुपया लिए हुए नहीं देते; दूसरों के लिए ग्रन्थ और पुस्तकें, बिना टेंट गरम किए हुए नहीं लिखते। हम सब एक दूसरे के भाई होते हुए भी रुपये के लालच से फ़ौज में भर्ती होते हैं और अपने भाइयों के खून से अपने हाथों को रंगते हैं!

ऊंची जातिवाले मनुष्यों का जीवन इसी तरह की परस्पर विरोधी बातों में पार होता है। जिस मनुष्य की अन्तरात्मा इस बात को अनुचित और अत्याचार से भरी हुई समझती है पर जिसे इस अत्याचार में अपनी आत्मा के विरुद्ध शरीक होना पड़ता है वह हृदय में सिवाय पीड़ा अनुभव करने के और क्या कर सकता है? केवल एक उपाय है जिससे वह इस पीड़ा से छुटकारा पा

सकता है। अर्थात यह कि वह अपनी अन्तरात्मा का हनन कर डाले। किन्तु आत्मा का हनन कर डालने पर भी वह घृणा और भय का शिकार होने से किस तरह बच सकता है? जो लोग अत्याचार को या तो अत्याचार नहीं समझते या अपनी अन्तरात्मा के विरुद्ध शरीक होते हैं और ग़रीब किसान तथा मज़दूरों पर ज़ुल्म करते हैं वे यह अच्छी तरह से जानते हैं कि मज़दूर और किसान लोग उन्हें कैसी घृणा की दृष्टि से देखते हैं। किसान और मज़दूर अब यह जानने लगे हैं कि हमें धोखा दिया जा रहा है और हम पर अत्याचार हो रहा है। वे अब अत्याचारियों का अत्याचार मिटाने और उनसे बदला लेने के लिए संगठित हो रहे हैं। धनी, ज़मींदार और कल-कारख़ानों के मालिक चारों ओर किसान-सभाओं, मज़दूर-समितियों और हरतालों को देखकर यह भय खाने लगे हैं कि कैसी मुसीबत इन पर आनेवाली है। यही भय उनके जीवन को दु:खमय बना रहा है। भय उत्पन्न होने पर वे अपनी रक्षा का उपाय सोचते हैं; और मज़दूरों तथा किसानों की ओर द्वेष का भाव उनके हृदयों में जागृत होने लगता है। वे यह अच्छी तरह जानते हैं कि किसानों और मज़दूरों के साथ उनका जो युद्ध चल रहा है उसमें अगर वे कुछ भी कमज़ोर पड़ेंगे तो नेस्त-नाबूद हो जायंगे, क्योंकि किसान और मज़दूर अत्याचार सहते सहते हताश हो गये हैं। अत्याचारी ज़मींदार और मालिक अगर चाहें तो भी अत्याचार नहीं बन्द कर सकते, क्योंकि वे यह जानते हैं कि जिस दम हम अत्याचार करना बन्द कर देंगे उसी दम हमें अपनी हार स्वीकार करनी पड़ेगी। इसलिए हमारे धनी, ज़मींदार और कल-कारख़ाने के मालिक चाहे अपनी अन्तरात्मा के अनुसार चलें या प्रतिकूल, पर वे उस धन, ऐश्वर्य्य का भोग शान्तचित्त

से नहीं कर सकते जिसे उन्होंने ग़रीब मज़दूरों और किसानों पर अत्याचार करके पैदा किया है। उनका कुल जीवन और उनके समस्त सुख अन्तरात्मा की फटकार या भय के कारण दुःखमय हो जाते हैं।

आर्थिक मामलों में इसी तरह अनेक अन्याय और परस्पर विरोधी बातें दिखलाई पड़ रही हैं। राजनैतिक मामलों में जो अनेक अन्याय की बातें हमारी नज़रों के सामने हो रही हैं उन का तो कुछ ठिकाना ही नहीं है। उन्हें देख कर तो हृदय में और भी आश्चर्य होता है।

हर एक मनुष्य को शुरू ही से राज्य के क़ानूनों की पाबंदी करने और उन्हें ईश्वरीय आज्ञा के समान मानने की शिक्षा दी जाती है। हमारा समस्त जीवन राज्य के क़ानूनों के अनुसार नियंत्रित किया जाता है। अब ज़रा इन क़ानूनों की हक़ीक़त सुनिये। जिन क़ानूनों के अनुसार लोग अपना जीवन नियमित करते हैं उन पर वे कदापि विश्वास नहीं करते। अधिकतर लोग उन क़ानूनों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। पर उनमें आत्मिक बल या साहस का इतना अभाव है कि वे अनेक नियमों को अनुचित या अन्यायपूर्ण समझते हुए भी उन्हें मानते रहते हैं। हम यह अच्छी तरह से जानते हैं कि जो नियम राज्य की ओर से बनाये जाते हैं वे "ईश्वरीय" या "सनातन" नहीं बल्कि "मनुष्यकृत" और "अपूर्ण" हैं। वे बहुधा असत्य और अन्यायपूर्ण भी होते हैं। हम यह भी जानते हैं कि राज्य के क़ानूनों को भिन्न भिन्न दलों के लोग अपने लोभ और स्वार्थ से प्रेरित होकर बनाते हैं। राज्य

में जो दल सब से अधिक प्रबल होता है वह उन्हीं क़ानूनों को गढ़ देता है जिनसे वह अपने स्वार्थ की सिद्धि समझता है। इन क़ानूनों से वास्तविक न्याय न तो होता है और न हो सकता है। पर हममें इतना आत्मिक बल नहीं है कि हम अनुचित और अन्यायपूर्ण नियमों को न मानें। जब शुरू से ही मनुष्यों का कुल जीवन उन क़ानूनों से जकड़ दिया जाता है जिनपर वे विश्वास नहीं करते और जिन्हें राजकीय दण्ड के भय से वे तोड़ने का साहस भी नहीं कर सकते तो ऐसी हालत में उनका जीवन दुःखमय हुये बिना नहीं रह सकता।

हम यह जानते हैं कि बहुत से सरकारी महकमों और अदालतों पर जो खर्च होता है वह बेफ़ायदा जाता है। पर हम उन्हें स्थापित रखने में सहायता देते हैं। हम जानते हैं कि अदालतों में जो सज़ायें दी जाती हैं वह अनुचित और बेरहमी से भरी रहती हैं। पर हम उनमें भाग लेना अपना कर्त्तव्य समझते हैं। लगान, ज़मीन, किसान और ज़मींदार के बारे में जो क़ानून प्रचलित हैं उन्हें हम हानिकर और अनुचित समझते हैं। पर हम उन्हें मानते हुए उनकी इज़्ज़त लोगों की नज़रों में क़ायम रखते हैं। हम सेनाओं और युद्धों को अनावश्यक और हानिकर समझते हुए भी ग़रीब किसानों और मज़दूरों का पैदा किया हुआ न जाने कितना धन उन पर बर्बाद किया करते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में भी आप अनेक परस्पर विरोधी बातें देख सकते हैं। यदि हम इन जटिल अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों को हल करने से चूकेंगे तो मनुष्य-जीवन और मनुष्य-प्रकृति ही नाश को प्राप्त हो जायगी। अन्तर्राष्ट्रीय मामलों से हमारा मतलब

उन युद्धों से है जो भिन्न भिन्न देशों के बीच हुआ करते हैं और जो असली धार्मिक सिद्धान्तों के विरुद्ध हैं ।

क्या ईसाई, क्या बौद्ध, क्या हिन्दू, क्या मुसलमान सब जाति और धर्म के लोग एक ऐसी गूढ़ और सर्वव्यापी शक्ति पर विश्वास करते हैं जो संसार की सब शक्तियों से परे है। सब जातियों के लोग सत्य, न्याय और दया को अच्छा समझते हैं, सब जातियों के मनुष्य एक दूसरे के कवियों, विद्वानों और दार्शनिकों का आदर करते हैं। सभी एक दूसरे के गुणों की प्रशंसा और एक दूसरे के प्रसिद्ध पुरुषों की प्रतिष्ठा करते हैं, तथापि हम सब लोग एक दूसरे को मारने के लिए हमेशा तयार रहते हैं और युद्धों में सम्मिलित हो कर एक दूसरे के ख़ून से अपने हांथों को लाल करते हैं ।

हर एक देश के समाचारपत्रों और मासिकपत्रों में इस बात पर लेख लिखे जाते हैं कि युद्ध से सिवा हानि के लाभ नहीं है और संसार के समस्त देशों की उन्नति बिना शान्ति के नहीं हो सकती। शान्ति के पक्ष में इसी तरह के विचार हरएक देश की सरकार के प्रतिनिधि, हरएक देश के ज़िम्मेदार अगुआ, हरएक देश के राजनीति विशारद अपने व्याख्यान, लेख और बातचीत में प्रगट करते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियों में भी यही विचार प्रगट किये जाते हैं। पर वास्तव में अमली कार-रवाई इन विचारों के बिल्कुल विरुद्ध की जाती है। साधारण से साधारण मनुष्य भी देख सकता है कि हरएक सरकार अपने अपने देश का फ़ौजी ख़र्च हर साल बढ़ाती चली जा रही है। इसके लिए वह नये टैक्स लगाती और नये क़र्ज़ लेती है, जिनके बोझ से हरएक देश की ग़रीब प्रजा दबती चली जा रही है। जो धन शिक्षा,

सफ़ाई, तन्दुरुस्ती खेतीबारी, कला, कारीगरी इत्यादि शान्ति और सुख बढ़ानेवाले कामों में ख़र्च होना चाहिए था वह एक दूसरे की हत्या और एक दूसरे का सर्वनाश करने में ख़र्च किया जाता है।

हर एक देश की सरकार फ़ौजी ख़र्च बढ़ाने के समय यही कहती है कि हम केवल शत्रुओं से अपनी रक्षा करने के लिए ऐसा कर रहे हैं, हम दूसरी जातियों पर हमला करने के उद्देश से यह सब ख़र्च और अस्त्र-शस्त्र नहीं बढ़ा रहे हैं। पर यह बात हमारी समझ में नहीं आती कि जब सभी सरकारें एकमात्र अपनी रक्षा के उद्देश से ही यह सब कर रही हैं और जब किसी का भी उद्देश हमला करने का नहीं है तो फिर हमले का डर कहां से हो सकता है। वास्तव में बात यह है कि एक देश की सरकार दूसरे देश की सरकार को अविश्वास और भय की दृष्टि से देखा करती है और व्यापार तथा राज-शक्ति में एक दूसरे से आगे बढ़ जाना चाहती है। इसलिए वे अपनी सेना और अपना सैनिक सामान नित्य-प्रति बढ़ाती जा रही हैं। जब हरएक देश इस तरह से युद्ध के लिए हमेशा तैयार खड़ा रहता है तो फिर मामूली से मामूली बात पर भी युद्ध छिड़ जाते हैं, दोनों ओर की सेनायें युद्ध के मैदानों में आ कर डट जाती हैं और एक दूसरे को संहार करने लगती हैं। इस योरोपीय महा-युद्ध के पहले योरोप की बिल्कुल ऐसी ही हालत थी। हाल में जितने युद्ध हुए हैं उनसे यही शिक्षा मिलती है कि युद्ध से जातियों के बीच शत्रुता कम होने के बदले और भी बढ़ जाती है।

युद्धों से धन का जो नाश होता है वह तो होता ही है, असंख्य हट्टे कट्टे मनुष्यों का नाश अकथनीय है। सेनाओं में प्रायः

वही मनुष्य भर्ती किये जाते हैं जो तन्दुरुस्त, बलवान और हृष्ट पुष्ट होते हैं। यदि यह सब मनुष्य सेनाओं में न भर्ती होकर खेती, व्यापार इत्यादि सुख-शान्ति बढ़ानेवाले कामों में लगते तो देश और जाति को न जाने कितना लाभ होता। इसी तरह से जो धन सेनाओं, युद्धों और नाशक अस्त्र शस्त्रों पर खर्च होता है वह यदि शिक्षा व्यापार इत्यादि में लगाया जाता तो देश की काया पलट जाती। हम भूखों मर कर और अपने बालबच्चों का पेट काट कर देश का अधिकतर धन सेनाओं पर इसलिए खर्च करते हैं कि जिसमें हम सफलता के साथ दूसरों को मार कर उनके खून से अपनी पाशविक तृष्णा को शान्त कर सकें।

पहले के ज़माने में गुलाम रखने की प्रथा थी। गुलाम लोग किसी बात में भी स्वतंत्र न होते थे। कोई काम वे बिना अपने मालिकों की आज्ञा के न कर सकते थे। जो उनके मालिक कहते वही उन्हें करना पड़ता था। यही हाल फ़ौज के सिपाहियों और अफ़सरों का भी है। वे न्याय अथवा अन्याय की बिल्कुल परवाह न करते हुये राजा, पार्लियामेण्ट या उनके मंत्रियों की निरंकुश इच्छा और आज्ञा के अनुसार मारने और मरने के लिए जहां कहा जाता है वहीं कूच कर देते हैं। वे इस बात का तनिक भी विचार नहीं करते कि जिस पक्ष को लेकर हम लड़ रहे हैं वह न्याययुक्त है या नहीं। इस प्रकार से फ़ौजी गुलामी की प्रथा दुनिया में करोड़ों आदमियों को गुलामी की ज़ंजीर में जकड़े हुए है। यह गुलामी और सब गुलामियों से बदतर है क्योंकि इसमें पड़कर देश के होनहार नवयुवक मारकाट को जीवन का अन्तिम उद्देश समझने लगते हैं।

आजकल संसार में जितने सिपाही अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित रक्खे जाते हैं उतने पहले कभी न रक्खे जाते थे। युद्ध की तैयारी में नये नये क़िले, नये नये शस्त्रागार, नये नये जहाज़, नये नये एयरोप्लेन, नये २ अस्त्रशस्त्र लगातार बनाये जाते हैं। विज्ञान की तरक़्क़ी इस तेज़ी के साथ हो रही है कि कुछ समय के बाद यह सब अस्त्रशस्त्र पुराने और व्यर्थ हो जाते हैं और उनके स्थान पर नये नये सामान तैयार किये जाते हैं। शोक है कि जो विज्ञान लोगों की भलाई के कामों में लगाया जाना चाहिए वह नाशकारी कामों की उन्नति में लगाया जाता है। इसी विज्ञान की बदौलत ऐसे ऐसे अस्त्रशस्त्र और उपाय निकाले जा रहे हैं कि जिनसे थोड़े ही समय में जितनी तेज़ी से हो सके उतनी तेज़ी से अधिक से अधिक मनुष्य मारे जा सकें। इन सब बातों पर हर साल करोड़ों रुपया पानी की तरह बहाया जाता है। यही रुपया अगर लोगों की शिक्षा, तन्दुरुस्ती, सफ़ाई, खेतीबारी, व्यापार इत्यादि पर लगाया जाता तो देश उन्नति की चरम सीमा पर पहुंच जाता।

संसार के भिन्न भिन्न देश के मनुष्यों में बहुत कुछ समानता और सम्बन्ध है; इसलिए कोई कारण नहीं है कि एक देश के मनुष्य दूसरे देश के मनुष्यों के साथ युद्ध करें और उनकी हत्या का पाप अपने सिर पर लें। तो फिर प्रश्न उठता है कि एक देश का दूसरे देशों के साथ युद्ध क्यों होता है? इसका कारण यह है कि एक देश की सरकार पागलपन या स्वार्थ में आ कर कोई ऐसी बात कर बैठती है या कोई ऐसी बात कह देती है जो दूसरे देश की सरकार को बुरी लगती है या जिससे उसके स्वार्थ को हानि पहुंचती है। उन दोनों सरकारों की स्वार्थपरता का फल यह होता है कि

हम उनकी ओर से युद्धभूमि में जा कर अपनी जान देते हैं और उन लोगों की जानें लेते हैं जिन्होंने हमारे साथ कोई बुराई नहीं की है बल्कि जिन्हें हम मित्र-भाव से देखते हैं। यदि हम अपने जीवन की इन परस्पर विरोधी बातों को देखने लगें, यदि हम यह अनुभव करने लगें कि हमारे विचार और व्यवहार में कितना अन्तर है, यदि हमारे दिमाग़ में यह बात आ जाय कि वर्त्तमान सामाजिक और राजनैतिक सङ्गठन में, क़ानूनों और अदालतों में, सामाजिक और राजनैतिक अत्याचारों में, युद्धों और सेनाओं में हम अपनी आत्मा और सच्चे सिद्धान्तों के विरुद्ध भाग ले रहे हैं और अपने सहयोग से उन्हें और भी पुष्ट बना रहे हैं तो हम में से कम से कम आधे मनुष्य तो सहयोग करने के बदले या तो अवश्य असहयोग कर लेते या आत्मघात के द्वारा इस संसार से छुटकारा पा जाते।

इस समय की जितनी सरकारें हैं वे चाहे आत्याचारी हों या उदार, निरंकुश हों या प्रजातंत्र, सब की सब चंगेज़ ख़ां और नादिर-शाह हैं। उनमें और मामूली लुटेरों में सिर्फ़ यह फ़र्क़ है कि मामूली लुटेरों और डाकुओं के क़ब्ज़े में रेल, तार इत्यादि नहीं होते, पर दुनियां की सरकारें रेल, तार इत्यादि वैज्ञानिक आविष्कारों की सहायता से अपने लूट-पाट का काम बड़ी ख़ूबी के साथ जारी रखती हैं। रेल, तार, अदालत, जेलख़ाना, फ़ौज इत्यादि की बदौलत हरएक देश की सरकार लोगों को ख़ूब अच्छी तरह ग़ुलाम बना सकती है और उनपर मनमाना अत्याचार कर सकती है।

दुनिया की सरकारें और उनके शासक लोग अपने अधिकारों के लिए न्याय और सत्य के सिद्धान्तों पर निर्भर नहीं रहते। न्याय और सत्य क्या है इसकी वे कुछ परवाह नहीं करते। उनकी शक्ति

और उनके अधिकार एक ऐसी बनावटी संस्था पर निर्भर हैं जिसे उन्होंने अपने मतलब के लिए "राज्य-नियम" या "शासन-व्यवस्था" के नाम से क़ायम कर रक्खा है। यह "राज्य-व्यवस्था" मय अपने रेल, तार, डाक, पुलिस, और फ़ौज के एक ऐसा चक्कर है जिस के अन्दर एक बार आ जाने से फिर निकलना असम्भव हो जाता है।

चार उपाय हैं जिनसे दुनिया की सरकारें उक्त राज्य-नियम या शासन-व्यवस्था के जाल में लोगों को फँसाती हैं। यह चारों उपाय ज़ञ्जीर की कड़ियों की तरह एक दूसरे से जुड़े हुए और एक दूसरे को मज़बूत बनाये रहते हैं।

पहला उपाय जिसे सरकारें अपना अधिकार क़ायम रखने के लिए काम में लाती हैं और बहुत पुराने ज़माने से चला आ रहा है। यह उपाय डर और धमकी दिखला कर प्रजा को अपने वश में रखना है। जब कोई मनुष्य किसी समय की मौजूदा राज्य-व्यवस्था या राज्य-नियम को उखाड़ने या उसमें परिवर्त्तन करने की कोशिश करता है तो उसे कड़ी से कड़ी सज़ा दी जाती है और वह राज-द्रोही के नाम से मशहूर किया जाता है। जहां जहां सरकारें क़ायम हैं वहां वहां यह उपाय बराबर काम में लाया जा रहा है। आयरलैण्ड में सीनफ़िनरों के विरुद्ध, मिश्र में स्वतन्त्रा-प्रेमी नवयुवक दल के विरुद्ध और भारतवर्ष में असहयोगियों के विरुद्ध यही उपाय काम में लाया जाता है। रेल, तार, डाक, पुलीस और फ़ौज इन सबों की वजह से सरकार की शक्ति इतनी मज़बूत हो जाती है कि वह चाहे जितनी अत्याचारी और अन्याई क्यों न हो उसका उखाड़ना प्रायः असम्भव हो जाता है।

दूसरा उपाय रिश्वत या घूस देने का है। इस उपाय के द्वारा सरकारें मज़दूरों और किसानों से कर या लगान के रूप में रुपया

वसूल कर के अफ़सरों और देश-द्रोहियों में बांटती है। इसके बदले में सरकारी अफ़सर, कर्मचारी और देश-द्रोह करनेवाले आम लोगों को ग़ुलाम बनाने में सरकार की भरसक सहायता करते हैं और उसकी शक्ति भरपूर क़ायम रखते हैं।

ऊंचे से ऊंचे मिनिस्टर (मन्त्री) से ले कर छोटे से छोटे क्लार्क तक सब सरकाररूपी मैशीन के भिन्न भिन्न छोटे या बड़े पुर्ज़े हैं। इन में से सब के सब आम लोगों के पैदा किये हुए धन से पलते और गुलछर्रे उड़ाते हैं। इनमें से जो जितनी अधिक राज-भक्ति, चापलूसी और ख़ैरख़्वाही के साथ सरकार की इच्छाओं के अनुसार चलता है वह उतना ही अधिक लक्ष्मी और सरकारी प्रतिष्ठा का कृपा-पात्र होता है। हर जगह, हर समय और हर उपाय से उनकी यही कोशिश रहती है कि मौजूदा सरकार बनी रहे, नहीं तो फिर उन्हें कौन पूछेगा। इसलिए वे सरकार की हर एक ज़्यादतियों और अत्याचारों का समर्थन करते हैं।

तीसरा उपाय वह है जिसे हम इन्द्रजाल के नाम से कह सकते हैं। इस इन्द्रजाल को सरकारें स्कूलों और कालेजों तथा अख़बारों और पुस्तकों के द्वारा फैलाती हैं। इसके द्वारा सरकारें लोगों के हृदयों में बचपन से ही ऐसे भाव पदा करती हैं कि जिस में वे मौजूदा सरकार के ग़ुलाम हमेशा बने रहें। इसके द्वारा सरकारें लोगों के दिलों में यह बात मज़बूती के साथ पैदा करती हैं कि देखो मौजूदा हुकूमत तुम्हारी भलाई और तरक्क़ी के लिए बहुत ही ज़रूरी है, अगर मौजूदा सरकार न रहे तो तुम्हारे जान-माल और देश की रक्षा नहीं हो सकती। जिन देशों में किसी राजा या बादशाह की हुकूमत होती है वहां यह भाव राज-भक्ति के नाम से और जहां प्रजातन्त्र-प्रणाली के अनुसार राज्य होता है वहां यह

भाव देश-भक्ति के नाम से पुकारा जाता है। अत्याचारी सरकारें प्रत्यक्ष रूप से ऐसी पुस्तकों का प्रकाशित होना और ऐसे व्याख्यानों का दिया जाना बन्द कर देती हैं जिनसे प्रजा की आंखें खुलती हैं और जिनकी बदौलत होश में आ कर वे अपने अधिकारों को समझने लगती हैं। जिन मनुष्यों से सरकार को यह डर रहता है कि वे लोगों को जगा कर उनके असली अधिकार उन्हें समझा देंगे वे गिरफ़्तार करके या तो जलावतन कर दिये जाते हैं या जेलख़ानों में कड़ी सज़ा पाने के लिए ठूँस दिये जाते हैं।

इसके अलावा सरकारें आम लोगों को इसलिए अन्धकार में डाले रहती हैं कि जिसमें वे अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने का उद्योग न कर सकें। सरकारें बहुत से ऐसे कामों में लोगों को उत्साह देती हैं जिन से उनका चरित्र सुधरना तो दूर रहा वे और भी नीचे ही की ओर गिर जाते हैं। उदाहरण के लिए सरकारें ऐसी ऐसी पुस्तकों के प्रकाशित होने में सहायता और उत्साह देती हैं जिनकी बदौलत लोग धार्म्मिक, सामाजिक और राजनैतिक परतन्त्रता में और भी जकड़ जाते हैं।

सरकारें लोगों को परतन्त्र बनाये रखने के लिए शराब, गांजा, भांग, अफ़ीम, चरस, चण्डू, इत्यादि की बिक्री से भरपूर फ़ायदा उठाती हैं। जो लोग शराबख़ोरी वगैरह बिलकुल बन्द करने के लिए आन्दोलन मचाते हैं वे ख़तरनाक आदमी समझे जाते हैं और उन्हें सज़ा देकर जेलख़ाने की हवा खिलाई जाती है। बहुत सी सरकारें तो वेश्याओं के व्यापार को उत्साहित करती हैं। यही तीसरा उपाय है जिससे सरकारें लोगों को अपने कपट-जाल में फँसाये रहती हैं।

लोगों को गुलाम बनाये रखने का चौथा उपाय इन तीनों

उपायों की सफलता पर निर्भर है। जो लोग इन तीनों उपायों से सरकारों के वश में आ जाते हैं और जिनकी आत्माएं ग़ुलामी की जञ्जीर में पूरी तरह से जकड़ जाती हैं उनमें से कुछ हट्टे कट्टे और जवान आदमी रंगरूट बनाकर फौज में भर्ती किये जाते हैं। वे एक ऐसी उम्र में अपने गृह-कुटुम्ब, भाई-बन्धु, खेती-बारी और व्यापार-धन्धे से अलग कर दिये जाते हैं जब कि उन्हें इस बात का काफ़ी अनुभव नहीं होता कि जो हम कर रहे हैं वह न्याय है या अन्याय। घर द्वार से अलग हो कर वे तङ्ग बारिकों में एक साथ रक्खे जाते हैं, विचित्र ढङ्ग की फ़ौजी वर्दी उन्हें पहिनाई जाती है, हर रोज़ उन्हें क़वायद करना, बन्दूक़ चलाना, निशाना लगाना और मशीनगन चलाना सिखाया जाता है। उनसे उसी तरह काम लिया जाता है जिस तरह किसी मेशीन से लिया जाता है। उन्हें क़वायद वग़ैरह इसलिए सिखाई जाती है कि जिसमें वे अपनी सरकार के हुक्म से दूसरों का ख़ून करने के लिए हमेशा तयार बैठे रहें और उन ज़्यादतियों तथा अत्याचारों में बिना उज़्र शरीक हो जायं जो सरकारों की ओर से किये जाते हैं। लोगों को ग़ुलाम बनाये रखने का यही चौथा और सबसे बड़ा उपाय है।

आम तौर पर लोगों का यह ख़्याल है कि अत्याचारी सरकारों के अत्याचारों से हमारा छुटकारा तभी हो सकता है जब हम अशान्त और उद्दण्ड उपायों से मौजूदा सरकारों को ज़बर्दस्ती उलट पलट कर एक नई हुकूमत क़ायम करें। यदि यह मान लिया जाय कि अशान्त और उद्दण्ड उपायों से हम अत्याचारी सरकारों के अत्याचार से छुटकारा पा सकते हैं तब भी इस बात का कोई निश्चय नहीं है कि ज़रूरत पड़ने पर नई सरकार भी इन अशान्त और उद्दण्ड उपायों को हमारे विरुद्ध काम में न लाये-

गी। जब तक संसार मे शस्त्र-शक्ति की पूजा रहेगी, जब तक अशान्त तथा उद्दण्ड उपायों से रक्षा की आशा की जायगी तब तक संसार में न तो शान्ति हो सकती है और न सच्ची स्वतन्त्रता लोगों को मिल सकती है। अत्याचारों से छुटकारा केवल उन्हीं उपायों से मिल सकता है जिन्हें भगवान बुद्ध और हज़रत ईसा ने बतलाया है। वे उपाय यह हैं कि हम शान्त और उद्दण्डता रहित उपायों से अत्याचारों का विरोध करें और अत्याचारी सरकार के साथ किसी बात में सहयोग न दें।

यदि एक मनुष्य भी यह समझ ले कि जीवन का सच्चा उद्देश क्या है और यदि वह उसी के अनुसार अपना जीवन बनाये तो इसमें सन्देह नहीं कि उसके बाद दूसरा, तीसरा, चौथा, पांचवां और इस तरह से धीरे धीरे कुल मनुष्य उसका अनुकरण करने लगेंगे। इसी तरह से संसार का छुटकारा कपट-जाल से हो सकता है।

लोगों का यह ख्याल है कि इस तरह से कुल मनुष्यों की स्वतंत्रता बहुत ही धीरे धीरे प्राप्त होगी। उनका यह विचार है कि कोई ऐसा उपाय ढूँढ़ कर काम में लाना चाहिए जिससे कुल मनुष्य एकदम से स्वतंत्र हो जायं, पर यह असम्भव है। जब तक कि हरएक मनुष्य अलग अलग सत्य पर दृढ़ रह कर अपने जीवन को स्वतंत्र न बनाये तब तक न तो मनुष्य-जीवन की सच्ची स्वतंत्रता प्राप्त हो सकती है और न नवीन सामाजिक तथा राजनैतिक आदर्श स्थापित हो सकता है।

वर्त्तमान समय की एक बड़ी विचित्र बात यह है कि न सिर्फ़ सरकारें गुलामी का भाव लोगों में फैला रही हैं बल्कि साम्यवादी लोग भी अपने सिद्धान्तों का प्रचार कर के सर्वसाधारण को

परतन्त्रता की बेड़ी में जकड़ रहे हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि वे अपने को स्वतन्त्रता के हिमायतियों में समझते हैं! वे लोग इस सिद्धान्त का प्रचार करते हैं कि जीवन का सुधार हर एक आत्मा की अलग अलग कोशिश से नहीं हो सकता। उनके मत में जीवन का सुधार तभी हो सकता है जब समाज में भयंकर परिवर्तन होकर समाज आप ही आप ऊपर को उठ जाय। उनके सिद्धान्त का सारांश यह है कि ऊंचे स्थान पर चढ़ने के लिए मनुष्य को स्वयं अपना पैर उठाने की ज़रूरत नहीं है, बल्कि कोई चीज़ उसके पैर के नीचे रख दी जाय जिसमें कि वह बिना पर उठाये हुए ऊपर चढ़ सके। आश्चर्य है कि लोग इन सिद्धान्तों पर विश्वास करते हैं, पर उनके जीवन का कुलक्कम और आगे की ओर उनका हर एक पग इस बात को साबित करता है कि उनके सिद्धान्त कैसे ग़लत हैं।

लोगों पर अत्याचार होते हैं और इन अत्याचारों से बचने तथा अपनी हालत सुधारने के लिए उन्हें ऐसे उपाय बतलाये जाते हैं जो बिना अधिकारियों या सरकारी अफ़सरों की सहायता के नहीं किये जा सकते। हम उनकी सहायता लेकर या उनके साथ सहयोग करके उनकी शक्ति को और भी पुष्ट बनाते हैं। जिस मर्ज़ को हम दबा करना चाहते हैं उसे हम अपने कामों से और भी बढ़ाते हैं। जिस अत्याचार को हम दूर करना चाहते हैं उसे हम अपने कार्यों से और भी पुष्ट बना रहे हैं। हम चत्याचार को दूर करने के लिए अनेक नये नये उपाय काम में लाते हैं। पर जो बात सब से ज्यादा ज़रूरी है उसकी ओर हम कभी ध्यान भी नहीं देते। वह ज़रूरी बात यह है कि हम में से कोई भी उस काम को न करे जिससे अत्याचार उत्पन्न हो या उसमें सहायता मिलती हो।

इस से बढ़ कर आश्चर्य की बात और क्या हो सकती है कि हम इस बात को जानते हैं कि फ़लां क़ानून मानने और फ़ला काम करने से हम लोग गुलामी की ओर जाते हैं, तथापि हम उन क़ानूनों को मानते जाते हैं और उन कामों को करते जाते हैं। हम स्वयं अपने को गुलामी की ज़ञ्जीर से जकड़ते हैं। दुनिया में कोई ताक़त नहीं है जो हमें गुलाम बना सके यदि हम स्वयं अपने को गुलामी में न छोड़ें।

मैं एक मनुष्य का उदाहरण आप के सामने रखता हूं। वह अपना काम इमान्दारी के साथ करता है और जो कुछ कमाता है उससे अपना तथा अपने कुटुम्ब का पेट पालता है। वह अपने बाल-बच्चों को सुख देने का भरसक प्रयत्न करता है। वह हरएक प्रकार की गुलामी, अत्याचार और शत्रुता से घृणा करता है। वह अपना जीवन शान्ति के साथ बिताना चाहता है। उससे कहा जाता है कि देखो शपथ खा कर इस बात की प्रतिज्ञा करो कि जो कुछ तुम से कहा जायगा उसे तुम बिना सङ्कोच पूरा करोगे और जो क़ानून बनाया जायगा उसे तुम अक्षर अक्षर मानोगे; प्रतिज्ञा करो कि तुम अपनी आमदनी का एक हिस्सा हमारे सिपुर्द करोगे जिसे हम तुम्हारी गुलामी की ज़ञ्जीर और ज़्यादा मज़बूत करने में लगायेंगे; प्रतिज्ञा करो कि तुम सरकार के हरएक काम में मदद दोगे चाहे उससे तुम्हारी स्वतन्त्रता बनती हो या बिगड़ती; इन सबों के अलावा इस बात के लिए हमेशा तैयार रहो कि जब किसी दूसरे देश के लोगों से हमारी शत्रुता हो जाय तो उन्हें फ़ौरन अपना शत्रु समझने लगो चाहे वे तुम्हारे कितने ही मित्र क्यों न हों; देखो तुम से जब कहा जाय फ़ौरन उन्हें और उनके बेगुनाह बाल-बच्चों को क़त्ल करने और लूटने-पाटने के लिए हमेशा तैयार रहो।

हरएक सच्चा और इमान्दार आदमी जिसमें कुछ भी आत्मिक-बल होगा इसके उत्तर में यही कहेगा कि मुझे यह सब क्यों करना चाहिए? आज ज़ार कल क़ैसर, आज ग्लेडस्टन कल ऐस्क्विथ, आज एक वाइसराय कल दूसरे वाइसराय मुझे जो आज्ञा दें उसे मैं पूरा करने का वादा क्यों करूं? मैं टैक्स के रूप में उन्हें अपनी गाढ़ी मेहनत से पैदा किया हुआ धन क्यों दूं। जब हम यह जानते हैं कि वह धन अफ़सरों को रिश्वत देने, फ़ौज खड़ी करने और हमें गुलाम बनाने में ख़र्च किया जाता है; मैं उस सरकार की अदालतों, स्कूलों, कालिजों, कौंसिलों और पार्लियामेंटों से क्यों सहयोग करूं जब मैं जानता हूं कि वह सरकार मुझे गुलाम बनाये हुये है; मैं अदालतों में जाकर उनमें भाग क्यों लूँ जब मैं जानता हूं कि वहां प्रेम और क्षमा का भाव नहीं बल्कि बदला लेने का भाव सब के ऊपर रहता है और जब मैं यह जानता हूं कि जिन लोगों को अदालतों से सज़ायें मिलती हैं उनमें सज़ा की बदौलत कोई सुधार नहीं होता; मैं अधिकारियों के कहने से फ़ौज में भर्ती होकर उन दूसरे देश वालों के खून से अपना हाथ क्यों रंगू जिनसे मेरी कोई दुश्मनी नहीं है और जिनके साथ मैं अब तक शान्ति से रहता चला आया हूं, इसके अलावा मैं अपने भाइयों को गुलाम बनाये रखने में सरकार का साथ क्यों दूं। मुझे इन सब बातों की ज़रूरत नहीं है। मैं इन सब बातों को अपने और अपने भाइयों के लिए हानिकर समझता हूं। मैं संसार के हरएक देश के लोगों को अपना भाई समझता हूं। मैं उन्हें अपना शत्रु क्यों समझूं? सरकारें और कोई चीज़ नहीं केवल राजाओं, मंत्रियों और अफ़सरों का एक समूह हैं। वे उस काम को करने के लिए मुझे मजबूर नहीं कर सकतीं जिसे मैं बुरा समझता हूं। जो लोग मुझे अदालतों और जेलखानों

में ले जाते हैं वे राजा और उनके मंत्री नहीं हैं बल्कि वही लोग हैं जो मेरी जैसी हालत में हैं। अगर मैं सच्ची बातें बतला कर उनकी आंखें खोल दूं तो इस तरह के लोग मेरे साथ ज़बर्दस्ती कभी न करेंगे बल्कि वही काम करेंगे जो मैं करता हूं। अगर मुझे अपने स्वतन्त्र और सच्चे विचारों तथा कार्यों के लिए कष्ट सहना पड़े, जेल में जाना पड़े या फांसी पर चढ़ना पड़े तो यह और भी सौभाग्य की बात होगी। क्योंकि सोना जितना तपाया जाता है उतना ही खरा निकलता है; सच्चा आदमी जितना सताया जाता है उतनी ही उसकी नैतिक विजय होती है। अगर आज सत्य की विजय नहीं हाती तो कल ज़रूर होगी। असत्य का राज्य सदा स्थिर नहीं रह सकता; असत्य के राज में जिसे सहयोग देना हो दें मैं इसमें सहयोग नहीं दे सकता चाहे इसके लिए मुझे कितना ही कष्ट क्यों न उठाना पड़े?

जिस मनुष्य में कुछ भी सचाई है और जो थोड़ा भी अपनी आत्मा का ख्याल रखता है वह इसी तरह से कहेगा और इसी प्रकार आचरण करेगा।

कुछ लोग शायद यह कहेंगे कि अगर थोड़े से आदमियों ने लगान अदा करने, अदालत में जाने, वकालत करने और फ़ौज तथा पुलिस में भर्ती होने से इनकार कर दिया तो इससे होता ही क्या है। जो लोग ऐसा करेंगे वे सज़ा पायेंगे और संसार पहले की तरह चलता रहेगा। हां, देखने में तो यह कोई बड़ी भारी बात नहीं मालूम पड़ती, पर इसी तरह की बातें हैं जिन से राज्य की शक्ति जड़ से उच्छिन्न हो जाती है, यही बातें हैं जो मनुष्य को सच्ची स्वतन्त्रता के लिए तैयार करती हैं। सरकारें इस बात को अच्छी

तरह से जानती हैं और इसीलिए वे जितना इस बात से डरती हैं उतना बम, पिस्तोल, गुप्त-षड़यन्त्र और और अनार्किस्टों (अराजकवादियों) से नहीं डरतीं। दुनिया की सरकारों के लिए अनार्किस्ट और बम फेंकनेवाले इतने भयानक नहीं हैं जितने कि सत्याग्रही लोग हैं। सरकारें ख़ूनख़राबी, बलवा और लूट-पाट करनेवालों को दबा सकती हैं, पर उन लोगों का वह क्या कर सकती हैं जो सरकार से कोई वास्ता नहीं रखना चाहते, जो उसके साथ कोई ज़बर्दस्ती या धींगाधींगी नहीं करना चाहते, जो सरकार को टैक्स न देने, सरकार के क़ानून न मानने और फ़ौज में भर्ती न होने तथा इसी तरह की और भी बहुत सी बातों के न करने के लिए ख़ुशी से जेल जाने, फांसी पर चढ़ने और जलावतन होने के लिए हमेशा तैयार रहते हैं।

सत्याग्रही टैक्स देने से इनकार करता है क्योंकि जो रुपया टैक्स से इकट्ठा किया जाता है उसका अधिकतर भाग फ़ौज, पुलिस, लड़ाई, क़िले, तोप-बन्दूक़ इत्यादि नाशकारी वस्तुओं पर ख़र्च किया जाता है। सच्चा सत्याग्रही इन सब कामों में भाग लेना पाप समझता है। सत्याग्रही पुलिस में भर्ती होने से इनकार करता है क्योंकि पुलिसवालों को अपने भाइयों के साथ ज़बर्दस्ती करनी पड़ती है और अपने देशवासियों को सताना पड़ता है। सत्याग्रही अदालतों में किसी तरह का भी भाग लेना अस्वीकार करता है क्योंकि वहां क्षमा और दया के सिद्धान्त पर नहीं बल्कि बदला लेने के सिद्धान्त पर हरएक कार्रवाई की जाती है। सत्याग्रही फ़ौज में किसी तरह का हिस्सा लेने या किसी तरह की मदद देने से इनकार करता है क्योंकि वह यह नहीं चाहता कि अपने भाइयों के ख़ून से उस के हाथ रँगे जायं। जिन सिद्धान्तों के अनुसार सत्याग्रही इन सब

बातों में भाग लेने से इनकार करता है वह ऐसे सच्चे और पक्के हैं कि अत्याचारी से अत्याचारी सरकार भी खुले तौर पर सच्चे सत्याग्रही को सज़ा नहीं दे सकती। ऐसे लोगों के मुक़ाबले में बली से बली सरकार भी बिल्कुल तुच्छ पुच्छ है।

अगर सत्याग्रही लोग कोई ज़बर्दस्ती करने या खून-खराबी मचाने की शिक्षा देते अथवा स्वयं कोई बलका प्रयोग करते तो सरकारें आसानी से उन्हें दबा सकतीं। उनमें से कुछ रिश्वत देकर मिला लिए जाते, कुछ धोखेबाज़ी में आजाते और कुछ डरा धमका कर शान्त कर दिये जाते। इसके बाद जो लोग रिश्वत, धोखेबाज़ी या धमकी से भी वश में न आते वे समाज के शत्रु कहे जाकर या तो जेल में भेज दिये जाते या फांसी पर लटका दिये जाते। पर ऐसे आदमी को सरकार क्या कर सकती है जो न तो बलपूर्वक कोई काम करने की शिक्षा देता है और न स्वयं किसी के विरुद्ध बल का प्रयोग करता है। वह केवल सरकार से कोई संबंध नहीं रखना चाहता। वह सरकार को टैक्स नहीं अदा करता, सरकार की अदालतों में नहीं जाता, सरकार के मदरसों में अपने लड़कों को नहीं भेजता, और सरकार की पुलीस तथा फ़ौज में नहीं भर्ती होता। इसके लिए अगर सरकार उसे कोई सज़ा देती है तो वह खशी से सहने के लिए तैयार रहता है। ऐसे आदमी को सरकार रिश्वत देकर अपनी ओर नहीं मिला सकती और धमकी देकर या डर दिखला कर अपने वश में नहीं कर सकती। वह कष्ट से नहीं डरता, बल्कि कष्ट-सहन को वह अपने जीवन का एक आवश्यक अँग समझता है। वह जानता है कि शुद्ध भाव से जितना ही कष्ट सहन किया जायगा उतनी ही अधिक अत्मिक-उन्नति होगी, उसका यह विश्वास है कि हमें अत्याचार में प्रत्यक्ष

अथवा अप्रत्यक्ष रीति से शरीक न होना चाहिए। ऐसे लोगों को सरकार हमेशा ताले में बंद कर सकती है पर उनकी आत्मा जेल-खाने में भी स्वतन्त्र रहेगी। अगर सरकार उन्हें सूली पर चढ़ा दे तो उन के मत और सिद्धान्त का प्रचार और भी अधिक होगा। ईसा मसीह का उदाहरण इसके लिए सब से अच्छा है। उनके सूली पर चढ़ने से ही आज ईसाई-धर्म आधे संसार में फैला हुआ है।

संसार में सरकार की हालत एक ऐसी विजयी राजा या सेनापति की सी हो रही है जो उस शहर को जिसे उसने जीता है आग से बचाना चाहता है। उस शहर के लोगों ने स्वयं अपने हाथों से उसमें आग लगा दी है। वह विजयी राजा और सेना-पति ज्योंही एक जगह आग बुझाता है; वह ज्योंही किसी इमा-रत के एक ओर आग शान्त करता है त्योंही दूसरी ओर से आग की लपक उठने लगती है। पाठकगण, यह आग और कुछ नहीं केवल सत्याग्रह की आग है। यह सच है कि अभी यह आग एक्का-दुक्का लगी है, किन्तु एक बार लग जाने पर अब इसका बुझना असम्भव है। यही सत्याग्रह की आग कष्ट रूपी आंच में तपा कर हमें सच्ची स्वतन्त्रता के योग्य बनायेगी और इसी की बदौलत हम गुलामी से छुटकारा पायेंगे। यही सत्याग्रह सच्चे स्वराज्य का द्वार है। वह सच्चा स्वराज्य—वह ईश्वर का राज्य—तुम्हारे हृदय के अन्दर है। उसे अनुभव करो।

तृतीय खण्ड ।

धर्म और सदाचार ।
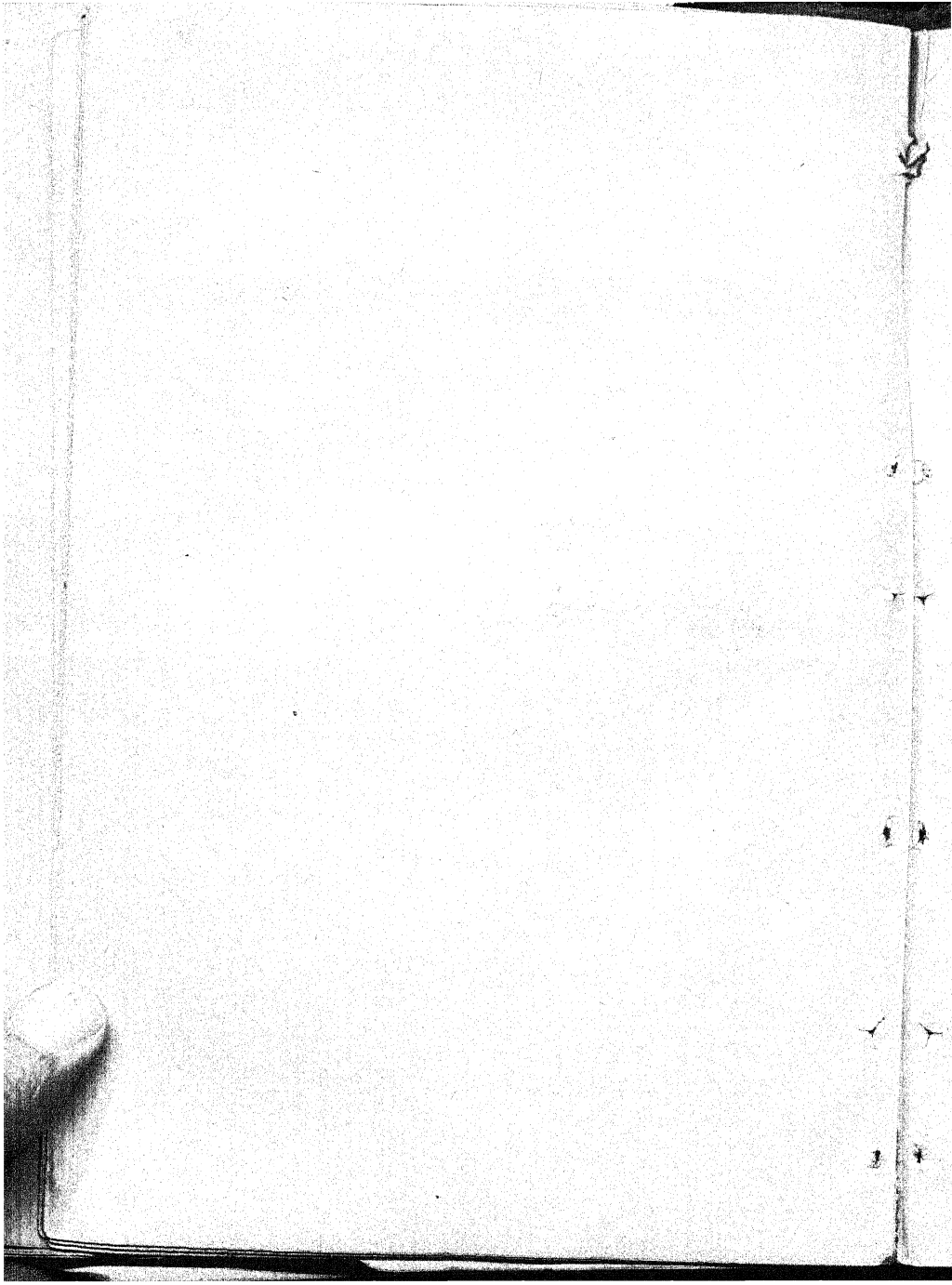
१—धार्मिक जीवन।

धार्मिक जीवन के लिए सब से जरूरी बात यह है कि हम अपने जीवन में अच्छे अच्छे गुणों को क्रम क्रम से धारण करें। संसार की समस्त महान् आत्माओं ने धार्मिक जीवन के लिए किसी न किसी क्रम के अनुसार सद्गुणों का प्राप्त करना आवश्यक बतलाया है। प्रत्येक धर्म में स्वर्ग की प्राप्ति के लिए क्रमानुसार उन्नति आवश्यक मानी गई है। चीनी लोगों का कथन है कि स्वर्ग की सीढ़ी का एक पाया ज़मीन पर है और दूसरा स्वर्ग में। यदि कोई स्वर्ग प्राप्त करना चाहता है तो उसके लिए सबसे नीचे वाले डंडे पर क़दम रखना आवश्यक है। हिन्दू धर्म, बौद्ध धर्म, ईसाई धर्म और यूनान के महापुरुषों ने सद्गुणों में भी उत्तमता और मध्यमता मानी है और यह सिद्ध किया है कि जबतक मनुष्य नीचे दर्जे के सद्गुणों का पात्र नहीं हो जाता तबतक उसके लिए उच्च सद्गुणों का धारण करना असम्भव है। संसार की महान् आत्माओं और धर्म के चलानेवालों ने यह स्वीकार किया है कि धार्मिक जीवन व्यतीत करने के लिए क्रम के अनुसार सद्गुणों को अपने जीवन में धारण करना परम आवश्यक है।

किन्तु आश्चर्य्य की बात है कि आजकल अच्छे अच्छे गुणों को क्रमानुसार धारण करने और अच्छे २ कर्म करने की आवश्यकता को लोग भूल गये हैं। सच्चे फ़क़ीरों और साधुओं को छोड़ कर कोई भी इस आवश्यकता को अपने जीवन में महसूस नहीं करता। सांसारिक लोग तो यहांतक मानते हैं कि अनेक

दुर्गुणों के मौजूद होते हुए भी मनुष्य ऊँचे से ऊँचे सद्गुणों को प्राप्त कर सकता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि धार्मिक जीवन के संबंध में अधिकांश सांसारिक लोगों में भिन्न भिन्न विचार पाये जाते हैं और हम लोग यह भूल गये हैं कि धार्मिक जीवन क्या है।

लोगों का यह विचार है कि आत्मिक उन्नति के लिए शारीरिक प्रयत्नों की कोई आवश्यकता नहीं। अर्थात् आत्मिक-उन्नति के लिए अन्य मार्ग मौजूद हैं। इसी कारण सद्गुणों के प्राप्त करने का प्रयत्न लोगों में कम हो गया है और धार्मिक जीवन के लिए आवश्यक सद्गुणों को क्रमानुसार प्राप्त करने का मार्ग लोग भूल गये हैं। लोगों ने आत्मत्याग की शिक्षा दिये बिना मनुष्य-सेवा और ईश्वर-भक्ति का उपदेश देना शुरू कर दिया और इन्द्रिय-निग्रह तथा आत्म-संयम की शिक्षा दिये बिना धर्म का उपदेश आरंभ कर दिया। परिणाम यह हुआ कि लोगों में सद्गुणों का संचय न हो सका। आजकल लोग यह कहते हुये दिखलाई पड़ते हैं कि मनुष्य चाहे आत्मसंयम या इन्द्रिय-निग्रह करे या न करे, वह संसार तथा मनुष्यमात्र की सेवा कर सकता है। इस उपदेश के सहारे मनुष्य अपनी पाशविक प्रवृत्तियों को क़ायम रखते हुये धार्मिक होने का दावा कर सकता है और प्रारंभिक कर्तव्यों के करने से छुटकारा पा जाता है। इसलिए इस उपदेश को लोग बहुत जल्द स्वीकार कर लेते हैं। यद्यपि धर्म-ग्रन्थों में ऐसे स्पष्ट वाक्य मौजूद हैं कि बिना त्याग के धार्मिक-जीवन का व्यतीत करना असंभव है तथापि लोगों का यह विश्वास है कि हम बिना अपनी आदतों और सुखों को त्यागे मनुष्य की सेवा कर सकते हैं। उनका यह विचार है कि अपनी आवश्यक-

ताओं को कम किये बिना और अपने मन तथा इन्द्रियों को वश में लाए बिना हम धार्मिकजीवन व्यतीत कर सकते हैं।

पुराने ज़माने में यह आवश्यक समझा जाता था कि त्याग और इन्द्रिय-निग्रह के बाद ही मनुष्य अन्य गुणों का पात्र हो सकता है। उस ज़माने में यह बात साफ़ थी कि ऐसा आदमी जो अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं रखता, जिसने अपने हृदय को सहस्रों व्यसन-पूर्ण प्रवृत्तियों से कलुषित कर रक्खा है और जो उन सब व्यसनों का उपभोग करता हुआ अपने जीवन को नष्ट करता है— वह धार्मिक जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। उस ज़माने में यह बात स्पष्ट थी कि उदारता, सेवा, भक्ति, न्यायपरायणता इत्यादि का विचार तक हृदय में लाने के पहले मनुष्य को इन्द्रिय-निग्रह और आत्म-संयम के गुणों को अपने जीवन में लाना बहुत ज़रूरी है।

किन्तु आजकल के लोगों का मत है कि इस क़िस्म की किसी भी बात की आवश्यकता नहीं है। इन लोगों का यह दृढ़ विश्वास हो गया है कि वह आदमी भी जिसने अपने व्यसनों को पराकाष्ठा तक पहुंचा दिया है और जो ऐशो-आराम में मस्त रहता है, अच्छी तरह धार्मिक जीवन व्यतीत कर सकता है। आजकल के लोगों का तथा आजकल की शिक्षा का यह परम सिद्धान्त है कि अपनी आवश्यकताओं को बढ़ाना पाप नहीं बल्कि इसके विपरीत एक अच्छी बात है और उन्नति, सभ्यता, तथा योग्यता का चिन्ह है। अपने आप को सभ्य कहनेवाले लोग ऐशो-आराम की ज़िन्दगी को हानिकर नहीं समझते बल्कि बहुत लाभदायक मानते हैं और यह कहते हैं कि आवश्यकताओं के बढ़ने से मनुष्य की उन्नति का पता

चलता है। जिसकी आवश्यकतायें जितनी ही ज़्यादा हों वह आदमी उतना ही बेहतर समझा जाता है।

यदि हम इस बात को देखें कि इस ज़माने के लोग अपने बच्चों का पालन-पोषण किस तरह करते हैं तो हमें अच्छी तरह सिद्ध हो जायगा कि आजकल के लोग इस बात को नहीं मानते कि त्याग और आत्म-संयम अच्छे और प्रशंसनीय गुण हैं। उनका मत तो यह है कि अपनी आवश्यकतायें जितनी बढ़ाई जायें उतना ही अच्छा है। अपने बच्चों को हम आत्म-संयम, त्याग और इन्द्रिय-निग्रह की शिक्षा नहीं देते, हम उन्हें नाज़ुक, काहिल और व्यसनी बनने की शिक्षा देते हैं। इस सम्बन्ध में आपको एक कहानी सुनाता हूं :—

दो स्त्रियां थीं। उनमें से एक ने दूसरी का अपमान किया। अपमानित स्त्री ने उससे बदला लेना चाहा। इसलिए उसने उसके इकलौते बच्चे को चुरा लिया और एक जादूगरनी के पास जा कर यह पूछा कि कोई ऐसी तरकीब है जिससे मैं इस चुराए हुये इकलौते बच्चे द्वारा इसकी माता से पूरा पूरा बदला ले सकूँ। जादूगरनी ने कहा इस बच्चे को अमुक स्थान पर ले जाओ, वहां पहुंच कर तुम इस बच्चे के द्वारा अपने शत्रु से पूरा पूरा बदला ले सकोगी। वह स्त्री वहीं गई लेकिन देखती क्या है कि उस बच्चे को एक सन्तान-हीन धनी आदमी ने गोद ले लिया। इस पर उस औरत ने जादूगरनी के पास जा कर खूब भला बुरा कहा लेकिन जादूगरनी ने कहा धीरज रक्खो घबड़ाने की कोई बात नहीं है। वह बच्चा अपने धनी पिता के यहां बहुत लाड़-प्यार के साथ पलता रहा। इसको देख कर वह औरत बहुत परेशान हुई, किन्तु जादूगरनी ने फिर वही राय दी।

अन्त में वह समय आया जब उस औरत को पूरा सन्तोष हो गया और वह अपने शत्रु से काफ़ी बदला ले सकी। क्योंकि वह लड़का जो नाज़ व नज़ाकत के साथ पाला गया था ऐशो-आराम में पड़ कर धीरे धीरे चरित्र-हीन हो गया। उसे शारीरिक कष्टों के सहने पर विवश होना पड़ा और उसे ज़िल्लत और नीचता का सामना करना पड़ा। उसने अपने चरित्र के सुधारने का बड़ा प्रयत्न किया किन्तु व्यसन और आलस्य से दूषित उसके नाज़ुक शरीर में इतनी शक्ति ही नहीं बाक़ी थी। वह दिन पर दिन गिरता गया, उस की शराब बढ़ती गई, वह अपने को भूल गया, निन्दनीय पापों का अपराधी हुआ और अन्त में पागल हो कर उसने आत्म-हत्या कर ली।

यदि हम आजकल के कुछ बच्चों की शिक्षा पर नज़र डालें तो वास्तव में हमारे रोंगटे खड़े हो जायँगे। कट्टर से कट्टर दुश्मन के बच्चों के हृदय में भी कोई इस तरह से कमज़ोरी और पाप का बाक़ायदा संचार न करेगा जैसा कि आजकल के माता-पिता और विशेष कर मातायें अपने बच्चों के हृदयों में करती हैं। बच्चे जब अपने धार्मिक उपदेशों से बिल्कुल अनभिज्ञ होते हैं उस समय उन्हें नज़ाकत और शौक़ीनी से रहना सिखाया जाता है, उनमें आत्म-संयम और इन्द्रियों को अपने वश में रखने की आदत बिल्कुल ही नहीं डाली जाती। उन्हें मेहनत करना नहीं सिखाया जाता, फ़ायदे-मन्द काम करने की तालीम नहीं दी जाती, एकाग्र-चित्त होना, दृढ़ रहना, बिगड़े हुए काम को बनाना, थकने की आदत डालना यह सब उन्हें नहीं सिखाया जाता। उन्हें सिखाया क्या जाता है कि तुम काहिली के साथ अपनी ज़िन्दगी बिताओ और दूसरों की मेह-नत से बनी हुई चीज़ों को बरबाद करो। रुपया दे कर वह चीज़ों

को खरीदता है और फिर उन्हें नाश करता है। उसे यह ज़रा भी सङ्कोच नहीं होता कि इन चीज़ों के बनने में कितनी मेहनत लगी होगी। उनकी उस शक्ति का अपहरण कर लिया जाता है जिससे वे उत्तम सद्गुणों को प्राप्त कर सकते थे। वे विचार-शक्ति से वंचित हो जाते हैं। ऐसी हालत में मनुष्य को सब चीज़ें उचित मालूम होने लगती हैं और वह अपने कर्तव्य-पथ से अनभिज्ञ रहता हुआ मृत्यु-पर्यन्त किसी तरह जीवित रहता है।

काम के वशीभूत होते हुए और कामातुर जीवन व्यतीत करते हुए धार्मिक, प्रेममय, न्यायपूर्ण और लाभदायक जीवन व्यतीत करने का दावा इतना ग़लत है कि आगे आनेवाले लोग हम पर हसेंगे और कहेंगे कि यह किस क़िस्म के आदमी थे जो यह मानते थे कि स्वादासक्त, नाज़ुक और कामातुर मनुष्य भी दुनिया की भलाई कर सकता है। यदि हम धार्मिक दृष्टि को छोड़दें और केवल साधारण न्याय और नीति की दृष्टि से देखें तो हमें पता लगेगा कि ऐसे आदमी से किसी प्रकार की भलाई की आशा करना फ़जूल है। हमारी वर्त्तमान समाज के प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि यदि वह नवीन जीवन आरम्भ करना चाहता है या नवीन जीवन में प्रवेश करने की इच्छा रखता है तो उसे चाहिए कि वह उन सब कारणों का नाश करना आरम्भ कर दे जिनके द्वारा मनुष्य जीवन दुर्व्यसनी बन जाता है।

लोगों से जब यह कहा जाता है कि तुम अपने पापमय जीवन को बदल दो तो वे अक्सर यह जवाब दिया करते हैं कि मौजूदा हालत में ज़िन्दगी को तब्दील करना बहुत ही अस्वाभाविक और हास्य-जनक होगा। लोग समझेंगे यह आदमी असा-

धारण बनना चाहता है और अपना नाम चाहता है। इसीलिए यह अपने जीवन को तबदील कर रहा है। यह बात इसलिए कही जाती है कि लोग अपने जीवन में परिवर्त्तन न करें। यदि हमारा जीवन शुद्ध और पवित्र होता तो हमारी समाज में जो काम किया जाता वह भी शुद्ध और पवित्र होता। किन्तु जब हमारा व्यक्तिगत जीवन आधा अच्छा है और आधा बुरा तो सामाजिक रीति के अनुसार किये हुए काम भी आधे अच्छे और आधे बुरे होंगे, किन्तु यदि हमारा सम्पूर्ण जीवन पापमय और बे-क़ायदे हो रहा है तो जब तक हम उस पापमय जीवनमार्ग को नहीं छोड़ते तब तक हमसे किसी क़िस्म की भलाई का होना असम्भव है।

मनुष्य उस समय तक धार्मिक और उपकारी जीवन कदापि व्यतीत नहीं कर सकता जब तक कि वह उन बुराइयों को न छोड़ दे जिनके अन्दर वह पला हुआ है। वह भलाई तब तक नहीं कर सकता जब तक उसने बुराई करना नहीं छोड़ा है। जो आदमी ऐशो-आराम में अपनी ज़िन्दगी बिताता है उससे किसी भी भले काम का होना असंभव है। यदि वह संसार के साथ भलाई करने की कोशिश भी करेगा तो उसके प्रयत्न व्यर्थ होंगे। सफलता उसको उसी समय हो सकती है जब वह अपनी ज़िन्दगी को तबदील कर दे और वह काम शुरू करे जो उसके लिए सब से पहले करना आवश्यक है। हरएक धर्म के अनुसार भी धार्मिक और उपकारी जीवन का अन्दाज़ा इस बात से लगाया जाता है कि अमुक मनुष्य के जीवन में स्वार्थ और परोपकार कितना कितना पाया जाता है। जितना ही कम स्वार्थ किसी के जीवन में पाया जाय, जितना ही कम मनुष्य अपनी परवाह करे तथा जितनी ही ज़्यादा वह दूसरों की परवाह करे और जितनी ही वह उनकी सेवा के

लिए कोशिश करे उसका जीवन उतना ही उच्च है।

संसार के महा पुरुषों ने धार्मिक और उपकारी जीवन के यही माने समझे हैं और साधारण से साधारण आदमी भी धार्मिक और उपकारी जीवन के यही माने आजतक समझते हैं। जितनी ही अधिक मनुष्य दूसरों की सेवा करे, जितनी ही कम वह अपनी सेवा करावे वह उतना ही भला आदमी है। जितनी ही अधिक वह और से अपनी सेवा कराता है और जितनी ही कम वह दूसरों की सेवा करता है वह उतना ही बुरा आदमी है।

यदि वास्तव में हम दूसरों की सेवा और दूसरों के साथ प्रेम करना चाहते हैं तो हमें दूसरों से अपनी सेवा करानी तथा अपने से प्रेम करना छोड़ देना चाहिए। हम कहा तो करते हैं कि हम दूसरों का हित तथा सेवा करते हैं और अपने हृदय में इस बात का दृढ़ विश्वास भी कर लेते हैं, किन्तु असल बात यह है कि हम दूसरों के साथ केवल ज़बानी प्रेम रखते हैं और वास्तव में प्रेम हमें अपने स्वार्थ से होता है। हम दूसरों को खाना खिलाना भूल जाते हैं, किन्तु स्वयं भोजन करना कभी भी नहीं भूलते। इसलिए यदि हम वास्तव में दूसरों की सेवा करना चाहते हैं तो हमें यह सीखना चाहिए कि दूसरों के हित और सेवा के लिए अपना खाना और सोना कैसे भूलना होता है।

आजकल हम "धार्मिक और उपकारी जीवन" व्यतीत करनेवाला तथा "भला आदमी" उसे कहते हैं जो ऐशो-आराम में नाज़ुक और ज़नानी ज़िन्दगी बिताता। लेकिन सच तो यह है कि इस प्रकार जीवन व्यतीत करनेवाला मनुष्य बड़े अच्छे चरित्र का हा सकता है, नरम हो मकता है, दयालु हो सकता है, किन्तु धार्मिक जीवन कदापि व्यतीत नहीं कर सकता। जैसे वह

चाक़ू जो तेज़ नहीं किया गया है, अच्छे से अच्छे लोहे का तथा अच्छे से अच्छे कारीगर द्वारा बने होने पर भी, काट नहीं सकता। धार्मिक जीवन व्यतीत करने तथा भला आदमी बनने के लिए यह आवश्यक है कि हम दूसरों की अधिक सेवा करें और दूसरों से उसके मुक़ाबिले में कम सेवा लें। लेकिन ऐशो-आराम का आदी नाज़ुक आदमी ऐसा नहीं कर सकता, क्योंकि पहली बात तो यह है कि उसे स्वयं ही अपनी बहुत ही आवश्यकतायें रहती हैं, दूसरी बात यह है कि दूसरों से सेवा ले ले कर वह स्वयं ही अपनी आत्मा को निर्बल कर लेता है और काम करने की योग्यता से वंचित हो जाता है। इसलिए वह दूसरों की सेवा नहीं कर सकता। जो आदमी मुलायम गद्दों पर बड़ी देर तक सोया करता है, घी, दूध और मलाई खाता है, नाना प्रकार की मिठाई का इस्तेमाल करता है, खूब शराब भी पीता है, जाड़ों में गर्म और गर्मियों में ठंढे कपड़े आवश्यकतानुसार मज़े में पहिनता है और मेहनत करने का आदी नहीं है, उससे दुनिया में कुछ नहीं हो सकता।

आजकल भला या उपकारी कहलानेवाला पुरुष मुलायम गद्दों पर सोता है, उसके कमरे में और उसके पलंग के नीचे चटाइयां बिछी रहती हैं, जिसमें कि बिस्तर से उतरने पर उसे सरदी न लग जाय। उसके कमरे में सब ज़रूरी चीज़ें भी मौजूद रहती हैं जिसमें कि उसे बाहर न जाना पड़े। खिड़कियों पर चिकें पड़ी रहती हैं जिसमें कि सुबह की रोशनी उसे न जगा सके। वह सोया करता है और उसके मुंह धोने तथा उसके नहाने के लिए गर्म या ठंढा पानी तयार हुआ करता है। चाय, काफ़ी, या और कोई चीज़ उसके पीनेके लिए बनाई जाती है जिसे वह उठते ही

पोता है। उसके छोटे बड़े अनेक जोड़े जूते जिन्हें उसने कल पहन कर मैले कर डाले हैं साफ़ हुआ करते हैं, यहां तक कि वे शीशे के समान चमकने लगते हैं। उसके लिए खूब साफ़ और स्त्री किया हुआ कपड़ा तैयार किया जाता है जिसमें अनेक क़मीज़ के बटन, कफ़ के बटन लगे रहते हैं और इनकी देख-भाल के लिए अनेक आदमी मुक़र्रर रहते हैं।

वह उठ कर मुँह हाथ धोता है, बदन साफ़ करता है, बाल सँवारता है जिसमें अनेक कङ्घियां और ब्रश काम में आते हैं। नहाते वक्त वह पानी और साबुन बहुत ज्यादा इस्तेमाल करता है। इसके बाद वह कपड़ा पहिनता है और एक शीशे के सामने जा कर बालों में कङ्घी करता है। इस के बाद वह किसी गाड़ी पर बैठ कर अपने दफ़्तर या अपने काम पर जाता है।

इस प्रकार जीवन व्यतीत करनेवाले आदमी को, अगर उस का चाल-चलन बहुत बुरा न हो और उसकी आदत ऐसी न हो जिस से लोगों को बहुत ज्यादा कष्ट पहुंचे, लोग भला आदमी कहते हैं। लोग कहते हैं कि इस आदमी की ज़िन्दगी अच्छी है; लेकिन अच्छी ज़िन्दगी तो उसकी है जो दूसरों के साथ अच्छाई करे। जो आदमी इस तरह रहता हो और जिसकी ज़िन्दगी इस तरह गुज़रती हो वह मनुष्यमात्र का हित कैसे कर सकता है। मनुष्यमात्र का हित करने के पहले उसे मनुष्यमात्र के साथ अहित करना छोड़ना चाहिए। अगर उन सब पापों का ख़याल किया जाय जो वह हर रोज़ बिना जाने लोगों के साथ किया करता है तो मालूम होगा कि ऐसा आदमी मनुष्यमात्र का कोई हित नहीं कर सकता और यदि वह अपने हानिकर कामों के अहितकर परिणामों को मिटाना चाहे तो उसे बहुत प्रायश्चित करना होगा। किन्तु वास्त-

विक बात तो यह है कि जिसकी आत्मा कामातुर और ऐशो-आराम के जीवन से निर्बल हो गई है वह कोई भी अच्छा काम करने के योग्य नहीं है। इसलिए मनुष्य दूसरों का हित तभी कर सकता है या धार्मिक-जीवन तभी व्यतीत कर सकता है जब वह अपनी ऐशो-आराम की ज़िन्दगी को त्याग कर साधारण जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ करे।

अगर तम्बाकू के कारख़ाने में काम करनेवाले लोगों पर किसी को दया आती है तो उसका पहला काम यह होना चाहिए कि वह तम्बाकू पीना छोड़ दे; क्योंकि जब तक वह तम्बाकू पीता रहेगा या ख़रीदता रहेगा तब तक तम्बाकू बनानेवालों को उत्साह मिलता रहेगा। उन लोगों के स्वास्थ्य का नाश होता रहेगा।

लेकिन आजकल के आदमी इस तरह विचार नहीं करते। उनका मत है कि व्यसन की चीज़ों को छोड़ने की आवश्यकता नहीं। मज़दूरों की हालत पर सहानुभूति प्रकट कर देना, मज़दूरों के पक्ष में व्याख्यान दे देना और किताब लिख डालना ही काफ़ी है चाहे उनकी मेहनत से पदा की हुई चीज़ों का इस्तेमाल वे जारी ही रक्खें।

कुछ मनुष्यों का कथन है कि दूसरों के हानिकर श्रम से पैदा हुई चीज़ों का इस्तेमाल उचित है क्योंकि अगर हम उनका इस्तेमाल न करेंगे तो दूसरे लोग करेंगे। यह कहना वैसा ही है जैसा कोई कहे कि शराब का पीना ज़रूरी है क्योंकि अगर हम न पियेंगे तो दूसरा कोई ज़रूर पियेगा।

कुछ आदमियों का कहना है कि व्यसन की चीज़ों का इस्तेमाल करना उन चीज़ों के बनानेवालों के लिए हितकर है क्योंकि इस तरह उन मज़दूरों को धन प्राप्त होता है और इससे वह अपना

जीवन निर्वाह कर सकते हैं। इससे यह मालूम होता है कि जब तक ये लोग उन चीज़ों को न बनायें तब तक वे ज़िन्दा नहीं रह सकते। लोगों में इस तरह के विचार इसलिए फैले हुए हैं कि उन्हें यह विश्वास हो गया है कि धार्मिक-जीवन के प्रथम और परमावश्यक गुण को प्राप्त किये बिना ही मनुष्य धार्मिक जीवन व्यतीत कर सकता है। धार्मिक-जीवन का वह प्रथम और परमावश्यक गुण त्याग है।

त्याग के बिना धार्मिक-जीवन न कभी हुआ है और न हो सकता है। धार्मिक-जीवन में त्याग ही द्वारा उन्नति हो सकती है। धार्मिक-जीवन में एक प्रकार की सीढ़ी पाई जाती है, इसलिए यदि हम ऊंचा उठना चाहते हैं तो हमें सीढ़ी के पहले ही डण्डे पर क़दम रखना पड़ेगा। वह पहला गुण, जिसे मनुष्य को प्राप्त करना चाहिए और जिसे प्राप्त किये बिना अन्य गुणों का प्राप्त करना असम्भव है, आत्म-संयम और इन्द्रिय-निग्रह है। आत्म-संयम में त्याग भी शामिल है इसलिए बिना त्याग के आत्म-संयम असम्भव है। पर त्याग भी एकदम से प्राप्त नहीं हो सकता। वह भी क्रमशः प्राप्त होता है।

त्याग का अर्थ यह है कि मनुष्य इन्द्रियों की प्रवृत्तियों से स्वतन्त्र हो कर अपनी मानसिक बासनाओं को बुद्धि के आधीन कर दे किन्तु मनुष्य में अनेक वासनायें पाई जाती हैं, उन सब वासनाओं पर विजय पाने के लिए पहले मूल वासनाओं पर क़ब्ज़ा करना सीखना चाहिए जिनके कारण मनुष्य में अन्य प्रबल वासनायें पैदा हो जाती हैं। उचित से अधिक आहार, आलस्य, काम, क्रोध इत्यादि मूल वासनायें हैं। किस वासना पर पहिले

क़ब्ज़ा करना चाहिए और किन वासनाओं पर बाद को यह वासनाओं की प्रकृति पर निर्भर है।

प्रत्येक धर्म के अनुसार त्याग की पहली सीढ़ी जिह्वा को अपने वश में करना अर्थात् उपवास रखना है। किन्तु आजकल हमारे समाज में त्याग भी अनावश्यक समझा जाने लगा है। इसी के साथ ही साथ लोग उपवास करने की इस आवश्यकता को भी भूल गये हैं और उन्हाने यह निश्चय कर लिया है कि उपवास करना मूर्खता, अन्ध-विश्वास और बिल्कुल व्यर्थ है। किन्तु वास्तव में जैसे धार्मिक-जीवन की पहली शर्त त्याग है वैसे ही त्यागपूर्ण जीवन की पहली शर्त उपवास है। जैसे बिना खड़े हुए टहलना असम्भव है वैसे ही उपवास किए बिना सदाचारी होना भी असम्भव है। मैं तो यह कहता हूं कि खूब खाना दुराचारी जीवन का एक अङ्ग रहा है। अभाग्यवश इस दुर्गुण का आजकल के अधिकांश लोगों पर बहुत प्रभाव पड़ता है।

आजकल के लोगों के चेहरे की ओर देखिये कि उनके लटकते हुए गाल और ठुड्डी पर, मोटे ताज़े हाथों पर आप को इस बात के चिन्ह दिखाई देंगे कि लोग कितना अधिक भोजन करते हैं। अपनी ही जिन्दगी की ओर देखिये और इस बात पर ग़ौर कीजिए कि अधिकांश लोग इस नियत से काम करते हैं। ग़ौर करने से आपको मालूम होगा कि आजकल के अधिकांश लोगों का जीवनोद्देश जिह्वा की वासना को सन्तुष्ट करना अर्थात् स्वाद का सुख प्राप्त करना है। ग़रीब से ग़रीब और अमीर से अमीर सब का मुख्य उद्देश्य पेट भरना ही हो रहा है।

शिक्षित आदमियों की जिन्दगी को ओर नज़र डालिए और यह देखिए कि वे किन किन गम्भीर विषयों पर बात करते हैं।

वे लोग दर्शन, विज्ञान, शिल्पकला, काव्य, साहित्य, लोकहित, शिक्षा इत्यादि विषयों पर बातें करेंगे पर वास्तव में इनकी सब बातें बे-माने हैं। इन विषयों पर वे लोग उसी समय बातें करते हैं जब वे अपने असली काम से अर्थात् खाने पीने से फ़ारिग़ हो जाते हैं, जब उनका पेट खूब भरा रहता है और पेट में इतनी जगह नहीं रहती कि कुछ और खाया जा सके।

कोई भी रसम हो; कोई भी खुशी पड़े, कोई भी संस्कार हो सभी में खाना पहली बात है। जिस समय लोग खाना खाने को आते हैं इस समय उनकी ओर देखिये कैसे अच्छे अच्छे कपड़े पहिने रहते हैं, इतर लगाये रहते हैं और खाने को देखकर मुस्कराते हैं और हाथ मलते हैं। अगर आप आदमियों की आत्मा को देखिए, उनकी हार्दिक अभिलाषा क्या होती है? खाने पीने की। लड़कों को सब से भारी सज़ा क्या दी जाती है? यही कि तुम्हें सिर्फ़ रोटी दाल खाने को मिलेगी। घर की स्त्रियों का मुख्य काम क्या है? खाना पकाना। मध्यम श्रेणी की स्त्रियां किस विषय पर अधिकतर बातें करती हैं? भोजन के बारे में।

चाहे जो काम हो, चाहे यज्ञोपवीत हो या विवाह हो, या कोई मर गया हो, किसी मंदिर की स्थापना हो, विदाई हो, आगमन हो या किसी महान् पुरुष का जन्मदिन हो, लोग इकट्ठा होते हैं और कहते हैं कि हम लोग बड़ा गम्भीर काम करने के लिए आये हैं, किन्तु उनका सिर्फ़ यह कहना ही कहना है। क्योंकि वे जानते हैं कि इन अवसरों पर उन्हें कुछ न कुछ स्वादिष्ट और अच्छा खाने पीने को मिलेगा। और इसीलिए वे इकट्ठा होते हैं। ऐसे अवसर के कई दिन पहले से दावत का इन्तिज़ाम शुरू हो जाता है।

अगर किसी आदमी ने अपने आप को स्वाद का गुलाम बना

लिया है, यदि वह स्वाद के आनन्द के वशीभूत हो गया है तो फिर वह किसी काम का नहीं रह सकता। स्वाद की वासना को बढ़ाते जाइए और वह बे-हद बढ़ती जायगी। आवश्यकता को मिटाने की एक हद हो सकती है किन्तु अनान्द और भोग की इच्छा को कोई हद नहीं। भूख की आवश्यकता को मिटाने के लिए सिर्फ़ इतना काफ़ी है कि रोटी, दाल, चावल खा लिया जाय किन्तु स्वाद के सन्तोष के लिए अगर मसालेदार और स्वादिष्ट भोजन के लाखों व्यञ्जन तैयार कराइये तो भी कम हैं।

सदाचारी जीवन की पहली शर्त उपवास करना है। किन्तु प्रश्न यह है कि उपवास कब और कितनी देर रक्खा जाय, क्या खाया जाय और क्या न खाया जाय और उपवास करने के लिए पहले पहल क्या छोड़ा जाय। जिस तरह से इस बात को बिना जाने हुए कि अमुक काम की सिद्धि के लिए किस क्रम से काम करना चाहिए उस काम का करना असंभव है उसी तरह से उपबास करना भी उसी समय तक असम्भव है जब तक हम यह न जान लें कि उपवास के लिए पहले किस काम का करना ज़रूरी है।

हमारे भोजन में इतनी असभ्य और पापमय बस्तुयें घुस गई हैं और इस पर इतने कम आदमियों ने विचार किया है कि हमारे लिए यह समझ सकना भी असंभव हो रहा है कि मांस-भोजन् करनेवाला मनुष्य धार्मिक या सदाचारी कभी भी नहीं हो सकता। लोगों में यह ग़लत ख्याल फैला हुआ है कि हम मांस भोजन करते हुए और स्वादिष्ट खाना खाते हुए भी उपकारी और सदाचारी बनें रह सकते हैं।

उस दिन मैं अपने टला नगर के "स्लाटर-हाउस" को अर्थात्

उस मकान को देखने गया था जिसमें खाने के लिए पशु मारे जाते हैं।

यह "स्लाटरहाउस" नवीन ढंग का बना हुवा है जैसा कि प्रायः बड़े २ शहरों में बना रहता है। इस "स्लाटरहाउस" में मारे जानेवाले जानवरों को कम से कम तकलीफ़ होने का प्रबंध है। मैं त्यौहार के दो रोज़ पहले वहां गया था इसलिए वहां पशुओं की संख्या बहुत ज़्यादा थी। उस नगर में मुझे मेरे एक जान पहिचान के आदमी मिल गये। मैं उनको अपने साथ ले कर "स्लाटरहाउस" का निरीक्षण करने चला। मेरे साथी ने कहा, "मैंने सुना है यह स्लाटर-हाउस बहुत अच्छा है और यहां का प्रबंध भी उत्तम है किन्तु यहां पर यदि जानवर मारे जा रहे होंगे तो मैं न जाऊंगा।" मैंने पूछा क्यों, मैं तो यही देखने के लिए आया हूं, अगर आप गोश्त खायें गे तो जानवर ज़रूर ही मारे जायंगे। मेरे साथी ने कहा, "नहीं मैं न जाऊँगा।" मुझे सबसे अधिक आश्चर्य इस बात पर हुआ कि यह आदमी स्वयं शिकारी था और चिड़िया तथा जानवर को मारा करता था, पर स्लाटर-हाउस के अन्दर जाने और हलाल किये जाते हुए जानवरों के देखने से उसे इनकार था।

हमलोग क़साईख़ाने में ठीक समय पर पहुंचे। उस मकान के सामने वाली सड़क में गाड़ियां खड़ी थीं जिनमें गाय, बैल और भैंसे जुते थे। क़साइयों की गाड़ियां जिन पर ज़िन्दा बछड़े लदे थे क़साईख़ानें में लाई जाती थीं और ख़ाली कर दी जाती थीं। इसी प्रकार और गाड़ियां जिनपर मरे बैलों की उलटी पुलटी कांपती हुई टागें, सिर, फेफड़े और जिगर लदे हुए थे क़साईख़ाने से बाहर जा रही थीं। आज इस समय तक लग-भग सौ बछड़े मारे जा

चुके थे। मैं एक कमरे में घुसा लेकिन दरवाज़े पर रुक गया।

मेरे रुक जाने का कारण यह था कि एक तो मांस से भरी हुई गाड़ियां दरवाज़े से जा रही थीं, दूसरे ज़मीन पर खून की नदी बह रही थी। जो क़साई वहां पर थे, खून में भरे हुए थे। यदि मैं भीतर जाता तो मैं भी अवश्य खून से भर जाता। इस समय एक ताज़े मारे गये बैल की लाश उतारी जा रही थी और दूसरे दरवाज़े की ओर ले जाई जा रही थी। उसी समय मेरे सामनेवाले दरवाज़े से कुछ क़साई एक बड़ा लाल और चर्बीला बैल कमरे में ला रहे थे। कठिनाई से वे उसको भीतर ला सके थे कि एक क़साई ने अपना छुरा सर से ऊपर तानकर ज़ोर से उसे मारा। बैल पेट के बल गिर पड़ा और फ़ौरन ही एक ओर को लुढ़क गया। वह अपनी टांगें झिटकने लगा। एक क़साई झट से बैल के अगले भाग पर चढ़ बैठा और उस के सींगों को पकड़ कर उसके सिर को ज़मीन तक झुका दिया। सर के नीचे से गहरे लाल रंग का खून निकलने लगा। झट एक खून से तर लड़के ने एक टीन की बालटी लाकर वहां पर रख दी जहां खून गिर रहा था। टीन का बर्तन जल्दी ही भर गया किन्तु बैल तब भी जीता था। जब एक बर्तन खून से भर गया तब उसी जगह पर दूसरा लड़का बर्तन लेकर बैठ गया। जब खून बहना बन्द हो गया तब एक क़साई ने बैल का सर उठाकर चमड़ा निकालना शुरू किया, किन्तु बैल पैर झिटकता ही जाता था। उसके सर का चमड़ा निकाल लिया गया और सर लाल लाल देख पड़ने लगा। इसका चमड़ा चीर कर दोनों ओर कर दिया गया। लेकिन बैल टांगें झिटकता ही रहा। तब दूसरे क़साई ने बैल की टांगें पकड़ लीं और उन्हें तोड़ कर काट डाला। इसके बाद उन लोगों ने बैल के शरीर को घसीट कर एक तरफ़ कर

दिया और बैल का कांपना और तड़पना वहीं समाप्त हो गया। इस प्रकार मैंने दरवाज़े पर खड़े खड़े इसी तरह चार बैल देखे और सबों की यही दुर्गति हुई।

भेंड़, बकरे, मुर्गियों तथा अन्य पक्षियों और पशुओं की हत्या भी ऐसी ही निर्दयता से की जाती है। इन सब बातों के होते हुये भी लोग जो अपने को सभ्य और शिक्षित कहते हैं, इन जानवरों और पक्षियों की लाशों को हज़म कर जाते हैं और कहते हैं कि हम धार्मिक-जीवन व्यतीत करते हैं। स्त्रियां कहती हैं हम नाज़ुक हैं, हम सागपात खा कर ज़िन्दा नहीं रह सकतीं, हमारा शरीर इतना दुर्बल है कि उसे मांस द्वारा पुष्ट करने की ज़रूरत है। साथ साथ वे यह भी कहती हैं कि हम किसी का दुःख नहीं देख सकतीं। किन्तु उनकी दुर्बलता का कारण यही है कि जो भोजन मनुष्य के लिए अनुचित है उसका भक्षण करना उन्हें सिखाया गया है। उनका यह कहना भी ग़लत है कि वे किसी का दुःख नहीं देख सकतीं क्योंकि वे पशुओं और पक्षियों को खा जाती हैं।

यह हम नहीं कह सकते कि हमें यह बात मालूम नहीं है। जिस चीज़ को हम खाते हैं उसके प्राप्त करने की रीतियों से अनभिज्ञता प्रगट करना असंभव है। क्या बिना मांस खाये हुये हम नहीं रह सकते? कुछ लोग कहते हैं कि यह अनिवार्य्य तो नहीं किन्तु कुछ बातों के लिए बहुत ज़रूरी है। मैं कहता हूं कि यह ज़रूरी नहीं है। जिन लोगों को इस बात पर सन्देह हो वे बड़े बड़े विद्वान डाक्टरों की पुस्तकें पढ़ें, जिनमें यह दिखाया गया है कि मांस का खाना मनुष्य के लिए आवश्यक नहीं है।

मांस खाने से पाशविक प्रवृत्तियां बढ़ती हैं, काम उत्तेजित

होता है, व्यभिचार करने और मदिरा पीने की इच्छा होती है। इस बात के प्रमाण वे शुद्ध और सदाचारी नवयुवक तथा विशेष कर जवान स्त्रियां और जवान लड़कियां हैं जो इस बात को साफ़ साफ़ कहती हैं कि मांस खाने के बाद काम की उत्तेजना और अन्य पाशविक प्रवृत्तियां आप ही आप प्रबल हो जाती हैं। मांस खाकर सदाचारी बनना असंभव है। मेरे कहने का क्या मतलब है? क्या मेरा यह मतलब है कि सदाचारी बनने के लिए केवल मांस ही का त्यागना आवश्यक है? कदापि नहीं। मेरे कहने का मतलब सिर्फ़ इतना है कि सदाचारी और धार्मिकजीवन के लिए विशेष क्रम के साथ सात्विक कामों का करना आवश्यक है। इस क्रम की पहली सीढ़ी संयम और इन्द्रिय-निग्रह है।

संयम के लिए भी मनुष्य को एक क्रम के अनुसार काम करना पड़ेगा और इस क्षेत्र में उसका पहला काम ज़बान को अपने वश में रखना होगा अर्थात् उपवास की आदत डालनी होगी। जिह्वा को अपने वश में रखने के लिए अर्थात् उपवास की सफलता के लिए पहली बात मांस का छोड़ना है। क्योंकि मांस-भोजन काम को उत्तेजित करता है और इसके अलावा एक बड़ा दोष उसमें यह भी है कि मांस एक अधर्म करने के पश्चात् अर्थात् हत्या के पश्चात् प्राप्त होता है और वह स्वादिष्ट भोजन की लालसा को भी प्रबल करता है।

२—लोग नशा क्यों करते हैं ?

लोग शराब, गांजा, भांग, ताड़ी इत्यादि क्यों पीते हैं ? लोग अफ़ीम इत्यादि नशीली चीज़ें क्यों खाते हैं। जहां शराब इत्यादि का अधिक प्रचार नहीं है वहां भी तम्बाकू का इस्तेमाल इतना ज़्यादा क्यों होता है ? नशा करने की आदत लोगों में किस तरह से शुरू हुई और सभ्य तथा जंगली हर तरह के लोगों में यह आदत क्यों इतनी फैली हुई है ? लोग नशे में अपने को क्यों रखना चाहते हैं ? यह सब प्रश्न हैं जिनपर इस लेख में विचार किया जायगा।

किसी से पूछिये कि भाई तुम्हें शराब पीने की लत किस तरह से लगी और तुम शराब क्यों पीते हो तो वह जवाब देगा कि सब लोग पीते हैं इसीसे मैं भी पीता हूं और इसके अलावा शराब पीने से एक मज़ा भी मिलता है। कुछ लोग तो यहांतक कह डालते हैं कि शराब तन्दुरुस्ती के लिए बहुत मुफ़ीद है और उसके पीने से ताक़त बढ़ती है। किसी तम्बाकू पीनेवाले से पूछिये कि भाई तम्बाकू तुम क्यों पीते हो तो वह जवाब देगा कि हर एक आदमी पीता है इसीसे मैं भी पीता हूं, इसके अलावा तम्बाकू पीने से समय अच्छी तरह कट जाता है। अफ़ीम, चरस, गांजा, भांग इत्यादि खानेवाले लोग भी शायद इसी तरह का जवाब देंगे।

तम्बाकू, शराब, अफ़ीम इत्यादि के तैयार करने में लाखों आदमियों की मेहनत खर्च होती है और लाखों बीघा, बढ़िया से बढ़िया ज़मीन इन सब चीज़ों के पैदा करने में लगाई जाती है।

हरएक आदमी इस बात को क़बूल करेगा कि इन नशीली चीज़ों के इस्तेमाल से कैसी २ भयानक बुराइयां लोगों में पैदा होती हैं। इसके अलावा इन नशीली चीज़ों की बदौलत जितने आदमी दुनियां में मौत के शिकार होते हैं तने कुल लड़ाइयों और छूत वाली बीमारियों की बदौलत भी नहीं होते। लोग इस बात को अच्छी तरह से जानते हैं इसलिए उनका यह कहना कि "सबलोग पीते हैं इससे मैं भी पीता हूं" या "समय काटने के लिए पीता हूं" या "मजे के लिए पीता हूं" बिल्कुल ग़लत है। लोगों के नशा करने का सबब कोई दूसरा ही है।

जहां तक मैंने इस विषय के बारे में विचार किया है और दूसरे लोगों से उसके बारे में बातचीत की है वहां तक मुझे पता लगा है कि लोगों की इस आदत का कारण मामूली नहीं बल्कि बहुत बड़ा है। वह कारण कुछ नीचे लिखे हुए ढंग पर वर्णन किया जा सकता है।

यदि मनुष्य अपने जीवन की ओर देखे तो उसे अपने शरीर में दो भिन्न प्राणी दिखलाई पड़ेंगे—एक तो वह है जो अन्धा है और जिसका सम्बन्ध शरीर से है और दूसरा वह है जो देखता है और जिसका सम्बन्ध आत्मा से है। उसके शरीर का अन्धा भाग कल के पुर्ज़ों की तरह खाता है, पीता है, सोता है, सन्तानोत्पत्ति करता है और हिलता डुलता है। उसके शरीर का आत्मिक या देखने-वाला भाग स्वयं कुछ नहीं करता। वह सिर्फ़ पहलेवाले भाग की चेष्टाओं और कार्यों को देखा करता है। जब वह उसके किसी काम को पसन्द करता है तो उसके साथ सहयोग करता है और जब वह उसके किसी काम को नापसन्द करता है तो उससे असहयोग कर देता है।

जिस तरह से कि क़ुतुबनुमा की सुई का एक सिरा उत्तर की ओर और दूसरा सिरा दक्षिण की ओर रहता है उसी तरह से हमारे शरीर का आत्मिक अंश या अन्तरात्मा हमें एक ओर तो क्या सत्य है यह बतलाता है और दूसरी ओर क्या मिथ्या है यह बतलाता है। ज्योंही हम कोई काम अपनी अन्तरात्मा के विरुद्ध करते हैं त्योंही हमें चटकना लगता है और हमारे शरीर के इस आत्मिक अंश का पता लगता है। मनुष्य के जीवन में मुख्य कर के दो प्रकार के कार्य दिखलाई पड़ते हैं। एक तो वे कार्य हैं जिन्हें अन्तरात्मा स्वीकार करता है और जो उसी के अनुसार किए जाते हैं और दूसरे प्रकार के कार्य वे हैं जिन्हें अन्तरात्मा स्वीकार नहीं करता और जो बिना अन्तरात्मा की राय के किये जाते हैं।

कुछ लोग पहले प्रकार के कार्य करते हैं और कुछ लोग दूसरे प्रकार के। पहले प्रकार के कार्यों में सफलता पाने का सिर्फ़ एक उपाय है और वह यह है कि हम अपनी आत्मा को उन्नत करें, अपने आत्मिक-ज्ञान की वृद्धि करें और अपने आत्मिक-सुधार की ओर दत्तचित्त हों। दूसरे प्रकार के कार्यों में सफलता पाने के दो उपाय हैं—एक बाह्य और दूसरा आन्तरिक। बाह्य उपाय यह है कि हम ऐसे कामों में अपने को लगायें जिनके कारण हमारा ध्यान अन्तरात्मा की पुकार की ओर न जाने पाये और आन्तरिक उपाय यह है कि हम अपनी अन्तरात्मा को ही अन्धा और प्रकाशहीन बना दें।

अगर कोई आदमी अपने सामने की चीज़ को न देखना चाहे तो वह दो प्रकार से ऐसा कर सकता है—या तो वह अपनी नज़र किसी दूसरी चीज़ पर लगा दे जो ज़्यादा तड़क भड़कदार है या वह अपनी आंखों को ही बन्द कर ले। इसी तरह से मनुष्य भी अपनी

अन्तरात्मा के सङ्केतों को दो प्रकार से टाल सकता है—या तो वह अपने ध्यान को खेल-कूद, नाच-रङ्ग, थियेटर, तमाशे और तरह तरह की फ़िक्रों और कामों में लगा दे या वह अपनी उस शक्ति ही पर पर्दा डाल दे जिसके द्वारा वह किसी बात पर ध्यान लगा सकता है। जो लोग बड़े ऊंचे चरित्र के नहीं हैं और जिनका नैतिक-भाव बहुत परिमित है, उनके लिए खेल, कूद, तमाशे वग़ैरह इस बात के लिए काफ़ी होते हैं। लेकिन जिनका चरित्र बहुत ऊंचा और जिन का नैतिक-भाव बहुत प्रबल है, उनके लिए यह बाहरी उपाय अकसर काफ़ी नहीं होते। इसलिए वे शराब, गांजा, भांग, तम्बाकू इत्यादि से अपने दिमाग़ को ज़हरीला बना देते हैं, जिससे उनकी अन्तरात्मा अन्धकारमय हो जाती है और तब वे उस विरोध को नहीं देख सकते जो उनकी अन्तरात्मा और उनके अमली-जीवन के बीच में पैदा हो गया है।

दुनिया में लोग गांजा, भांग, चरस, शराब, तम्बाकू वग़ैरह इसलिए नहीं पीते कि उनका ज़ायक़ा बढ़िया होता है या उनसे कोई ख़ुशी हासिल होती है, बल्कि इसलिए लोग नशा करते हैं कि वे अपनी अन्तरात्मा की आवाज़ को सुनना नहीं चाहते। एक रोज़ मैं एक सड़क पर जा रहा था। उस सड़क पर कुछ गाड़ी-वाले आपस में बात-चीत कर रहे थे। उनमें से एक को मैं ने यह कहते हुए सुना, "जो आदमी अपने होश में रहेगा वह ज़रूर इस काम को करते हुए शरमायेगा।" इसका अर्थ यह हुआ कि जो काम नशे में ठीक मालूम पड़ता है होश आने पर वह उसी काम को करने में शरमायेगा। इन शब्दों से हमें इस बात का पूरा पता लगता है कि लोग नशा क्यों करते हैं। लोग नशा

इसलिए करते हैं कि जिसमें अपनी अंतरात्मा के विरुद्ध किसी काम को कर लेने के बाद शरम न मालूम पड़े। या लोग नशा इस लिए करते हैं कि जिसमें वे ऐसी हालत में हो जायं कि अपनी अन्तरात्मा के विरुद्ध किसी काम के करने में उन्हें कोई हिचक न पैदा हो।

जब आदमी नशे में नहीं रहता तो वह किसी वेश्या के यहां जाने, चोरी करने या किसी की हत्या करने में शरमाता है। पर जो आदमी नशे में रहता है वह इन कामों को करते हुए नहीं शरमाता। इसलिए जो मनुष्य अपनी आत्मा और विवेक-बुद्धि के विरुद्ध कोई काम करना चाहता है वह नशा पी कर अपने को बदहोश कर लेता है। मुझे याद है कि एक बार एक बावरची ने उस औरत को मार डाला जिसके यहां वह नौकर था। उसने अदालत के सामने अपने बयान में कहा कि जब मैं छूरा लेकर अपनी मालिका को मारने के लिए उसके कमरे में जाने लगा तो मैंने सोचा कि जबतक मैं अपने पूरे होश में हूं तबतक मैं इस काम को नहीं कर सकता। इसलिए मैं लौटा और दो गिलास भर कर शराब पी ली। तभी मैंने उस काम के योग्य अपने को समझा और तभी मैंने यह हत्या की। दुनिया में ९० फ़ी सदी अपराध इसी तरह से किए जाते हैं। दुनिया में जितनी पतित स्त्रियां हैं उनमें से आधी स्त्रियां शराब के नशे में ही पतित होती हैं। जो लोग पतित स्त्रियों के घरों में जाते हैं उनमें से आधे लोग तभी ऐसा करते हैं जब वे शराब के नशे में होते हैं। लोग अच्छी तरह से जानते हैं कि शराब पीने से अन्तरात्मा या विवेकबुद्धि पर पर्दा पड़ जाता है और तब वे मनमाना जो चाहें सो कर सकते हैं। वे इसी मतलब से जान बूझ कर शराब पीते हैं।

लोग न सिर्फ़ अपनी ही अन्तरात्मा की आवाज़ को दबाने के लिए खुद शराब पीते हैं बल्कि जब वे दूसरों से उनकी अन्तरात्मा के विरुद्ध कोई काम कराना चाहते हैं तो उन्हें जान-बूझ कर शराब पिला देते हैं। लड़ाइयों में सिपाही आमतौर पर शराब पिला कर मस्त कर दिये जाते हैं जिस से कि वे खूब अच्छी तरह से लड़ सकें। जब लड़ाई में कोई क़िला या शहर दुश्मनों के क़ब्ज़े में आ जाता है तो दुश्मनों के सिपाही अरक्षित बुड्ढों और बच्चों को मारने से तथा लूटपाट करने से हिचकते हैं पर ज्यों ही उन्हें शराब पिला दी जाती है त्यों ही वे अपने अफ़सरों की आज्ञा के अनुसार अत्याचार करने लगते हैं। हर कोई भी यह देख सकता है कि जो लोग हीन चरित्र के हैं और जिनका जीवन दुराचारमय है वे नशों का व्यवहार बहुत अधिक करते हैं। हरएक को मालूम है कि लुटेरे, चोर, वेश्यायें और व्यभिचारी मनुष्य बिना नशे के नहीं रह सकते।

यद्यपि लोग इस बात को जानते हैं कि नशा करने से आत्मा और विवेकबुद्धि कुंठित हो जाती है तथापि बहुत से लोगों को जो भलेआदमी गिने जाते हैं, हम यह कहते हुए सुनते हैं कि अगर थोड़ा नशा किया जाय या थोड़ी सी शराब पी ली जाय तो कोई हर्ज नहीं है अर्थात उससे अन्तरात्मा या विवेकबुद्धि कुंठित नहीं होती। पर गम्भीरता के साथ निष्पक्ष भाव से विचार करने पर पता लगेगा कि अगर शराब वग़ैरह ज्यादा तादाद में कभी कभी पीने से मनुष्य की आत्मा कुंठित हो जाती है, तो बाक़ायदा तौर पर थोड़ी सी शराब वग़ैरह पीने से भी वही असर पैदा होगा।

ऐसा ख़्याल किया जाता है कि तम्बाकू पीने से एक तरह की फ़ुर्ती बदन में आ जाती है, दिमाग़ साफ़ हो जाता है और उस से आत्मा को कुंठित करनेवाला वह असर भी नहीं पैदा होता जो शराब से होता है। लेकिन अगर आप ध्यान दे कर इस बात को देखें कि किस हालत में तम्बाकू पीने की इच्छा आप को होती है तो आप को निश्चय हो जायगा कि तम्बाकू का नशा भी आत्मा को उसी तरह कुंठित बना देता है जिस तरह से कि शराब का नशा बनाता है। ध्यान देने से आप को यह भी मालूम होगा कि लोग तम्बाकू तभी पीते हैं जब उन्हें अपनी आत्मा को कुंठित करने की ज़रूरत पड़ती है। लोग अक्सर यह कहते हैं कि हम चाहे बिना भोजन के रह जायं लेकिन बिना तम्बाकू के नहीं रह सकते। अगर तम्बाकू का इस्तेमाल सिर्फ़ दिमाग़ को साफ़ करने या बदन में फ़ुर्ती लाने के लिए किया जाता तो उस के लिए लोग इतने उतावले न होते और न उसे भोजन से ज्यादा ज़रूरी समझते।

एक आदमी ने अपने मालिक को मारना चाहा। जब वह उसे मारने के लिए आगे बढ़ा तो यकायक उसकी हिम्मत जाती रही। तब उसने एक सिगरेट निकाल कर पिया। सिगरेट का नशा चढ़ते ही उसके बदन में फुर्ती आगई और फ़ौरन जाकर उसने अपने मालिक का काम ख़त्म कर दिया। इससे साफ़ ज़ाहिर है कि उस समय उस आदमी में सिगरेट पीने की इच्छा इसलिए नहीं पैदा हुई कि वह अपना दिमाग़ साफ़ करना चाहता था, या अपना चित्त प्रसन्न करना चाहता था बल्कि वह अपनी उस आत्मा को कुंठित करना चाहता था जो उसे हत्या करने से रोक रही थी।

जब मैं स्वयं तम्बाकू पिया करता था उस समय की याद मुझे है। मुझे तम्बाकू पीने की ख़ास ज़रूरत उसी समय पड़ा करती थी जब

मैं किसी चीज़ को भुलाना चाहता था या उस पर विचार नहीं करना चाहता था। मैं बिना किसी काम के लिए बैठा हुआ हूं और जानता हूं कि मुझे काम में लगना चाहिए। पर काम करने की इच्छा न होने से तम्बाकू पीते हुये बैठे ही बैठे समय काट देता हूं। मैंने ५ बजे किसी के यहां जाने का वादा किया है पर बहुत देर हो गई है। मैं जानता हूं कि मुझे वहां ठीक वक्त पर जाना चाहिए था। पर मैं उस पर विचार नहीं करना चाहता, इसलिए तम्बाकू पी कर उस बात को भुला देता हूं। मैं जुवा खेल रहा हूं, उसमें मैं अपने वित्त से अधिक हार गया हूं — बस उस दुःख को मिटाने के लिए सिगरेट पीने लगता हूं। मैं कोई ख़राब काम कर बैठा हूं। मुझे उस काम को स्वीकार कर लेना चाहिए, पर उसके बुरे नतीजे से बचने के लिए दूसरों पर उसका दोष मढ़ता हूं और अपने चित्त को शांति करने के लिए सिगरेट का दो एक कश पी लेता हूं। इसी तरह के सैकड़ों उदाहरण दिये जा सकते हैं।

छोटे छोटे लड़के तम्बाकू पीना कब शुरू करते हैं? आमतौर पर जब उनकी लड़काई का भोलापन जाता रहता है। क्या बात है कि तम्बाकू पीनेवालों का नतिक-जीवन और उनका आचरण* पहिले से अधिक सुधर जाता है ज्यों ही वे तम्बाकू पीना छोड़ देते हैं? पर ज्यों ही वे दुराचार में पड़ जाते हैं त्यों ही तम्बाकू पीना फिर शुरू कर देते हैं। क्या कारण है कि क़रीब क़रीब कुल जुवारी तम्बाकू ज़रूर पीते हैं? क्या कारण है कि उन स्त्रियों में तम्बाकू पीने की आदत बहुत कम पाई जाती है जो अपना जीवन बड़े नियम और सदाचार के साथ व्यतीत करती हैं? क्या कारण है कि सभी वेश्यायें तम्बाकू का नशा करती हैं? कारण यह है कि तम्बाकू पीने से आत्मा कुंठित हो जाती है और आत्मा कुंठित

होने से लोग दुराचार और पापकर्म बिना किसी हिचक के कर सकते हैं ?

लोग अपने जीवन को अपनी अंतरात्मा की अनुमति के अनुसार नहीं बनाते बल्कि वे अपनी अंतरात्मा को जीवन की आवश्यकताओं के अनुसार मोड़ लेते हैं । जिस तरह व्यक्तियों के जीवन में यह बात दिखलाई पड़ती है, उसी तरह समाज या जाति के जीवन में भी यह बात दिखलाई पड़ती है। क्योंकि समाज या जाति व्यक्तियों का ही एक समूह है ।

लोग नशे के द्वारा अपनी अंतरात्मा को कुंठित क्यों कर देते हैं और उसका नतीजा क्या होता है इसे जानने के लिए हरएक मनुष्य को अपने आत्मिक-जीवन की भिन्न भिन्न दशाओं पर दृष्टि डालनी चाहिए। हरएक मनुष्य के सामने अपने जीवन के हरएक भाग में कुछ नतिक प्रश्न ऐसे आते हैं जिनका हल करना उस के लिए बहुत ज़रूरी होता है और जिसके हल होने पर ही उसके जीवन की कुल भलाई निर्भर रहती है। इन प्रश्नों को हल करने के लिए बहुत ध्यान लगाने की आवश्यकता पड़ती है । किसी बात पर ध्यान लगाने में कुछ परिश्रम करना पड़ता है और जहां परिश्रम करना पड़ता है वहां ख़ासकर शुरू में तकलीफ़ होती है और उसके करने में बहुत कठिनता मालूम पड़ती है। जहां काम अखरने लगा कि फिर उसके करने की उसे इच्छा नहीं होती और हम उसे छोड़ देते हैं। शारीरिक कामों के सम्बन्ध में जब यह बात है तो फिर मानसिक बातों को क्या कहना जिन में और भी अधिक परिश्रम पड़ता है । मनुष्य सोचता है कि इस तरह के प्रश्नों को हल करने में परिश्रम करना पड़ता है, अतएव उस परिश्रम से बचने के लिए

नशा पी कर वह अपने को बदहोश कर लेता है । अगर अपनी शक्तियों को बदहोश करने के लिए उसके पास कोई ज़रिया न हो तो वह उन प्रश्नों को हल करने से बाज़ नहीं रह सकता जिन का हल करना उसके लिए बहुत ही ज़रूरी है । लेकिन वह देखता है कि इन प्रश्नों से बचने के लिए एक ज़रिया उसके हाथ में है और वह उसे काम में लाता है । ज्योंही इस तरह के प्रश्न उसे पीड़ा देने लगते हैं त्योंही वह नशे का इस्तेमाल करके उस पीड़ा से बचने की कोशिश करता है । इस तरह से जीवन के अत्यन्त आवश्यक प्रश्न महीनों, वर्षों या कभी कभी ज़िन्दगी भर तक बिना हल हुये पड़े रहते हैं ।

जिस तरह से कि कोई मनुष्य गंदे पानी की तह में एक क़ीमती मोती को देख कर उसे लेना चाहता है पर उस गंदे पानी के अन्दर घुसना नहीं चाहता और इसलिए उसे अपनी नज़र से दूर करना चाहता है । मिट्टी बैठ जाने से पानी ज्योंहीं साफ़ होने लगता है त्योंही वह उसे हिला देता है जिसमें कि मोती दिखलाई न पड़े । इसी तरह से हम लोग जीवन के प्रश्नों को हल करने से बचने के लिए, जब जब वे प्रश्न हमारे सामने आते हैं, तब तब नशा पी कर अपने को बदहोश कर लेते हैं । बहुत से लोग ज़िन्दगी भर तक इसी तरह अपने को बदहोश करते रहते हैं और हमेशा के लिए अपनी आत्मा को कुंठित कर डालते हैं ।

शराब, भांग, तम्बाकू इत्यादि नशों का परिणाम व्यक्तियों पर जो होता है वह तो होता ही है, किन्तु समाज और जाति पर उस का बहुत बुरा असर पड़ता है । आजकल के अधिकतर लोग कोई न कोई नशा, कम हो या ज्यादा, ज़रूर करते हैं । या तो वे थोड़ी

शराब पीते हैं या थोड़ी भांग पीते हैं या थोड़ी तम्बाकू का सेवन करते हैं या सिगरेट इत्यादि पीते हैं। सभ्य से सभ्य और विद्वान् से विद्वान् लोग भी कोई न कोई नशा जरूर करते हैं। हमारी समाज या देश के राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक और कला-सम्बन्धी हरएक विभाग का कार्य्य और प्रबन्ध इन्हीं सभ्य, शिक्षित और विद्वानों के हाथ में है जो किसी न किसी नशे के आदी हो रहे हैं। इसलिए वर्त्तमान समय की समाज का हरएक काम प्रायः उन लोगों के द्वारा हो रहा है जो किसी न किसी नशे के प्रभाव में रहते हैं। आमतौर पर यह ख्याल किया जाता है कि जिस मनुष्य ने अगले दिन शराब या और कोई नशा पिया है वह दूसरे दिन काम करने के समय उस नशे के असर में बिल्कुल नहीं रहता। पर यह बिल्कुल ग़लत ख्याल है। जिस मनुष्य ने एक बोतल शराब अगले दिन पी है या अफ़ीम का एक अच्छा नशा अगले रोज़ जमाया है वह दूसरे दिन कभी गम्भीर और स्वाभाविक हालत में नहीं रह सकता। जो आदमी थोड़ी सी शराब या थोड़ी सी तम्बाकू भी पीने का आदी है उसका दिमाग़ तबतक अपनी स्वाभाविक हालत में नहीं आ सकता जबतक कि वह कम से कम एक हफ़्ते के लिए शराब और तम्बाकू पीना बिल्कुल न छोड़ दे।

इसलिए जो कुछ हमारे चारों तरफ दुनिया में हो रहा है उसमें से अधिकतर उन लोगों के द्वारा हो रहा है जा अपनी गम्भीर और स्वाभाविक दशा में नहीं रहते। मैं यह पूछता हूं कि अगर लोग नशे में न होते अर्थात् वे अपनी स्वाभाविक दशा में होते तो क्या वे उन सब कामों को करते जो वे कर रहे हैं। मैं एक उदाहरण आपके सामने रखता हूं। कुल यूरोप के लोग कई

वर्षों से इस बात में मशग़ूल हैं कि कोई ऐसा तरीक़ा निकाला जाय जिससे कम से कम समय में अधिक से अधिक आदमी मारे जा सकें । वे अपने जवानों को, ज्योंही, हथियार पकड़ने के क़ाबिल होते हैं, त्योंही दूसरों को क़त्ल करने की शिक्षा देते हैं । हरएक आदमी यह जानता है कि किसी असभ्य या जङ्गली जाति के हमले से बचने के लिए यह तैयारी नहीं है। सब लोग यह जानते हैं कि अपने को सभ्य और शिक्षित कहनेवाली जातियां एक दूसरे को मारने के लिए ही यह तैयारियां करती हैं । सब लोग यह जानते हैं कि इन कामों से संसार में कितना कष्ट, कितनी दुर्दशा, कितना अन्याय और कितना अत्याचार हो रहा है पर तब भी सब लोग सेनाओं, हत्याओं, और युद्धों में शरीक होते हैं। क्या होश में रहनेवाले लोग इस तरह का काम कर सकते हैं ? नहीं, सिर्फ़ वही लोग ऐसा कर सकते हैं जो हमेशा किसी न किसी नशे में रहते हैं।

मेरा ख्याल है कि आजकल जितने लोग अपनी आत्मा के विरुद्ध काम करते हुए ज़िन्दगी बिता रहे हैं उतने पहले कभी नहीं थे। इसका सब से बड़ा कारण यह है कि हमारी समाज के बहुत अधिक लोग शराब और तम्बाकू के आदी हो रहे हैं। शराब और तम्बाकू के आदी हो कर वे अपने को नशों में डाले रहते हैं। इस भयानक बुराई से छुटकारा जिस दिन मिलेगा वह दिन मनुष्य-जीवन के इतिहास में सोने के अक्षरों से लिखने के योग्य होगा। वह दिन नज़दीक आता हुआ मालूम पड़ रहा है । क्योंकि अब लोग इस बुराई को पहिचानने लगे हैं और यह समझने लगे हैं कि इन नशीली चीज़ों से कितनी भयानक हानियां हो रहीं हैं।

जब इस भाव का प्रचार अधिकतर होगा तभी लोग अपनी आत्मा की आवाज़ को अच्छी तरह से सुनने लगेंगे और तभी वे अपने जीवन को अपनी आत्मा के संकेतों के अनुसार नियमित करेंगे।

३—अन्तिम उन्नति।

वर्त्तमान समय के मनुष्यों की विपत्तियों का कारण यह है कि उनमें से अधिक तर का जीवन सच्चे धार्मिक सिद्धान्तों के विरुद्ध व्यतीत होता है। धर्म से हमारा मतलब उन पूजा-पाठ, व्रत-नेम, होम-यज्ञ, रीति-रिवाज और मंत्र-संस्कार इत्यादि से नहीं है जो धर्म के नाम से किये जाते हैं। धर्म से हमारा मतलब उस चीज़ से है जो मनुष्य और ईश्वर के बीच में एक संबंध स्थापित करती है, जो मनुष्य की प्रवृत्ति को ऊंचे उद्देश्यों की ओर लगाती है और जिसके बिना मनुष्य पशुओं से भी गिरी हुई हालत में रहता है। वर्त्तमान समय के मनुष्य अपनी कुल शक्ति विज्ञान, कला, कारीगरी और व्यापार इत्यादि की ओर लगाये हुए हैं, उन्होंने प्रकृति की शक्तियों पर बहुत बड़ी विजय प्राप्त कर ली है। पर सच्चे धार्मिक-सिद्धान्तों का ज्ञान न होने से वे अपने वैज्ञानिक ज्ञान, अपनी शक्ति, अपनी विद्या और अपने बुद्धि-वैभव को अपने जीवन की अत्यन्त नीच और पाशविक प्रवृत्तियों को संतुष्ट करने में लगाते हैं।

बिना सच्चे धार्मिक-ज्ञान के प्रकृति की शक्तियों पर महान अधिकार रखनेवाले मनुष्य उन बच्चों के समान हैं जिनके हाथ में भयानक गैस या तेज़ बारूद खेलने के लिए दे दी गई है। जितनी शक्ति वर्त्तमान समय के मनुष्यों के हाथ दे दी गई है और जिस प्रकार वे अपनी शक्तियों को काम में लाते हैं उसे देखते हुए यही विचार मन में उत्पन्न होता है कि अभी मनुष्य की नैतिक-उन्नति इतनी नहीं हुई है कि उन्हें रेल, तार, बिजली इत्यादि को काम में लाने का अधिकार दे दिया जाय। मेरी समझ में तो उन्हें, लोहा और इस्पात बनाने का भी अधिकार न मिलना चाहिए। क्योंकि वे इन सब चीज़ों को अपने विषय-भोग का सामान पैदा करने, अपना दिल-बहलाव की चीज़ें तैयार करने और एक दूसरे का नाश करने के लिए काम में लाते हैं।

तब क्या क्या करना चाहिए? क्या उन सब उन्नतियों को और उन सब वैज्ञानिक आविष्कारों का तिरस्कार कर देना चाहिए जो मनुष्यों ने इतने परिश्रम से सिद्ध किए हैं? क्या मनुष्य ने जो कुछ सीखा है उसे भुला देना चाहिए? यह असम्भव है। मनुष्य ने अपनी बुद्धि की शक्ति से जो आविष्कार किये हैं और जो नई बातें दरियाफ्त की हैं उन्हें भुला देना असंभव है। तब फिर क्या किया जाय? क्या पुरानी संस्थाओं के स्थान पर नई संस्थायें स्थापित की जांय? क्या विद्या और ज्ञान का प्रचार सर्व-साधारण में किया जाय? यह सब उपाय काम में लाये गये हैं और अब भी काम में लाये जाते हैं। इन सब उपायों से सच्चा सुधार नहीं हो सकता। आप संस्थाओं को बदल दें और ज्ञान का प्रचार सर्व-साधारण में कर दें पर तब भी मनुष्य वैसाही जानवर का जानवर बना रहेगा। वह हर समय एक दूसरे के साथ लड़ने और एक

दूसरे को मारने के लिए तैयार रहेगा जबतक कि उसका जीवन सच्चे धार्मिक-सिद्धान्तों के अनुसार न चलाया जायगा ।

मनुष्य के सामने सिर्फ़ दो बातें हैं—एक तो यह कि वह दूसरों का ग़ुलाम बना रहे या वह ईश्वर का सच्चा सेवक बने। मनुष्य के लिए आज़ाद होने का सिर्फ़ एक रास्ता है अर्थात् यह कि वह अपनी इच्छा को ईश्वर की इच्छा के अनुसार चलाए। जिन मनुष्यों का जीवन सच्चे धार्मिक-सिद्धान्तों से रहित है वे ही आदमियों के बनाये हुए क़ानूनों से डरते हैं और ग़ुलामों या जानवरों की तरह अपनी ज़िन्दगी बिताते हैं। सिर्फ़ सच्चे धार्मिक-सिद्धान्त इस तरह की ज़िन्दगी से उन्हें आज़ाद कर सकते हैं।

कुछ लोगों ने यह देखकर कि प्रचलित धर्म तथा आधुनिक समय की वैज्ञानिक उन्नति में परस्पर बड़ा विरोध है, यह निश्चय कर लिया है कि धर्म की कोई आवश्यकता मनुष्य को नहीं है। ऐसे लोग बिना किसी धर्म के रहते हैं और धर्म की व्यर्थता का उपदेश लोगों को देते हैं। अन्य बहुत से लोग प्रचलित और बिगड़े हुए धर्म को मानते हुए असली धार्मिक जीवन से ख़ाली रहते हैं। ऐसे लोग सिर्फ़ धर्म की ऊपरी बातों को मानते हुए धर्म के वास्तविक तत्व से बिल्कुल शून्य रहते हैं।

पर समय की आवश्यकताओं के अनुसार सच्चा और वास्तविक धर्म गूढ़ रूप से हरएक मनुष्य के हृदय में रहता है। इस धर्म का प्रकाश तभी हो सकता है जब शिक्षित मनुष्य और सर्व-साधारण के नेता यह समझने लगें कि धर्म मनुष्यों के लिए आवश्यक है। बिना धर्म के मनुष्य सदाचारी जीवन नहीं बिता सकता। और जिसे लोग विज्ञान के नाम से पुकारते हैं वह धर्म का

स्थान नहीं ले सकता। जो लोग प्रचलित धर्म को मानते हुए लीक पीटते चले जा रहे हैं, उन्हें भी समझ लेना चाहिए कि जिस प्रचलित धर्म को वह धर्म मान रहे हैं वह धर्म नहीं है बल्कि सच्चे धर्मके रास्तेमें एक बड़ी रुकावट है। इसलिए मनुष्य के मोक्ष का एक मात्र निश्चित उपाय यह है कि वह उस काम को न करे जिससे सच्चे धर्म के समझने में कोई रुकावट पड़ती हो। वह सच्चा धर्म मनुष्य की अंतरात्मा में निवास करता है।

जो लोग प्रचलित धर्म का उपदेश लोगों को दिया करते हैं उन्हें समझ लेना चाहिए कि जिन धार्मिक संस्कारों, पूजाओं, रीतियों और मन्त्रों का उपदेश वे लोगों को देते हैं वे बड़े हानिकारक हैं। उनसे धर्म के सच्चे सिद्धान्त छिप जाते हैं। उनके कारण मनुष्य इस बात को भूल जाता है कि सच्चा धर्म मनुष्य की सेवा है और इस सच्चे धर्म का सब से बड़ा नियम यह है कि हम दूसरों के साथ वैसा ही बर्ताव करें जैसा कि हम चाहते हैं कि दूसरे हमारे साथ करें।

वर्तमान समय के मनुष्य-जीवन के प्रश्नों को तभी हल कर सकते हैं जब अपने को सभ्य और शिक्षित कहनेवाले मनुष्य यह समझने लगेंगे कि अच्छा जीवन व्यतीत करने के लिए और मनुष्य के जीवन में सुधार करने के लिए धर्म अत्यन्त आवश्यक वस्तु है। उन्हें यह समझ लेना चाहिए कि धर्म वास्तव में मनुष्यों की अन्तरात्मा में रहता है।

यदि प्रचलित धर्म के उपदेशक और विज्ञान की शिक्षा देने वाले मनुष्य इन सीधे साधे सिद्धान्तों को समझ कर उनका उपदेश बालकों और शिक्षितों को देने लगें तो सब मनुष्य आप ही आप

अपने जीवन का तात्पर्य्य और अपने जीवन का कर्त्तव्य समझने लगेंगे।

वर्त्तमान समय का सब से बड़ा युद्ध वह नहीं है जो बम, गोलों, सुरंगों और बन्दूक़ों के ज़रिये से किया जाता है बल्कि वह है जो मनुष्य की आत्माओं के अन्दर ज्ञान और सत्य के प्रकाश तथा अज्ञान और असत्य के अन्धकार के बीच हो रहा है। इस हालत से मनुष्य को छुटकारा तभी मिल सकता है जब वह सच्चे धार्मिक सिद्धान्तों का अनुसरण अपने जीवन में करे। सच्चे धार्मिक सिद्धान्तों का अनुसरण करने से मनुष्य-जीवन की गुत्थियां आप ही आप सुलझ जायंगी।

मनुष्यों का सच्चा मोक्ष सिर्फ़ इसी में है कि हरएक व्यक्ति अपने जीवन में ईश्वर की इच्छा के अनुसार आचरण करे अर्थात् मनुष्यमात्र की सेवा अपनी शक्ति के अनुसार करे। यही मनुष्य-जीवन का सबसे बड़ा उद्देश्य है और यही एक ज़रिया है जिससे हरएक व्यक्ति दूसरों का सुधार कर सकता है।

चतुर्थ खण्ड ।

युद्ध और शान्ति ।
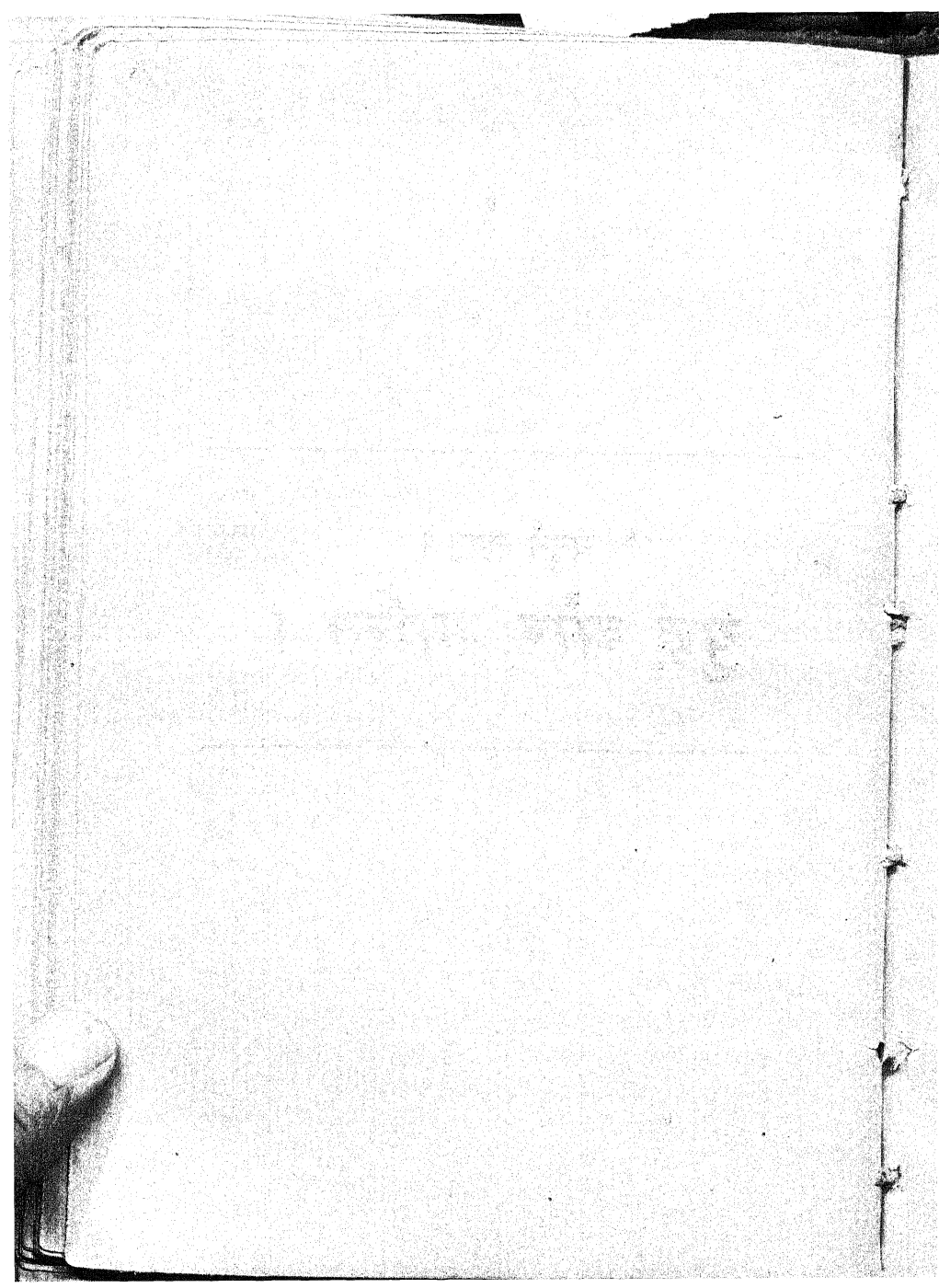
१—युद्ध के कारण ।

मैं उन लोगों से सहमत नहीं हो सकता जो यह कहते हैं कि जातियों में परस्पर युद्ध इस राजनैतिक अगुवा या उस राजनैतिक अगुवा अथवा इस मंत्री या उस मंत्री की चालों की बदौलत होता है । यदि दो मनुष्य शराबख़ाने या हौली में शराब पीकर जुवा खेलते हुए लड़ने लगें तो मैं यह नहीं कह सकता कि उनमें से एक दोषी है और दूसरा नहीं । दोनों ही आपस में लड़ाई करने के दोषी कहे जा सकते हैं, क्योंकि दोनों ही चुपचाप काम करने और आराम करने के बजाय शराब पीने और जुवा खेलने में अपना समय खो रहे थे । इसी तरह से अगर कोई मुझसे कहे कि दो देशों या दो जातियों के बीच युद्ध के लिए सिर्फ़ एक ही देश या एक ही जाति पर दोष मढ़ा जा सकता है तो उससे मैं कभी सहमत नहीं हो सकता । अगर आप यह कहें कि दोनों में से एक का आचरण दूसरे से अधिक ख़राब है या एक दूसरे से अधिक अत्याचारों का दोषी है तो मैं इसे मान सकता हूं ।

जो लोग अपनी आखें बन्द नहीं किए हुए हैं उन्हें युद्ध के असली कारण साफ़ ज़ाहिर हो सकते हैं । पहला कारण यह है कि धन या संपत्ति का बटवारा सब लोगों में समान रूप से नहीं है अर्थात् मनुष्यजाति का एक भाग दूसरे भाग को मनमाना लूट रहा है । दूसरा कारण यह है कि समाज में सरकार की ओर से कुछ लोग युद्ध के लिए और दूसरों को मारने काटने के लिए सिखा पढ़ा कर तैयार रक्खे जाते हैं । तीसरा कारण यह है कि लोगों को

झूठे धर्म की शिक्षा दी जाती है और उनका हृदय झूठी बातों से कलुषित किया जाता है। इसलिए यह कहना बिल्कुल ग़लत है कि लड़ाइयों का कारण यह बादशाह या वह बादशाह, यह ज़ार या वह क़ैसर, यह मंत्री या वह मंत्री, यह राजनैतिक अगुवा या वह राजनैतिक अगुवा है। लड़ाइयों के असली कारण हमीं हैं क्योंकि हमीं संपत्ति के अनुचित बटवारे में और एक दूसरे के लूट-पाट में शरीक होते हैं। हमीं फ़ौज में भर्ती होकर मारकाट का काम जारी रखते हैं, और हमीं झूठे धार्मिक उपदेशों को मान कर उनके अनुसार आचरण करते हैं।

जब तक हम मज़दूरों और किसानों की मेहनत से पैदा किये हुए धन को हड़प करते रहेंगे और उनके साथ होनेवाले अन्याय में सहयोग देते रहेंगे तब तक एक दूसरे से व्यापार में आगे बढ़ जाने के लिए तथा सोने की खानों, कोयले की खानों, और तरह तरह के कच्चे मालों पर क़ब्ज़ा जमाने के लिए जातियों में लड़ाइयां होती रहेंगी। जब तक हम फ़ौजों में भरती हो कर सरकार के सङ्गठन को बनाये रहेंगे तब तक लड़ाइयां होती रहेंगी। जब तक हम झूठे उपदेश को, झूठे इसाई धर्म को और झूठे मतों को मानते रहेंगे और जब तक हम धर्म के नाम पर और धर्म की रक्षा के लिए युद्ध होने की आवश्यकता को स्वीकार करते रहेंगे तब तक लड़ाइयां होती रहेंगी। हम सम्पत्ति के अनुचित बटवारे में भाग लेते हैं, हम किसानों और मज़दूरों के ऊपर होनेवाले अत्याचारों में शरीक होते हैं, हम सरकार की फ़ौजों में भरती होते हैं, हम झूठे धर्म को मानते हैं और उसके अनुसार आचरण करते हैं और हमीं कहते हैं कि लड़ाई के लिए यह आदमी ज़िम्मेदार है या वह आदमी।

जो लोग यह चाहते हैं कि संसार से युद्ध सदा के लिए उठ

जाय और सर्वत्र शान्ति तथा सत्य का साम्राज्य स्थापित हो जाय उन्हें चाहिए कि वे सम्पत्ति के अनुचित बटवारे में भाग न लें, मज़दूरों और किसानों के ऊपर होनेवाले अत्याचारों में शरीक न हों, फ़ौजों में भरती होने से इनकार करें और उन झूठे धार्मिक उपदेशों का तिरस्कार करें जिन के द्वारा युद्ध होने में सहायता मिलती है।

अहिंसा परमोधर्मः ।

जब बाक़ायदा मुक़द्दमा होने के बाद बादशाह लोग अपने बुरे कामों और अत्याचारों के लिए फांसी पर लटका दिये जाते हैं या जब उनके दरबारी लोग आपस में षड़यन्त्र रच कर बादशाहों को मार डालते हैं तो इन सब घटनाओं पर कोई आश्चर्य नहीं प्रकट किया जाता और न इस तरह की हत्याओं के ख़िलाफ़ कोई बड़ी आवाज़ ही उठाई जाती है। इंगलिस्तान के राजा चार्ल्स प्रथम और फ्रांस के बादशाह लुई १६ वें की हत्या इसी तरह की हत्याओं में गिनी जायगी। लेकिन जब बाक़ायदा मुक़द्दमा हुए बिना या दर्बारियों के षड़यन्त्र के बिना बादशाह क़त्ल कर डाले जाते हैं तो इस तरह की हत्याओं के ऊपर तमाम दुनिया के बादशाह, सरकारें और उनके मंत्री इत्यादि बहुत अधिक आश्चर्य और घृणा प्रगट करने लगते हैं। ऐसा प्रगट होता है कि मानों इन बादशाहों, सरकारों और उनके मन्त्री इत्यादि ने कभी कोई हत्या नहीं की। पर वास्तव में देखा जाय तो जितने बादशाह अब तक क़त्ल किये

गये हैं उनमें से एक भी ऐसा न था जो हज़ारों लाखों आदमियों को लड़ाई के मैदानों में भेज कर उनकी हत्या के लिए ज़िम्मेदार न रहा हो ।

ये सब बादशाह, सरकारें और उनके मन्त्री इत्यादि "आंख के बदले आंख और दांत के बदले दांत" लेने के सिद्धान्त पर बिश्वास करते हैं । वे बिना कारण केवल अपने स्वार्थ के लिए लड़ाई के मैदानों में हज़ारों आदमियों की हत्या करने का हुक्म अपने सिपाहियों को दे देते हैं । जिस सिद्धान्त को वे मानते हैं वही सिद्धान्त अगर उनके ऊपर लगाया जाय तो फिर क्रोध करने की कोई जगह उनके लिए नहीं है । क्योंकि जब बादशाहों की आज्ञा और अनुमति से लाखों करोड़ों आदमी मार डाले जाते हैं तब उसके मुक़ाबले में एकभी बादशाह नहीं मारा जाता । राजाओं, महाराजाओं, बादशाहों, सरकारों और उनके कर्मचारियों को किसी बादशाह या किसी सरकारी कर्मचारी की हत्या देख कर चकित होने की कोई आवश्यकता नहीं है, बल्कि उन्हें आश्चर्य्य तो इस बात पर होना चाहिए कि इस तरह की हत्यायें इतनी कम क्यों होती हैं ।

लोग इतने अंधे हैं कि वे यह नहीं देखते कि उनकी आंखों के सामने क्या हो रहा है । बादशाह लोग और सरकार के बड़े बड़े अफ़सर क़वायद और परेड के समय अपनी फ़ौजों का मुआइना करते हैं । सर्व-साधारण लोग भी अपने उन सिपाही भाइयों को देखने के लिए जाते हैं जो चमकदार, बेतुकी और अजीब क़िस्म की वर्दियां पहिने रहते हैं और जो बिगुल की आवाज़ होते ही एकदम मैशीन के पुर्जे की तरह काम करने लगते हैं । एक आदमी के कहने पर सभी अपने शरीर को एक ढङ्ग पर हिलाने डुलाने लगते हैं और

यह नहीं समझते कि इन बातों का मतलब क्या है । लेकिन इन सब बातों का मतलब बहुत साफ़ और सीधा है । अगर आप जानना चाहते हैं तो सुनिये, ये लोग हत्या करने के लिए तैयार किये जा रहे हैं ! इनके हृदय इसलिए पत्थर की तरह मज़बूत बनाए जा रहे हैं कि जिस में ये हत्या का काम अच्छी तरह से कर सकें । राजे, महाराजे, बादशाह और सरकारी कर्मचारी भी यह काम करते हैं और इस पर अभिमान करते हैं । येही लोग हैं जो हत्या करने में ख़ास तौर से दिलचस्पी लेते हैं । येही हैं जिन्हों ने हत्या करना अपना पेशा बना रक्खा है । येही हैं जो हमेशा फौजी वर्दी पहने रहते हैं और हत्या करने के अस्त्र-शस्त्र, बन्दूक़, तलवार इत्यादि लगाये रहते हैं । येही हैं जो बहुत ज्यादा नाराज़ और परेशान हो जाते हैं जब इनमें से कोई मार डाला जाता है ! बादशाहों या सरकारी पदाधिकारियों की हत्या भयंकर नहीं कही जा सकती कि वह निर्दयता से भरा हुआ काम है, क्योंकि इन हत्याओं से भी अधिक निर्दयतापूर्ण काम बादशाहों की आज्ञानुसार होते हैं और हुये हैं । निहत्थे नागरिकों का हत्याकाण्ड, किसानों का भयङ्कर दमन, आमलोगों के ऊपर गोलियों की बौछार सभी बादशाहों या सरकारों की आज्ञा से हुये हैं । आजकल भी जितनी फांसियां होती हैं, जितने लोग एकान्त कारावास में भूंखों मरते हैं, जितनों पर गोलियां चलाई जाती हैं, जितने युद्ध में क़त्ल किये जाते हैं यह सभी बादशाह या सरकार के नाम से होते हैं । इसलिए बादशाहों या सरकारी पदाधिकारियों की हत्यायें इस कारण भयङ्कर नहीं कही जा सकतीं कि वे निर्दयता-पूर्ण और अनुचित हैं, बल्कि भयङ्कर वे इसलिए कही जाती हैं कि इस प्रकार की हत्या करनेवाले लोग बेसमझी से ऐसी हत्यायें करते हैं ।

क्रान्तिवादियों और अराजकों का एक समुदाय है जिनका उद्देश बादशाहों या सरकारी पदाधिकारियों को क़त्ल करना है और जो प्रजा के हित के नाम पर इस तरह की हत्यायें करते हैं । पर मेरी समझ में यह बात नहीं आती कि ऐसे व्यक्तियों के मारने से क्या लाभ जो उस दैत्य के समान हैं जो मारे जाने के पश्चात् स्वयं अपने रक्त से पहले से अधिक संख्या में पैदा हो जाता था । बादशाहों और शासकों ने बहुत दिनों से अपने लिए ऐसा इन्तज़ाम कर रक्खा है कि ज्योंही एक शासक हत्या, मौत या किसी दूसरे कारण से हटा दिया जाता है कि दूसरा शासक उसके स्थान पर पहुंच जाता है इसलिए प्रश्न यह है कि इनके मारने से क्या लाभ ?

अगर विचार-पूर्वक देखा जाय तो मालूम होगा कि प्रजा को ज़ुल्म या लड़ाई से बचाने के लिए बादशाहों या शासकों को मारना फ़ज़ूल है । ग़ौर करने पर मालूम होता है कि मुख्य शासक चाहे जो हो — चाहे निकोलस हो, अलेकज़न्डर हो, फ्रेडिक हो, विलियम हो, नेपोलियन हो, लुई हो, ग्लैडस्टन हो या और कोई भी हो पर लड़ाइयां और ज़ुल्म बराबर होते रहे हैं । इस से पता चलता है कि युद्ध या ज़ुल्म के कारण कोई विशेष श्रेणी या ख़ास तरह के लोग नहीं हुआ करते । प्रजा के कष्टों का कारण कोई व्यक्ति-विशेष नहीं । प्रजा के कष्टों का कारण हमारी समाज का अन्याय-पूर्ण संगठन है । हमारी समाज का संगठन कुछ ऐसा है कि अधिकतर आदमी थोड़े से आदमियों के अधीन रहते हैं । यह थोड़े से आदमी दूसरे के जीवन-मरण के प्रश्न को हल करने का अख़्तियार रखने के कारण इतने पतित हो जाते हैं कि उनका हृदय कलुषित हो जाता है और उनका दिमाग़ शान पर चढ़ जाता है ।

लड़कपन से लेकर मृत्यु तक शासक लोग बेहद ऐशो-आराम

के साथ अपनी ज़िन्दगी गुज़ारते हैं। उनके साथ रहनेवाले लोग बहुत ज़्यादा चापलूस, झूठे और दास-वृत्ति के हुआ करते हैं। ये शासक लोग अपना समस्त समय व शक्ति इसी बात के सीखने में लगाते हैं कि पुराने ज़माने में हत्या करने के क्या तरीक़े थे। इस समय हत्या करने का सब से उत्तम कौन सा तरीक़ा है और इसके लिए सब से अच्छी तैयारी क्या हो सकती है। लड़कपन से ही इन्हें हत्या करने के अनेक तरीक़े सिखा दिये जाते हैं। हत्या करने के अस्त्रशस्त्र, तलवार, किर्च इत्यादि यह लोग अपने साथ रखते हैं। कोई भी मनुष्य इन्हें ऐसा नहीं मिलता जो उनसे साफ़ साफ़ कह दे कि हत्या करने की उनकी यह तय्यारियां पापमय और बुरी हैं। इसके विपरीत इन कामों के लिए उनकी प्रशंसा होती है। जब कभी वे बाहर निकलते हैं तो लोग उनके स्वागत और आदर के लिए इकट्ठा हो जाते हैं और वे यह समझने लगते हैं कि सम्पूर्ण राष्ट्र हमारे कामों की प्रशंसा कर रहा है। समाचार-पत्र जो उन्हें देखने को मिलते हैं ऐसे चापलूस और ख़ुशामदी होते हैं कि उनके प्रत्येक बात की, चाहे वह मूर्खता-पूर्ण ही क्यों न हो, बेहद तारीफ़ करते हैं। जो लोग उनके आस पास रहते हैं वे एक दूसरे से ख़ुशामद में बाज़ी ले जाने की कोशिश करते हैं और उनकी हरएक बात के सामने सर झुका देते हैं। इसका नतीजा यह है कि वास्तविक जीवन देखने का कभी मौक़ा ही उन्हें नहीं मिलता। बादशाह लोग या बड़े बड़े शासक चाहे सैकड़ों वर्ष तक ज़िन्दा रहें पर वे वास्तविक जीवन देखने और सच्ची बात सुनने का मौक़ा नहीं पाते। अगर कोई बुद्धिमान् आदमी उनकी जगह पर हो तो वह सब से बड़ी बुद्धिमत्ता का काम यह करेगा कि इस हालत से अपने को अलग कर लेगा। अगर वह उनकी हालत में रहा तो वह भी उन्हीं

के समान हो जावेगा।

इसलिए लोगों के कष्टों तथा युद्ध की हत्याओं के लिए अलेक्ज़ेण्डर, निकोलस, ज़ार, कैसर इत्यादि राजे या बड़े बड़े सरकारी पदाधिकारी, मन्त्री इत्यादि ज़िम्मेदार नहीं हैं। इन अत्याचारों के लिए ज़िम्मेदार वे लोग हैं जिन्होंने इनके अधीन रह कर प्रजा को बश में रखने का ज़िम्मा लिया है और जो इन बादशाहों तथा सरकारी अफ़सरों को अपनी हैसियत क़ायम रखने में मदद देते हैं। इसलिए बादशाहों या सरकारी अफ़सरों को मारने की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि लोग समाज की उस प्रणाली की सहायता करना छोड़ दें जिसकी बदौलत इस प्रकार के मनुष्य उत्पन्न होते हैं। समाज की वर्त्तमान प्रणाली को वही लोग क़ायम रक्खे हुये हैं जो अपने स्वार्थ के कारण अपनी स्वतन्त्रता को और अपनी इज़्ज़त को ज़रा से आर्थिक लाभ के लिए बेंच डालते हैं।

नीची श्रेणी के शासक लोगों को यह बताया जाता है कि तुम्हारे लिए देश की सेवा और धर्म का पालन यही है कि तुम वर्त्तमान प्रणाली को क़ायम रक्खो। इस शिक्षा के कारण उनका अन्त:करण मारा जाता है। इसलिए वे अपनी स्वतन्त्रता और आत्माभिमान का खून कर के अपने से ऊंचे हाकिम की आज्ञा के सामने सर झुका देते हैं। इसी तरह से उच्च-श्रेणी के हाकिम लोग भी अन्त:करण-शून्य होने के कारण थोड़े से जाती फ़ायदे के लिए अपनी स्वतन्त्रता और आत्माभिमान को बेंच डालते हैं। यही हाल ऊंचे से ऊंचे शासकों का भी है। बादशाह और सरकारें अपना शासन इसी तरह क़ायम रखती हैं। बादशाह और सरकारी हाकिम सिवाय अपनी शक्ति के और किसी बात की परवाह नहीं करते।

दुनिया के साथ बुराई करते हुए वे यह समझा करते हैं कि हम संसार के साथ भलाई कर रहे हैं।

क़ौमों या जातियों ने स्वयं ही अपने आत्माभिमान को नाश कर के इन आदमियों को पैदा किया है और वे स्वयं इनसे इनके बुरे कामों के लिए नाराज़ होती हैं। इनको क़त्ल करना वैसा ही है जैसा पहले बच्चे को ख़राब कर फिर उसे सज़ा देना। इनके ज़ुल्मों का नाश करने के लिए और संसार से युद्ध को मिटाने के लिए ज़रूरत इस बात की है कि लोग वास्तविक स्थिति को अच्छी तरह से जान लें और जो बात जैसी है उसे वैसी ही समझ लें अर्थात् लोगों को अपने हृदयों में यह अङ्कित कर लेना चाहिए कि फ़ौज हत्या करने का एक ज़रिया है और फ़ौजों को बनाना तथा क़ायम रखना हत्या की तैयारी करना है।

अगर हर एक सरकार, बादशाह, राजा, महाराजा या प्रेसी-डेण्ट इस बात को समझ ले कि सेना रखना एक बुरा और निन्दनीय काम है और अगर हरएक आदमी यह समझ ले कि टैक्स का देना, जिस से फ़ौजों को तनख़्वाह मिलती है, बुरा और निन्दनीय काम है तो बादशाहों और सरकारों की वह शक्ति जिस से लोग ख़ामख़्वाह क्रोधित हो जाते हैं और जिसके कारण शासक लोग मारे जाते हैं, आप ही आप नष्ट हो जाय। इसलिए हमें बादशाहों या हाकिमों को न मारना चाहिए। हमें सिर्फ़ उन्हें यह समझा देना चाहिए कि तुम हत्यारे हो। हमें इस बात की इजाज़त ही उन्हें न देनी चाहिए कि वे हम से हत्या करा सकें। हमें हत्या करने को उनकी आज्ञा को कभी न मानना चाहिए। अगर आज लोग ऐसा नहीं कर रहे हैं तो इसका कारण यह है कि सरकार अपनी रक्षा के

लिए लोगों को माया-जाल में फँसाये हुये है। हम हत्यायें कर के कुछ नहीं कर सकते। हत्यायें करने से सरकार का यह माया-जाल और भी प्रबल हो जायगा। हम इस माया-जाल को त्याग कर के ही इस उद्देश को प्राप्त कर सकते हैं।

युद्ध से हानियां।

बहुत से लोग जो आमतौर पर बुद्धिमान हैं, धार्मिक हैं मनुष्य मात्र के साथ प्रेम और भ्रातृभाव के सिद्धान्त पर विश्वास करते हैं, हत्या को एक बड़ा भारी अपराध गिनते हैं, किसी छोटे जानवर को भी मारते हुए हिचकते हैं—वे युद्धों में बड़े उत्साह के साथ शरीक होते हैं और दूसरों के खून से अपने हांथों को रंगते हुए बड़ा अभिमान करते हैं। इनके अलावा अधिकतर लोग जो फौजों में भर्ती होते हैं मज़दूर और किसान होते हैं। वे कभी नहीं चाहते कि लड़ाइयां हों और हमें उन लड़ाइयों में शरीक होना पड़े। उन्हें अपनी इच्छा के विरुद्ध मारकाट में शरीक होना पड़ता है। वे ऐसी हालत में रख दिये जाते हैं और इस तरह से उत्तेजित किये जाते हैं कि लाचार होकर उन्हें दूसरों की इच्छाओं के अनुसार काम करना पड़ता है। पर जो लोग इन लड़ाइयों को छेड़ते हैं, इनके लिए तय्यारी करते हैं और इनके वास्ते तरकीबें सोचते हैं और मजदूरों तथा किसानों को उनमें शरीक होने के लिए लाचार करते हैं, उनकी संख्या बहुत थोड़ी है। वे मजदूरों और

किसानों के पैदा किये हुए धन को ऐशोआराम में उड़ाते हैं और निखट्टू जीवन व्यतीत करते हैं।

योरप के कुल देशों में, मजदूरों से युद्धों में शरीक होने की अपील की जाती है। अन्तर्राष्ट्रीय मामले दिन पर दिन उलझते जा रहे हैं और उनसे युद्ध होने की संभावना बनी रहती है। बिना कारण शान्तिमय देशों में चढ़ाइयां करदी जाती हैं। सब जातियों को एक दूसरे के हमले का डर बना रहता है। इन सब बातों का कारण यह है कि थोड़े से लोग अपने फ़ायदे के लिए अधिकतर लोगों को धोखे में डाले हुए हैं इसलिए जो लोग सर्वसाधारण को मारकाट और लूटपाट के काम से स्वतंत्र करना चाहते हैं उन्हें चाहिए कि वे सर्वसाधारण को बतला दें कि तुम्हें धोखा दिया जा रहा है। उन्हें सर्वसाधारण को यह भी बतलाना चाहिए कि तुम किस तरह इस धोखे से निकल सकते हो। पर योरप के बुद्धिमान और समझदार मनुष्य यह सब उपाय नहीं करते। वे सिर्फ़ शान्ति स्थापित करने के बहाने से कभी योरप के इस शहर में और कभी उस शहर में जमा होकर मेज़ के चारों ओर बैठते हैं और बड़ी गम्भीरता के साथ इस प्रश्न पर विचार करते हैं कि किस तरह उन लुटेरों को जो दूसरों को लूट कर अपनी ज़िन्दगी बसर करते हैं, यह समझाया जाय कि वे लूट-पाट का काम छोड़ कर शान्तिपूर्ण नागरिक का जीवन व्यतीत करें। वे इन तीन प्रश्नों पर भी विचार करते हैं कि क्या इतिहास, क़ानून और उन्नति के लिहाज़ से युद्ध करना अब भी ज़रूरी है, क्या युद्ध का परिणाम सिवाय हानि के और कुछ भी हो सकता है और युद्ध का प्रश्न किसी तरह हल हो सकता है।

अगर किसी को शराब पीने की बुरी आदत हो और अगर मैं उस से कहूं कि भाई अगर तुम चाहो और कोशिश करो तो इस आदत से तुम्हारा छुटकारा ज़रूर हो सकता है तो आशा है कि मेरी सलाह को सुने और शराब पीना छोड़ दे। लेकिन अगर मैं उस से कहूं कि तुम्हारे शराब पीने का सवाल बहुत ही कठिन और पेचीदा है जिसे हम विद्वान् लोग सभाओं में हल करने की कोशिश कर रहे हैं तो बहुत सम्भव है कि वह शराब पीना जारी रक्खेगा और इस बात की इन्तज़ारी में रहेगा कि देखें यह सवाल किस तरह से हल होता है। वह यह सोचेगा कि जब यह मसला तय होगा तो देखा जायगा, अभी से शराब पीना क्यों छोड़ूं। यही बात उन सब झूठे उपायों के बारे में कही जा सकती है जो लड़ाई को दुनिया से उठा देने के लिए काम में लाये जाते हैं। लोग अन्तर्राष्ट्रीय पंचायतें, शान्ति-सभायें, राष्ट्रमण्डल इत्यादि अनेक संस्थायें युद्ध को मिटाने के लिए स्थापित करते हैं पर वे उस एक उपाय को काम में नहीं लाते जो बहुत सीधासादा और बहुत ही ज़रूरी है। जो लोग यह नहीं चाहते कि संसार में लड़ाइयां हों, उन्हें चाहिए कि वे किसी तरह भी उसमें सहायता न दें। इस के लिए अन्तर्राष्ट्रीय पंचायत, शान्तिसभा इत्यादि की ज़रूरत नहीं है। ज़रूरत सिर्फ़ इस बात की है कि जो लोग धोखे में पड़े हुए हैं वे जागें और उस धोखे से निकलने की कोशिश करें। जो लोग दुनिया में लड़ाई नहीं चाहते और लड़ाई में किसी प्रकार का भी हिस्सा लेना पाप समझते हैं उन्हें चाहिए कि लड़ाई से किसी प्रकार का सरोकार न रक्खें और न लड़नेवालों को किसी प्रकार से सहायता दें। यही एक उपाय है जिस से लड़ाइयां दुनिया से मिट सकती हैं और इसी उपाय को बहुत पुराने ज़माने से इक्का दुक्का

लोग काम में लाते रहे हैं। जर्मनी, फ्रांस, रूस, इंगलैण्ड इत्यादि देशों में अनेक मनुष्य फ़ौज में भर्ती होने से इनकार करने के लिए जेलख़ानों में भेजे जा चुके हैं। रूस में "दुखोबोर" नाम के कुछ किसान रहते थे। वे अपने को इसाई कहते थे। उनकी संख्या क़रीब १५००० थी। उन लोगों ने भी सन् १८९५ में फ़ौज में काम करने से इनकार कर दिया। इस अपराध में वे सब एक साथ रूसी सरकार की आज्ञा से देश के बाहर निकाल दिये गये। उन्होंने सब तकलीफ़ें बरदाश्त कीं। पर वे फ़ौज में भर्ती होने या लड़ाई के पाप में शामिल होने के लिए कभी राज़ी न हुये।

पर वर्त्तमान समय के बुद्धिमान और सभ्य मनुष्य, जो अपने को शान्ति का हिमायती कहते हैं, इस उपाय से दूर भागते हैं और इसका नाम भी सुनना नहीं चाहते। वे कहते हैं कि सरकारों से ही इस बात की प्रार्थना की जाय या उन पर ज़ोर डाला जाय कि वे आपस में लड़ाइयां न करें। उनका कहना यह है कि सरकारों के बीच में जो ग़लत-फ़हमियाँ पैदा हो जाती हैं और जिन की वजह से लड़ाइयां छिड़ जाती हैं वे अन्तर्राष्ट्रीय पञ्चायतों से तय हो सकती हैं। पर रोना तो यह है कि सरकारें कभी यह नहीं चाहतीं कि यह ग़लत-फ़हमियां आपस में तय हों। इसके विपरीत अगर कोई ग़लत-फ़हमी नहीं रहती तो वे कोई न कोई ग़लत-फ़हमी पैदा कर लेती हैं। क्योंकि इसी बहाने से उन्हें फ़ौज खड़ी करने का मौक़ा मिलता है, जिसके ऊपर उनकी शक्ति निर्भर रहती है। इस तरह से हमारे शान्ति के हिमायती किसानों और मज़दूरों का ध्यान उस एक उपाय की ओर से हटा देते हैं जिस की ही बदौलत वे गुलामी के बन्धन से छूट सकते हैं।

सरकारें ऐसे लोगों से डरती हैं जो फ़ौज रखने के ख़िलाफ़

आन्दोलन करते हैं, जो फ़ौज में काम करने से इनकार करते हैं और जो सरकार को इसलिए टैक्स देना बन्द करते हैं कि वह रुपया फ़ौजों और लड़ाइयों में ख़र्च किया जाता है। सरकारें ऐसे लोगों से इसलिए डरती हैं और ऐसे लोगों को इसलिए कड़ी से कड़ी सज़ा देती हैं कि वे सरकार के क़ानूनों को तोड़ कर उसके रोब और धाक को मिट्टी में मिला देते हैं। पर जो लोग सरकार के क़ानूनों को मानने से इनकार करते हैं उन्हें सरकार से डरने की कोई वजह नहीं है। क्योंकि सरकार का हुक्म तोड़ने से और सरकार की फ़ौजों में काम न करने से जो सज़ायें मिलती हैं वे उस ख़तरे के बनिस्बत कुछ भी नहीं हैं जो फ़ौज में काम करने से सहना पड़ता है। सैनिक सेवा से इनकार करने पर जो बड़ी से बड़ी सज़ा मिल सकती है वह जेलख़ाना या देश-निकाला है। पर इस से वह उन ख़तरों से बच जाता है जिसका मुक़ाबला फ़ौज में काम करने और लड़ाई में जाने से करना पड़ता है। फ़ौज में भर्ती होने से अगर कभी लड़ाई छिड़ गई तो उसे लड़ाई के मैदान में जाना पड़ता है और गोली लगने से एक मिनट में उसका काम तमाम हो सकता है। लड़ाई में गोली लगने से वह ज़िन्दगी भर के लिए लूला, लँगड़ा या अन्धा हो सकता है। इसके अलावा फ़ौज में भर्ती होने से उसे ग़ुलाम की तरह रहना पड़ता है। वह न्याय अथवा अन्याय की बिल्कुल पर्वाह न करता हुआ अपने अफ़सरों की आज्ञा के अनुसार मारने या मरने के लिए जहां कहा जाता है वहीं जाने को तैयार हो जाता है। वह इस बात की बिल्कुल पर्वाह नहीं करता कि जिस पक्ष को लेकर हम लड़ रहे हैं वह न्याय का पक्ष है अथवा अन्याय का। अतएव वह सैनिक सेवा से इनकार करके न्याय और धर्म दोनों का पालन कर सकता है और इस तरह से ईश्वर व मनुष्य दोनों की सेवा कर सकता है।

मनुष्य के भीतर एक अन्तरात्मा का निवास है जो उसे सदा इस बात का संकेत दिया करती है कि उसे क्या करना चाहिए और क्या न करना चाहिए। उसके संकेतों के अनुसार चलने से उसके जीवन का परिणाम कभी बुरा नहीं हो सकता। यदि मनुष्य की अंतरात्मा उसे सैनिक सेवा करने, टैक्स देने या और किसी प्रकार से अन्यायी सरकार की सहायता करने से मना करती है तो उसे इस बात की पर्वाह न करना चाहिए कि सरकारी हुक्म न मानने से उसे तकलीफ़ उठानी पड़ेगी, जेलखाना जाना पड़ेगा, देश-निकाला सहना पड़ेगा या फांसी पर चढ़ना होगा।

लोग शिकायत करते हैं कि वर्त्तमान समय में संसार की हालत बहुत बुरी हो रही है पर ऐसा होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है जब कि हम अपनी अंतरात्मा तथा सच्चे धर्म के विरुद्ध आचरण करते हैं। हमारी अंतरात्मा और हमारा धर्म हमें यह शिक्षा देता है कि हत्या करना पाप है। हमें हमारी आत्मा और हमारा धर्म मनुष्यमात्र के साथ प्रेम करने की शिक्षा देता है तथापि हम लोग सरकारों के कहने से एक दूसरे की हत्या करने को तैयार हो जाते हैं। बतलाइए वह समाज कैसी होगी जिसमें ऐसे लोग ज्यादातर शामिल हैं?

भाइयो, जागो! उन दुष्टों की बातों को मत सुनो जो बचपन से ही तुम्हें दूसरी जातियों के विरुद्ध घृणा करने की शिक्षा देते हैं। इन लोगों की भी बातों को मत सुनो जो धर्म राजभक्ति या देशभक्ति के नाम पर तुम्हें लड़ाइयों में शामिल होने के लिए बहकाते हैं, उन लोगों के धोखे में भी मत आओ जो ऊपर से तो शान्ति २ चिल्लाते हैं पर भीतर से चाहते हैं कि मौजूदा हालत

बनी रहे । ऐसे लोगों का विश्वास मत मरो । सिर्फ़ अपनी अन्तरात्मा का विश्वास करो जो तुम्हें यह बतलाती है कि तुम न तो पशु हो और न गुलाम हो, बल्कि अपने कामों के लिए स्वतंत्र और जिम्मेदार हो, इसलिए तुम्हें न तो अपनी इच्छा से और न दूसरे स्वार्थी मनुष्यों की इच्छा से फ़ौज में भर्ती होना या लड़ाई में जाना चाहिए । ज़रा भी सोचने पर तुम्हें मालूम होगा कि तुम कैसा भयानक काम करते आ रहे हो । ज्यों ही तुम्हें इस बात का अनुभव होगा त्योंही तुम बुराइयों के साथ सहयोग करना बन्द कर दोगे । ज्योंही तुम बुराई और अन्याय के साथ सहयोग करना बन्द कर दोगे त्यों ही सब सरकारें और उनके कर्म्मचारी उसी तरह से लोप हो जांयगे जिस तरह से कि दिन की रोशनी में उल्लू लोप हो जाते हैं । जब ऐसा होगा तभी संसार में मनुष्य-प्रेम और भ्रातृभाव का आदर्श दृढ़ता के साथ स्थापित होगा ।

पञ्चम खण्ड।

ब्रह्मचर्य और विवाह।
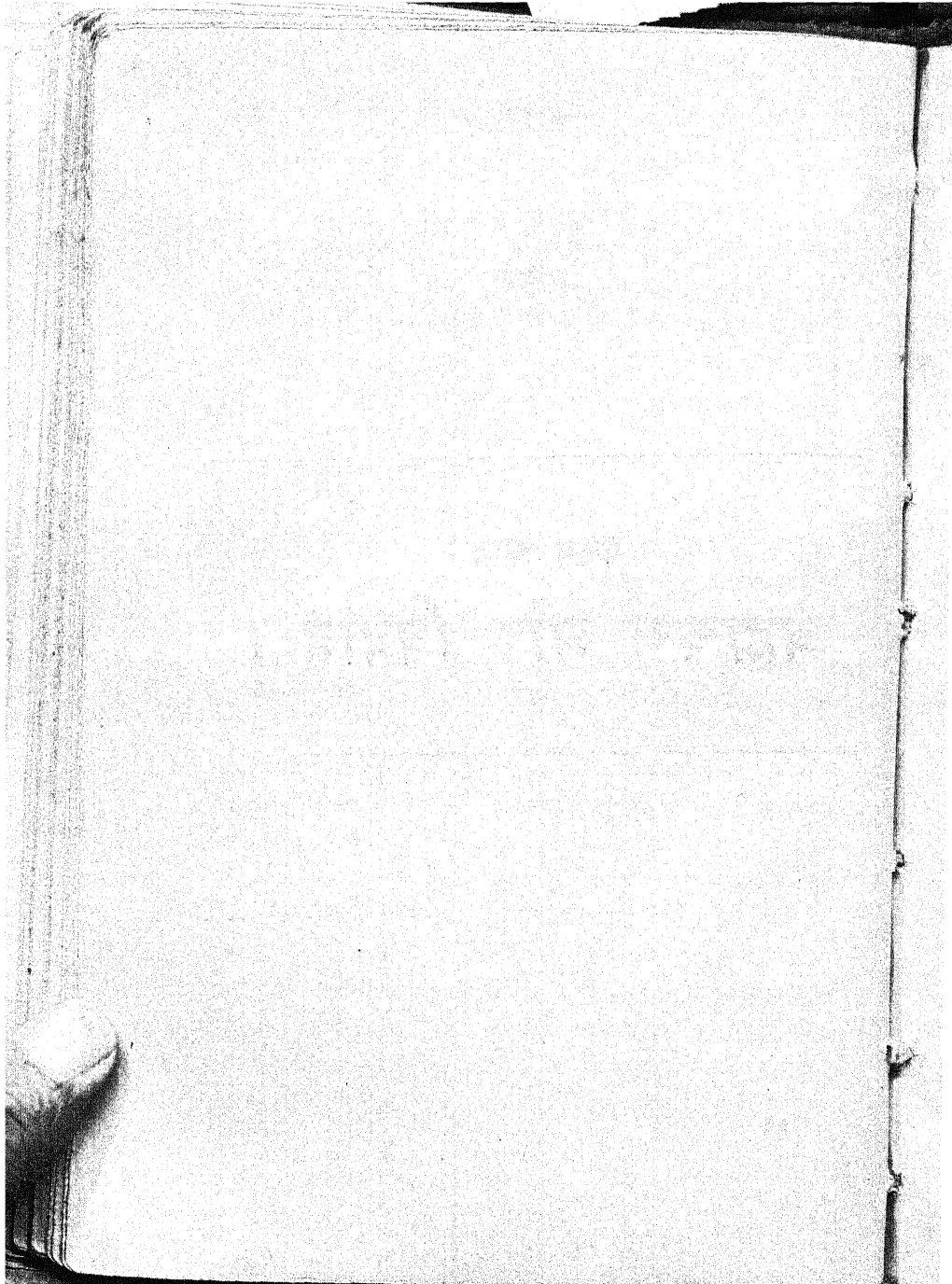
१—स्त्री पुरुषों का संबन्ध ।

इस सम्बन्ध में पहली बात जो मैं कहना चाहता हूं वह यह है कि लोगों में यह विश्वास बड़े ज़ोर के साथ फला हुआ है कि स्त्री और पुरुष का परस्पर संभोग तन्दुरुस्ती के लिए परम आवश्यक है। इस बात का समर्थन झूठा चिकित्सा-शास्त्र भी करता है। योरप के कुछ लोग तो यहांतक कहते हैं कि चूँकि विवाह का होना या विवाह करना सदा संभव नहीं है, इसलिए परस्त्री या परपुरुष के साथ संभोग करना अस्वाभाविक नहीं है।

यह विश्वास लोगों में ऐसा पक्का हो गया है और आमतौर पर ऐसा फला हुआ है कि मा बाप डाक्टरों और चिकित्सकों की सलाह से अपने बच्चों को व्यभिचार करने में उत्साहित करते हैं। सरकारें भी, जिनका कर्त्तव्य केवल नागरिकों की नैतिक उन्नति की रक्षा करना है, व्यभिचार को नियमित करती हैं अर्थात वेश्याओं और व्यभिचारिणी स्त्रियों के सम्बन्ध में क़ानून बना कर उनके घृणित व्यापार को नियम-बद्ध करती हैं, जिसमें कि वे नियम के अनुसार पुरुषों की आवश्यकताओं को पूरा करती हुई अपने शरीर और आत्मा का नाश करें।

मैं यह कहता हूं कि यह बिल्कुल अन्याय की बात है, क्योंकि जिस तरह अपनी तन्दुरुस्ती के लिए किसी दूसरे का ख़ून पीना महा अन्याय है उसी तरह अपनी तन्दुरुस्ती के लिए किसी स्त्री या पुरुष के शरीर और आत्मा का नाश करना भी महा-अन्याय है। इसलिए लोगों को इस तरह की अन्यायपूर्ण और झूठी बातों पर कभी भी विश्वास न करना चाहिए, चाहे उनका

समर्थन विज्ञान या चिकित्सा-शास्त्र के द्वारा होता हो। उन्हें समझ लेना चाहिए कि जिस संभोग का परिणाम केवल स्त्रियों को भोगना पड़ता है और जिसकी ज़िम्मेदारी से पुरुष बिल्कुल आज़ाद रहते हैं अर्थात जिस संभोग से उत्पन्न होनेवाली सन्तान के लालन-पालन का भार केवल स्त्रियों पर पड़ता है वह न्याय और धर्म के अनुकूल कभी नहीं हो सकता। इस तरह का संभोग करनेवाले पुरुष न केवल कायर हैं बल्कि मनुष्य के शरीर में पशु और राक्षस के समान हैं। इसलिए जो मनुष्य कायर और पशु की तरह जीवन नहीं बिताना चाहते उन्हें इस तरह के व्यभिचार और संभोग से अवश्य बचना चाहिए।

यदि मनुष्य पवित्रता के साथ अपना जीवन बिताना चाहता है और अपनी इन्द्रियों को अपने वश में रखना चाहता है तो उसे प्राकृतिक जीवन बिताना चाहिए। उसे न तो शराब पीना चाहिए, न मांस खाना चाहिए, न अधिक भोजन करना चाहिए और न परिश्रम तथा थकावट से भागना चाहिए। उसे परस्त्री का विचार स्वप्न में भी न लाना चाहिए। से परस्त्री के सम्बन्ध में वैसा ही भाव रखना चाहिए जैसा कि वह अपनी माता या बहिन के सम्बन्ध में रखता है। उसे सैकड़ों दाहरण इस बात के मिल सकते हैं कि पवित्रता और ब्रह्मचर्य के साथ जीवन बिताना न केवल संभव है बल्कि उससे तन्दुरुस्ती को बड़ा लाभ पहुंच सकता है।

इस सम्बन्ध में दूसरी बात जो मैं कहना चाहता हूं वह यह है कि हमारी शौक़ीन समाज में यह विश्वास फैला हुआ है कि स्त्री पुरुष का परस्पर संभोग न केवल तन्दुरुस्ती के लिए आवश्यक है बल्कि जीवन का एक बड़ा भारी सुख और बरकत है। इस

विश्वास के कारण लोगों में पातिव्रत या एक-पत्नी-व्रत का भाव बहुत ढीला हो गया है, और लोग व्यभिचार को उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगे हैं। यह बुराई समाज में बहुत जोर पकड़ रही है और इसका दूर होना बहुत जरूरी है। इसे दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि स्त्री-पुरुषों के प्रेम या स्त्री-पुरुषों के सम्बन्ध के बारे में जो विचार लोगों में फैला हुआ है वह बदल दिया जाय और लोगों को अपने माता पिता के द्वारा बचपन से ही यह शिक्षा दी जाय कि विवाह के पहले और विवाह के बाद भी स्त्री-पुरुषों का परस्पर प्रेम और परस्पर संभोग कोई उच्च और प्रशंसनीय अवस्था नहीं बल्कि पशुओं की सी घृणित और निन्दनीय दशा है। इसी तरह से पातिव्रत या एक-पत्नी-व्रत का भंग करना समाज में एक बड़ा अपराध गिना जाना चाहिए और उसकी ओर कभी उपेक्षा न करनी चाहिए। कम से कम उसे उतना ही बड़ा अपराध गिनना चाहिए, जितना कि चोरी करना या बेईमानी से किसी का माल हड़प करना गिना जाता है।

इस सम्बन्ध में तीसरी बात जो मैं कहना चाहता हूं, वह यह है कि स्त्री-पुरुष के परस्पर प्रेम और परस्पर संभोग के बारे में ऐसे झूठे विचार लोगों में फल रहे हैं कि वे सन्तानोत्पत्ति को विवाह का उद्देश नहीं बल्कि उसे अपने विषय-भोग के मार्ग में एक बड़ी रुकावट मानते हैं। अतएव डाक्टरों और चिकित्सकों की सलाह से वे ऐसे कृत्रिम उपाय काम में लाते हैं जिनसे स्त्रियां सन्तानोत्पत्ति की शक्ति से रहित हो जाती हैं। विवाहित और अविवाहित दोनों ही प्रकार के स्त्री-पुरुष इस तरह के कृत्रिम उपाय स्वतंत्रता के साथ काम में लाकर सन्तानोत्पत्ति की जिम्मेदारी से बच जाते हैं। मेरी समझ में कृत्रिम उपायों के द्वारा सन्तानोत्पत्ति बन्द करना अनु-

चित और अन्याय-पूर्ण बात है, क्योंकि ऐसा करने से एक तो मनुष्य अपनी सन्तान के बारे में उन फ़िक्रों और ज़िम्मेदारियों से आज़ाद हो जाता है जिनके बिना स्त्री-पुरुषों का परस्पर प्रेम और परस्पर-संभोग केवल पशुओं का कार्य्य रह जाता है। दूसरे, ऐसा करना एक तरह से मनुष्य-हत्या का घृणित पाप करना है।

वर्तमान समय के बहुत से नराधम उस समय भी स्त्रियों के साथ संभोग कर के अपनी पाशविक तृष्णा शान्त करते रहते हैं जब वे गर्भवती रहती हैं या जब वे अपने बच्चे को दूध पिलाने की ज़िम्मेदारी से नहीं छूटतीं। ऐसा करने से स्त्रियों की शारीरिक और आत्मिक दोनों प्रकार की शक्तियां नष्ट हो जाती हैं। इन सब पापों से बचने के लिए मनुष्य को चाहिए कि वह ब्रह्मचर्य और पवित्रता के साथ अपना जीवन व्यतीत करता हुआ अपने जन्म को सार्थक बनाये।

इस संबन्ध में चौथी बात जो मैं कहना चाहता हूं वह यह है कि हमारी समाज में लोग अपनी सन्तानों को इस तरह से लालन, पालन करते हैं कि वे मनुष्य-जीवन के प्रश्नों को हल करने के योग्य नहीं होते। वे जानवरों के बच्चों की तरह पाले पोषे जाते हैं। उनके माता-पिता की ख़ास फ़िक्र इस बात में नहीं रहती कि वे योग्य मनुष्य बनें बल्कि इस बात में रहती है कि वे ख़ूब खायें पियें, ख़ूब मोटे ताज़े हों और ख़ूब साफ़ सुन्दर रहें। इस तरह से पाले पोषे गये बालकों और बालिकाओं में समय से पहिले ही, विषय-भोग की इच्छा जागृत हो जाती है जिस से युवावस्था को पहुंचते ही उनका मन और शरीर कुवासनाओं और दुराचारों की ओर प्रवृत्त हो जाता है। उन्हें ऐसे कपड़े पहिनने को दिये जाते हैं, ऐसी पुस्तकें पढ़ने को दी जाती हैं, ऐसे नाच तमाशे दिखाये जाते

हैं और ऐसे कामोत्तेजक भोजन कराये जाते हैं कि उनकी यह कुवासना और कुप्रवृत्ति और भी बढ़ जाती है। इसका नतीजा यह होता है कि न जाने कितने पुरुष और स्त्रियां जवानी के जोश में बर्बाद हो जाते हैं। इसलिए मनुष्यों को चाहिए कि वे अपनी सन्तानों को पशुओं की तरह नहीं बल्कि मनुष्यों की तरह पालें पोषें और उन्हें योग्य तथा सदाचारी व्यक्ति बनायें।

इस सम्बन्ध में पांचवीं बात जो मैं कहना चाहता हूं वह यह है कि हमारी समाज में स्त्री-पुरुषों का प्रेम और विवाह बड़े महत्व की बात गिनी जाती है और उसे लोग अपने जीवन का सब से बड़ा उद्देश मानते हैं। उस पर कवियों ने न जाने कितने काव्य लिखे हैं और उसकी प्रशंसा में अपनी न जाने कितनी काव्य-शक्ति खर्च की है। इसी का यह परिणाम है कि नव-युवक स्त्री और पुरुष अपने जीवन का उत्तम से उत्तम भाग इसी प्रेम और विवाह की आकांक्षा तथा यौवन-सुख की लालसा में व्यर्थ गंवा देते हैं। इसी के कारण बहुत सी ऐशो-आराम की फ़ज़ूल चीज़ें बनाई जाती हैं। इसी के कारण बहुत सी स्त्रियों का सतीत्वरूपी रत्न नष्ट हो जाता है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह स्त्री-पुरुष के परस्पर प्रेम, विवाह और विषय-भोग को ऊंची निगाह से नहीं बल्कि नीची निगाह से देखे और यह समझे कि विषय-भोग और विवाह उसे नीचे गिरानेवाली चीज़ें हैं और उनसे उसकी उद्देश-प्राप्ति में बड़ी भारी रुकावट पड़ती है।

मैंने जो कुछ ऊपर लिखा है उसका सारांश यह है कि विवाह के पहले या विवाह के बाद किसी प्रकार का भी व्यभिचार या दुराचार न करना चाहिए, कृत्तिम उपायों से सन्तानोत्पत्ति न

रोकना चाहिए, अपनी सन्तानों को खिलौनों की तरह न सजाना चाहिए, उन्हें शौक़ीन या आलसी जीवन बिताने की शिक्षा न देनी चाहिए, विषय-भोग को ऊंची निगाह से न देखना चाहिए, और इस बात पर कभी भी विश्वास न करना चाहिए कि विषय-भोग स्त्री-पुरुषों की तन्दुरुस्ती के लिए आवश्यक है। संक्षेप में यह कि पवित्र और ब्रह्मचर्य-पूर्ण जीवन सदा व्यभिचार या दुराचार्य-पूर्ण जीवन से अच्छा है। पर यह कहा जाता है कि—"यदि ब्रह्मचर्य विवाह की अपेक्षा अच्छा है तो सब मनुष्यों को ब्रह्मचारी ही रहना उचित है, क्योंकि दो बातों में जो अधिक उत्तम हो उसी का पालन मनुष्य को करना चाहिए। किन्तु सब मनुष्य यदि ब्रह्मचर्य का पालन करने लगें तो मनुष्यजाति का अस्तित्व ही जाता रहेगा। क्या मनुष्यजाति का उद्देश यही है कि वह संसार से उच्छिन्न हो जाय?"

पर वर्त्तमान समय के मनुष्यों के लिए यह कोई नई बात नहीं है कि मनुष्यजाति एक न एक दिन संसार से लोप हो जायगी। हरएक धर्म के लोग इस बात पर विश्वास करते हैं कि एक न एक दिन प्रलय आयेगा। इसलिए धार्मिक पुरुषों के लिए यह कोई नई बात नहीं है। विज्ञान-वेत्ता लोग भी यह कहते हैं कि सूर्य धीरे धीरे ठण्डा हो रहा है, इसलिए एक न एक दिन संसार और मनुष्यजाति का नाश हो जायगा। अतएव ब्रह्मचर्य का खण्डन जो लोग इस बिना पर करते हैं कि यदि सब लोग ब्रह्मचर्य का पालन करने लगेंगे तो मनुष्यजाति का लोप हो जायगा वे ग़लती करते हैं। उनका यह कहना ऐसा ही है जैसा कोई कहे कि यदि सब लोग केवल अपनी भलाई करने या केवल अपना स्वार्थ सिद्ध करने की अपेक्षा अपने मित्र, शत्रु, पशु, पक्षी इत्यादि सबों की भलाई में

अपनी पूरी शक्ति से लगेंगे तो मनुष्यजाति का नाश हो जायगा।

हरएक धर्म का सब से बड़ा उद्देश यह है कि ईश्वर के साथ और मनुष्यमात्र के साथ प्रेम किया जाय। पर विवाह और विषय-भोग ईश्वर-भक्ति तथा मनुष्य-सेवा में बड़ी भारी रुकावट है। अतएव विवाह करना सच्चे धर्म के अनुसार एक बड़ा पाप है। वह आत्मिक अध:पतन का एक बड़ा चिन्ह है। जो लोग इस विचार से विवाह के बन्धन में पड़ते हैं कि मनुष्यजाति की रक्षा और उस की संख्या की वृद्धि करना हमारा धर्म है उन्हें चाहिए कि वे उन करोड़ों बच्चों की रक्षा और सेवा करें जो हमारे चारों ओर भोजन और वस्त्र के बिना नाश को प्राप्त हो रहे हैं।

कुछ लोगों का यह कहना है कि ब्रह्मचर्य का जो आदर्श आप हमारे सामने रखते हैं वह इतना ऊंचा है कि उसके अनुसार आचरण करना सम्भव नहीं है, इसलिए इस आदर्श को त्याग देना चाहिए। इसके उत्तर में मुझे सिर्फ़ यही कहना है कि जीवन के लिए ऊंचा से ऊंचा आदर्श ही श्रेष्ठ है, क्योंकि जब आदर्श अपनी कमज़ोरी के मुताबिक़ एक बार नीचा कर दिया जाता है तब वह बराबर नीचा ही होता जाता है और फिर कभी ऊंचा नहीं हो सकता। इस के अलावा आदर्श जब ऊंचा रहेगा तो मनुष्य यदि उस आदर्श तक पहुंचने की कोशिश करेगा तो कुछ दूर तक तो अवश्य पहुंचेगा। मसल भी है कि "जो आकाश को अपने बाण से छेदना चाहता है उसका बाण कम से कम किसी पेड़ की चोटी तक तो ज़रूर पहुंचेगा।"

अब प्रश्न यह उठता है कि "जिस बालक या बालिका का जीवन पवित्र है—जो नव-युवक स्त्री या पुरुष ब्रह्मचर्य के साथ

जीवन बिता रहा है, उसे क्या करना चाहिए ?" इस प्रश्न का उत्तर यही है कि उसे लोभ, मोह और काम उत्तेजित करनेवाली वस्तुओं से बचना चाहिए, इन्द्रियों के वश में न आना चाहिए और ईश्वर तथा मनुष्य दोनों की सेवा में अपनी कुल शक्ति और सामर्थ्य लगाने के लिए अपने विचारों को अधिक से अधिक पवित्र बनाना चाहिए।

दूसारा प्रश्न यह उठता है कि "उन नवयुवक स्त्री और पुरुषों को क्या करना चाहिए जो इन्द्रियों के मोहजाल में फंस गये हैं, अनुचित प्रेम के विचारों में मग्न रहते हैं, किसी के प्रेम में पड़ गये हैं और इस कारण ईश्वर तथा मनुष्य की सेवा यथोचित रूप से नहीं कर सकते ?" इसके उत्तर में यही कहना है कि जो हो गया सो हो गया पर आगे से उन्हें पाप में न गिरना चाहिए और अपने विचारों को अधिक से अधिक पवित्र बनाना चाहिए जिस में कि वे ईश्वर तथा मनुष्य की सेवा पूर्णरूप से कर सकें।

तीसरा प्रश्न यह उठता है "उन लोगों को क्या करना चाहिए जो प्रलोभनों में पड़कर पतित हो गये हैं ?" इसका उत्तर यह है कि वे इस पतन को एक बड़ी चेतावनी के रूप में समझें और विषय-भोग में पड़ कर अपने को और भी पतित न करते जांय। उन्हें चाहिए कि वे आगे से फिर किसी प्रलोभन में न पड़ें और विवाह कर के पवित्र जीवन बिताने का यत्न करें।

चौथा प्रश्न यह है कि "उन विवाहित स्त्री पुरुषों को क्या करना चाहिए जो अपने बाल-बच्चों का पालन करते हुए ईश्वर और मनुष्य की थोड़ी बहुत सेवा परिमित रूप से करते हैं ?" इसका उत्तर भी यही है कि पति और पत्नी दोनों को प्रलोभनों से

बचना चाहिए, अपने जीवन को पवित्र बनाना चाहिए, और एक दूसरे को भाई बहिन की तरह देखना चाहिए। ऐसा करने से ही वे ईश्वर और मनुष्य दोनों की सेवा यथोचित रूप से करते हुए अपने जन्म को सार्थक बना सकते हैं।

२—फुटकर विचार।

मनुष्य चाहे विवाहित हो या अविवाहित उसे हमेशा, हर हालत में, पवित्र और सदाचारी जीवन बिताना चाहिए। यदि वह पूर्ण ब्रह्मचारी रहे तो इससे बढ़कर कोई बात नहीं है। पर वह यदि अपनी कामेन्द्रिय को पूरी तरह से अपने बश में नहीं रख सकता तो उसे जहांतक हो सके वहांतक बहुत ही कम विषय-भोग में प्रवृत्त होना चाहिए। कम से कम उसे विषय-भोग को सुख की नज़र से न देखना चाहिए। मैं समझता हूं कि कोई भी सच्चा और गम्भीर मनुष्य इस प्रश्न को दूसरी दृष्टि से नहीं देख सकता।

काम-विकार संसार में बड़ी बड़ी विपत्तियों का कारण है। इस काम-विकार को रोकना और दबाना तो दूर रहा उसे हम अपनी चेष्टाओं और कार्यों से अनेक उपायों के द्वारा और भी बढ़ाते हैं। और जब हमें इसके कारण दुख मिलता है तो हम रोते और चिल्लाते हैं।

हर एक स्त्री और पुरुष का आदर्श यह होना चाहिए कि वह पूर्ण ब्रह्मचर्य के साथ पवित्र से पवित्र जीवन बिताये। जो व्यक्ति ईश्वर और मनुष्य दोनों की सेवा करना चाहता है वह शराब पीने की आदत से कोसों दूर रहेगा, उसी तरह से जो व्यक्ति ईश्वर और मनुष्य की सेवा में अपना सारा जीवन लगाना चाहता है वह विवाह से कोसों भागेगा। पर पवित्र जीवन बिताने के रास्ते में कई मंज़िलें हैं। इसलिए जो लोग इस प्रश्न का उत्तर चाहते हैं कि हम विवाह करें या न करें उन्हें सिर्फ़ यही उत्तर दिया जा सकता है कि "यदि तुम पूर्ण ब्रह्मचर्य के आदर्श को नहीं रख सकते और उसके अनुसार अपने जीवन को नहीं बना सकते तो विवाह के अपवित्र मार्ग के द्वारा ही चलकर उस आदर्श तक पहुंचने की कोशिश करो।"

काम-विकार और विषयासक्ति से बचना बड़ा कठिन है। काम-विकार और विषय-भोग की इच्छा से लड़ना शेर का सामना करना है। विरले ही इस लड़ाई में पूरे कामयाब होते हैं। बहुत छोटी बाल्यावस्था और बहुत बुढ़ापे को छोड़ कर और कोई ऐसी दशा या अवस्था नहीं है जिसमें मनुष्य इस प्रबल कामेच्छा से रहित हो। इसलिए जो इस प्रबल काम-शत्रु से बचना चाहता है उसे कठिनाइयों से निरुत्साह न होना चाहिए। उसे प्रतिक्षण ऐसा उपाय करना चाहिए जिस से वह इस प्रबल शत्रु को सदा के लिए पछाड़ सके। उसे हर समय किसी न किसी उपयोगी काम में लगे रहना चाहिए और उन सब बातों से दूर रहना चाहिए जो काम-वासना या काम-लालसा को उत्तेजित और प्रबल करती हैं। यह एक उपाय है। दूसरा उपाय यह है कि यदि तुम इस

लड़ाई में काम-शत्रु को नहीं पछाड़ सकते तो विवाह कर लो अर्थात् अपने मन के अनुकूल स्त्री को चुन कर उसके साथ आजन्म निर्वाह करो और अपने मन में निश्चय कर लो कि यदि हम पतित होंगे तो इसी के साथ होंगे और इसके साथ रहते हुए पवित्र जीवन बिताने की भरपूर कोशिश करेंगे । इसके सिवाय और कोई तरीक़ा नहीं है। इसके अलावा इन दोनों उपायों को सफलता के साथ काम में लाने के लिए उसे ईश्वर की ओर ध्यान लगाना चाहिए। तुम जितना ही ईश्वर में ध्यान लगाओगे उतना ही पवित्र जीवन बिताने में तुम्हें सहायता मिलेगी। एक बात और, यदि तुम किसी कारण से अपने को वश में न रख सको और काम-शत्रु के पंजे में फँस जाओ तो मत समझो कि तुम हमेशा के लिए पतित हो गये। मत ख्याल करो कि अब हम पतित हो गये और अब हमारा उद्धार नहीं हो सकता। नहीं, यह बात नहीं है। यदि एक बार पतन हो गया तो उस से निरुत्साह मत हो, बल्कि अपने को पवित्र बनाने की और भी ज़ोर के साथ कोशिश करो।

यदि मनुष्य आत्मिक और पवित्र जीवन बिता रहा है तो उसके लिए किसी के प्रेम में पड़ना और विवाह करना ऊंचे आदर्श से गिर जाना है, क्योंकि प्रेम में पड़ने तथा विवाह करने पर उसे अपनी शक्ति का बहुत बड़ा हिस्सा अपनी प्रेमपात्र, पत्नी और बाल-बच्चों पर ख़र्च करना पड़ेगा। किन्तु यदि वह अपवित्र और पशुओं की तरह जीवन बिता रहा है तो विवाह करना उसके लिए उन्नत और पवित्र बनने का एक द्वार होगा।

मैं यह मानता हूं कि विवाहित पति-पत्नी का परस्पर सम्भोग अनुचित और पापकर्म नहीं है, पर इस सम्बन्ध में कुछ लिखने के पहले मैं इस प्रश्न पर और भी विचार करना चाहता हूं। मेरा यह मत है कि केवल सुख पाने और काम-तृष्णा शान्त करने के लिए अपनी स्त्री के साथ भी विषय-भोग करना पाप है। वही विषय-भोग उचित और धर्म के अनुकूल है जो सन्तान-प्राप्ति के लिए किया जाता है, जिस तरह से कि वही भोजन उचित और धर्मानुकूल है जिससे मनुष्य अपने भाइयों और पड़ोसियों की सेवा करने के योग्य हो सकता है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि सन्तानोत्पत्ति के द्वारा मनुष्य-जाति को लुप्त होने से बचाने के लिए विवाह आवश्यक है। पर यदि लोग केवल सन्तानोत्पत्ति के उद्देश से विवाह करते हैं तो उन के लिए यह बहुत ही जरूरी है कि वे इस तरह से अपनी सन्तानों को शिक्षा दें कि जिस में वे दूसरों का खून चूसनेवाले या दूसरों पर गुज़ारा करनेवाले न होकर ईश्वर और मनुष्य दोनों की सच्ची सेवा करनेवाले बनें। इसके लिए यह जरूरी है कि वे दूसरों के परिश्रम से नहीं बल्कि अपने परिश्रम से गुज़ारा करने की शक्ति रक्खें अर्थात् वे दूसरों से जितना लेते हैं उससे अधिक देने की ताक़त उनमें हो। पर लोगों में यह ग़लत ख्याल फैला हुआ है कि मनुष्य को तभी विवाह करना चाहिए जब वह दूसरों की गर्दन पर अच्छी तरह से जम कर बैठ गया हो अर्थात् जब उसके पास ज़िन्दगी बसर करने का काफ़ी ज़रिया हो। काफ़ी ज़रिया से लोगों का मतलब यही है कि जिस से वह किसी तरह से धन कमा कर ऐशो-आराम की ज़िन्दगी बिता सकता हो। किन्तु मेरा मत इसके विपरीत है। मेरी

राय में सिर्फ उसी को विवाह करना चाहिए जो बिना किसी ज़रिये के अपनी ज़िन्दगी बिताने और अपनी सन्तान को शिक्षा देने की योग्यता रखता हो। ऐसे ही माता-पिता अपनी सन्तान को अच्छी शिक्षा दे सकते हैं।

विवाह करने के पहले एक बार दो बार नहीं बल्कि सैकड़ों बार सोच लो तब विवाह की बेड़ी में अपना पैर डालो। मनुष्य तभी मरता है जब वह किसी उपाय से भी नहीं बच सकता। उसी तरह से मनुष्य को तभी विवाह करना चाहिए जब वह किसी उपाय से भी न बच सके।

जो लोग विवाह से बच सकते हैं पर अभाग्य से विवाह कर लेते हैं वे उन लोगों की तरह हैं जो पहले से बिना ठोकर खाये हुए मुँह के बल गिर पड़ते हैं।

हर एक मनुष्य को अपने भरसक इसी बात की कोशिश करनी चाहिए कि वह विवाह न करे। लेकिन विवाह कर लेने पर उसे चाहिए कि वह अपनी स्त्री के साथ भाई बहिन की तरह रहे।

जानवर तभी विषय-भोग करते हैं जब उनकी इच्छा सन्तान उत्पन्न करने की होती है। पर हम लोग, जो अपने को सभ्य और बुद्धिमान् समझते हैं, उन पशुओं से भी गये बीते हैं। क्योंकि हम जब चाहते हैं तभी विषय-भोग में प्रवृत्त हो जाते हैं। बल्कि हम लोग

तो यहांतक विश्वास करते हैं कि विषय-भोग मनुष्य के लिए अत्यन्त आवयश्क है। इसी कारण हम बेचारी स्त्रियों को अपनी काम-तृष्णा शान्त करने का एक ज़रिया बनाये हुए हैं।

ब्रह्मचर्य और इन्द्रिय-निग्रह हमारा आदर्श होना चाहिए और उसी आदर्श तक पहुँचने के लिए हममें से हरएक को प्रयत्न करना चाहिए। हम जितना ही नज़दीक उस आदर्श के पहुँचेंगे उतनी ही तरक्की और भलाई हमारी होगी। हम विषय-भोग में पड़कर नहीं बल्कि पवित्रता और ब्रह्मचर्य के साथ जीवन बिताकर ईश्वर और मनुष्य दोनों की सेवा कर सकते हैं।

यह ग्रन्थमाला—हिन्दी भाषा में अद्वितीय है।

यह ग्रन्थमाला—अच्छे अच्छे ग्रन्थ प्रकाशित करती है।

यह ग्रन्थमाला—नैतिक ज्ञान का दिग्दर्शन कराती है।

यह ग्रन्थमाला—महान्-पुरुषों की कृतियां प्रकाशित करती है।

यह ग्रन्थमाला—सामाजिक, धार्मिक और नैतिक विषयों पर अच्छे और उपयोगी ग्रन्थ प्रकाशित करती है, और करेगी।

एक बड़ी रियायत।

यदि आप 'प्रताप-पुस्तक-माला' के स्थायी-ग्राहक बन जांय तो आप को माला की सभी पुस्तकें पौने मूल्य में घर बैठे मिल जाया करें। स्थायी ग्राहक बनने के नियम ये हैं:—

१—स्थायी ग्राहकों को प्रारम्भ में केवल १) रुपया "प्रवेश फ़ी" भेजना होती है।

२—इन ग्राहकों को माला की जो पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और जो आगे प्रकाशित होनेवाली हैं; सभी पौने मूल्य पर मिलेंगी, अर्थात् एक रुपये की पुस्तक बारह आने में मिलेगी।

३—पहले की प्रकाशित पुस्तकों को लेना न लेना ग्राहक की इच्छा पर है। परन्तु, वे पुस्तकें, जो भविष्य में प्रकाशित होंगी, अवश्य लेना पड़ेंगी।

४—माला की नई पुस्तक प्रकाशित होने के एक सप्ताह पूर्व इस प्रकार की एक सूचना ग्राहकों को दे दी जाती है कि, "माला की अमुक नाम की पुस्तक चौथाई मूल्य कम कर के इतने मूल्य से वी० पी० द्वारा अमुक ता० तक भेजी जावेगी।"

५—दो बार वी० पी० वापस आने पर ग्राहक का नाम ग्राहक-श्रेणी से काट दिया जायगा और "प्रवेश-फ़ी" से डाक महसूल काट लिया जायगा और ग्राहक का नाम रजिस्टर से काट दिया जायगा।

६—यदि कोई सज्जन अपना नाम माला के ग्राहकों से स्वयं कटाना चाहेंगे तो उनका प्रवेश फ़ी का १) रुपया उन्हें लौटा दिया जायगा।

इस समय तक इस पुस्तकमाला में जो पुस्तकें निकल चुकी हैं उनकी सूची नीचे दी जाती है—

प्रताप-पुस्तक-माला की १ली पुस्तक।

मेरे जेल के अनुभव।

यह पुस्तक, कारागार को तपोभूमि माननेवाले महात्मा गांधी की लिखी हुई है। इसमें उन्होंने अपने तीन वार जेल में रहने के अनुभव बड़े सरल और स्वाभाविक ढंग से लिखे हैं। दो संस्करण पुस्तक के हो चुके हैं मू० ।=)

प्रताप-पुस्तक-माला की २री पुस्तक।

देवी जोन।

फ्रान्स देश को अंग्रेजों की पराधीनता से छुड़ानेवाली वीर बाला 'जोन आफ़ आर्क' का जीवन चरित्र है। पुस्तक हाथ में लेते ही वीर रस की सजीव मूर्ति आँखों के सामने आ जाती है। इस की भूमिका श्रीयुत गणेशशङ्कर विद्यार्थी ने लिखी है। पुस्तक के टाइटिल पर अंग्रेजों द्वारा देवी 'जोन' को जीते जी चिता में जलाये जाने का एक करुणामय रङ्गीन चित्र है।

प्रताप-पुस्तक-माला की ३री पुस्तक।

भारत के देशी राष्ट्र।

अपने ढङ्ग की हिन्दी में यह अकेली पुस्तक है। यदि आप देशी राज्यों, और उनका ईस्ट इण्डिया कम्पनी और वर्त्तमान बृटिश गवर्नमेण्ट से जो सम्बन्ध है, उसके विषय में कुछ ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, तो इस पुस्तक को पढ़िये। इसको मर्यादा-सम्पादक श्रीयुत सम्पूर्णानन्दजी बी० एस० सी० ने लिखा है। उनकी इस पुस्तक की कितने ही समाचार-पत्रों ने खूब प्रशंसा की। मू० ||||) बारह आने।

प्रताप-पुस्तक-माला की ४थी पुस्तक।

राष्ट्रीय वीणा (प्रथम भाग)

'प्रताप' के भाग १ और २ में प्रकाशित देश-भक्ति-पूर्ण सुललित कविताओं का संग्रह। मू० ||=) दस आने।

प्रताप-पुस्तक-माला की ५वीं पुस्तक।

जर्मन जासूस की रामकहानी।

इस पुस्तक का दूसरा नाम है 'जर्मन युद्ध विभाग के गुप्त रहस्य'। यूरोप में राजनैतिक जासूसी कितनी बढ़ चढ़ कर होती है और राजनैतिक जासूस बड़े बड़े राजकीय मामलों को कैसा सुलझाते और उलझाते हैं, इसका पता जर्मन जासूस डा० ग्रेव्ज़ की इस रामकहानी से लग सकता है। हिन्दी में इस पुस्तक का यह अत्यन्त सरल और रोचक अनुवाद है। मू० |-) पांच आने।

प्रताप-पुस्तक-माला की ६ठी पुस्तक।

युद्ध की कहानियां।

इस पुस्तक में युद्ध सम्बन्धी सात कहानियां हैं। ये इतनी रोचक और देश-भक्ति की भावना से परिपूर्ण हैं कि इस पुस्तक के

थोड़े ही दिनों में तीन संस्करण निकल गये। इस रोचक पुस्तक का मूल्य ।) चार आने।

प्रताप-पुस्तक-माला की ७वीं पुस्तक।

कृष्णार्जुन युद्ध (नाटक)।

इसके लेखक प्रसिद्ध हिन्दी कवि कर्मवीर के सम्पादक माखनलाल चतुर्वेदी हैं। चतुर्वेदी जी की कवितायें 'भारतीय आत्मा' के नाम से प्रकाशित होती हैं। जिन लोगों ने 'भारतीय आत्मा' की कवितायें पढ़ी हैं वे कह सकते हैं कि उनमें मुर्दों में भी जान डाल देने की कितनी ज़बर्दस्त ताक़त है। इन्हीं मनस्वी कवि की लेखनी से यह नाटक निकला है। निकलने से पहले ही इस नाटक ने अच्छी ख्याति प्राप्त कर ली थी। पहले पहल यह नाटक जबलपुर के हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के अवसर पर खेला गया था। उस अवसर पर एकत्रित विद्वान्-मण्डली ने उसे बहुत पसन्द किया था। नाटक सचमुच बहुत शिक्षा-प्रद और भावोत्पादक है, और इस समय तक अनेक रङ्गमञ्चों पर खेला जा चुका है। मू० ॥=) दस आना।

प्रताप-पुस्तक-माला की ८वीं पुस्तक।

भीष्म (नाटक)।

यह नाटक है। इसके लेखक हैं, हिन्दी के प्रसिद्ध गल्प-लेखक पं० विश्वम्भर नाथ कौशिक। बहुत सरल भाषा में लिखा गया है। कई नाटक कम्पनियां इसे खेल चुकी हैं। मूल्य ॥) आठ आना।

प्रताप-पुस्तक-माला की ९वीं पुस्तक।

उद्योगी पुरुष।

इस पुस्तक में संसार के नौ प्रसिद्ध,उद्योगी पुरुषों के जीवन चरित्र हैं। नवयुवकों में इसके पढ़ने से आगे बढ़ने और उन्नति करने की

विशेष स्फूर्ति उत्पन्न होगी। राष्ट्रीय-शाला के कोर्स में हो सकती है। मूल्य ॥=) दस आने।

प्रताप-पुस्तक-माला की १०वीं पुस्तक।

रूस का राहु।

इस पुस्तक में इतिहास और उपन्यास दोनों का मज़ा मिलेगा। रूस में 'रासपुटिन' नाम का एक बड़ा प्रभावशाली, परन्तु साथ ही, अत्यन्त दुराचारी, धर्माचार्य हो गया है। रूस के सम्राट निकोलस और उनकी सम्राज्ञी पर इस आदमी ने ऐसी जादू की लकड़ी फेरी थी कि वह उन्हें जिधर घुमा देता उधर वे घूम जाते। अन्त में, उसके इस प्रभाव से रूस भर परेशान हो उठा, और रूस के उद्धार के लिए कुछ लोगों ने मिल कर उसका बध कर डाला। इसी रासपुटिन का पूरा हाल इस पुस्तक में है। इस पुस्तक को पढ़ कर आप यह जानेंगे कि किस प्रकार रासपुटिन ने धर्म्म की ओट में शिकार खेला, अनाचार और व्यभिचार किया, और रूस की जड़ पर कुठाराघात चलाया। टाइटिल पर रासपुटिन का चित्र है। मूल्य ।=) छ आना।

प्रताप-पुस्तक-माला की ११वीं पुस्तक।

श्रीकृष्ण चरित्र।

भगवान श्रीकृष्ण के इस चरित्र का प्रसिद्ध हिन्दी लेखक ठाकुर सूर्य्यकुमार वर्म्मा ने बङ्गाल के महाकवि नवीनचन्द्र सेन के महाकाव्यों से सङ्कलित किया है। पूर्वस्मृति, सौन्दर्य,नारीधर्म,सुख-तत्व,सम्मेलन,महाभारत,छाया,अभिशाप,महाप्रस्थान,प्रायश्चित् और भविष्यत ये ग्यारह सुन्दर और विचारपूर्ण अध्याय इस पुस्तक में हैं। इस पुस्तक को पढ़ कर आप भगवान श्रीकृष्ण के जीवन पर कहीं अधिक गहरी दृष्टि से देखने में समर्थ होंगे मूल्य ।=) छ आ०

प्रताप-पुस्तक-माला की १२वीं पुस्तक।

त्रिशूल तरंग।

जिन के जी में लहर है, जायं जीवन-जङ्ग में।
धो लें वे पहले हृदय, तरल त्रिशूल-तरङ्ग में॥

कविवर त्रिशूल की चुनी हुई कविताओं का संग्रह। प्रत्येक कविता हृदय को हिला देगी। सचित्र टाइटिल पेज। मूल्य ॥=)

प्रताप-पुस्तक-माला की १३वीं पुस्तक।

चेतसिंह और काशी का विद्रोह।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी और उस के उस समय के भारतीय गवर्नर जेनरेल वारेनहेस्टिंग्स ने जो जो अन्याय किये, और उनके साथ जो जो चालें चलीं, उनका ऐतिहासिक आधार पर अच्छा बर्णन, मर्यादा-सम्पादक श्रीयुत सम्पूर्णानन्द जी ने इस पुस्तक में अपनी सरल भाषा में किया है। इतिहास-प्रेमियों के लिए बड़े काम की चीज़ है। मूल्य ।=) छ आने।

प्रताप पुस्तक-माला की १४वीं पुस्तक।

फिजी में भारतीय प्रतिज्ञाबद्ध कुली-प्रथा।

विदेशों में जो भारतीय जीविका के लिए जा बसे हैं, उनके सम्बन्ध में जितना ज्ञान पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी को है, जो "एक भारतीय हृदय" के नाम से लिखा करते हैं, उतना ज्ञान बहुत कम भारतबासियों को प्राप्त है। उन्हीं ने यह पुस्तक लिखी है मि० एन्ड्रूज़ और मि० पियरसन के लेखों से भी इस पुस्तक के लिखने में मदद ली गई है। फिजी में भारतीयों की जो दुर्दशा थी और इस समय भी है, उसका पता इस देश के किसी आदमी को न होगा। प्रावासियों की दुर्दशा का विशद और प्रमाणिक वर्णन इस पुस्तक में है। पुस्तक सजिल्द है। मू० १) एक रु० है।

प्रताप पुस्तक-माला की १५वीं पुस्तक।

साम्यवाद।

'साम्यवाद' की ध्वनि चारों ओर से उठ रही है, परन्तु 'साम्यवाद' का क्या अर्थ है और उसका विकास कैसे हुआ, हिन्दी पढ़ने वालों में इस बात को बहुत कम लोग जानते हैं। इस छोटी सी पुस्तक में साम्यवाद के मर्मज्ञ एक मित्र ने इस विषय को सरल ढँग से बहुत अच्छी तरह समझाया है। 'साम्यवाद' के तत्व और विकास के समझाने की इच्छा रखनेवाले लोगों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिए। मू० ।≈) छे आना।

प्रताप पुस्तक-माला की १६वीं पुस्तक।

रूस की राज्यक्रान्ति।

रूस की राज्यक्रान्ति पर यह एक अच्छी पुस्तक है। रूस में कैसा भारी परिवर्त्तन हुआ, और उसके कौन कौन सूत्रधार हैं, इस का पता अच्छी तरह आपको लगेगा। पुस्तक सचित्र रेशमी जिल्द संहित है। ऐण्टिक पेपर पर बहुत अच्छी छपी है। उसमें ३६ अध्याय और २३ पूरे पेज के सुन्दर चित्र हैं। इस पर भी मूल्य केवल २॥) ढाई रुपया है।

प्रताप पुस्तक-माला की १७वीं पुस्तक।

एशिया-निवासियों के प्रति यूरोपियनों का बर्ताव।

पुस्तक का विषय नाम ही से प्रकट है। यह पुस्तक पहले लेख-माला के रूप में 'प्रभा' में निकली थी। लोगों ने उसे इतना पसंद किया कि उसको पुस्तक के रूप में निकालने की आवश्यकता पड़ गई। इसके लेखक हैं, कर्मबीर-सम्पादक श्री० ठाकुर छेदीलाल एम० ए०, बैरिस्टर। इसमें पांच व्यंग-चित्र भी हैं। इसके पढ़ लेने से आपको पता लगेगा कि यूरोपवाले एशिया के लोगों को कितना

तुच्छ समझते हैं और उन्हें कैसे पराधीन बनाये रखना चाहते हैं। मूल्य ।=) छे आना।

प्रताप पुस्तक-माला की १८ वीं पुस्तक।

चीन की राज्यक्रान्ति।

इसके लेखक हैं मर्य्यादा-सम्पादक, श्रीयुत सम्पूर्णानन्द जी। चीन की क्या दशा थी, उसके हड़पजाने के लिए बड़े बड़े देशों ने कैसी कैसी तैयारी की थी, फिर चीनमें जागृति का युग कसे आया, राज-सत्ता की जड़ें कैसे हिलीं, और अन्त में प्रजा-सत्ता की कैसे स्थापना हुई, ये सब बातें इतिहास के प्रेमियों तथा उन लोगों के लिए जो एशिया के देशों की उन्नति के इच्छुक हैं, अत्यन्त रोचक और भावोत्पादक हैं। इस पुस्तक में आप इन बातों को विस्तृत रूप से और सरल भाषा में पावेंगे। पुस्तक सजिल्द है। मूल्य १॥) डेढ़ रुपया है।

प्रताप पुस्तक-माला की नई १९ वीं पुस्तक।

महाराज नन्दकुमार को फांसी।

यह पुस्तक ईस्ट इंडिया कम्पनी के अंग्रेज़ी शासन के घोर अत्याचारों का जीता जागता ऐतिहासिक उपन्यास के रूप में चित्र है। पुस्तक पढ़कर आप के रोंगटे खड़े हो जायंगे। इस पुस्तक के लेखक हैं 'टाम काका की कुटिया' के लेखक चंडीचरण सेन लार्ड मेकाले का कहना है कि "प्रसिद्ध बंगाल में मुसलमानों के ज़माने में भी अत्याचार हुआ था, पर ऐसा भीषण अत्याचार कभी नहीं हुआ।" 'इसी अत्याचार' का वर्णन इस पुस्तक के पन्ने २ में है। पृष्ठ संख्या लगभग ५५०। मूल्य २॥) ढाई रु०।

प्रताप पुस्तक-माला की २०वीं पुस्तक।

बलिदान।

यह पुस्तक फ्रांस के संसार-प्रसिद्ध औपन्यासक 'विक्टर ह्यूगो' के संसार-प्रसिद्ध उपन्यास '१७९३' का हिन्दी अनुवाद है। १७९३ में ही फ्रांस की प्रसिद्ध राज्यक्रान्ति हुई थी और जनता ने अपने राजा रानी को फांसी पर लटका दिया था। इस सन में यूरोप के सभी राजा सुबह उठते ही अपनी गर्दनें टटोलते थे कि गर्दन पर हमारा सर है या नहीं। पुस्तक पढ़िये और आप को अनुभव होगा मानों आप स्वयं क्रान्ति के अन्दर बिचरण कर रहे हैं। पुस्तक के रूपान्तरकार हैं—

श्रीयुत गणेशशङ्कर विद्यार्थी

विद्यार्थी जी ने इसे उस समय लिखा था जब आप कारागार में थे। फ्रांस वाले कहते हैं कि विक्टर ह्यूगो शेक्सपियर से भी ऊंचा लेखक है। "बलिदान उपन्यास नहीं, किन्तु देश-भक्तों की रामायण है।" पृष्ठ संख्या ३६० मूल्य १।।।) एक रु० बारह आने।

प्रताप पुस्तक-माला की २१वीं पुस्तक।

राष्ट्रीय वीणा (दूसरा भाग)

जिन्होंने 'वीणा' का प्रथम भाग देखा है वही अनुमान कर सकते हैं कि पुस्तक देश-भक्ति के गीतों से ओत पोत है। वीणा के गीतों को लोग सभाओं और जल्सों में बड़े चाव से गाते और सुनते हैं। ऐसी कोई हिन्दी की भजन-मंडली न होगी जो 'वीणा' के गीत न गाती हो। वीणा के दूसरे भाग के सम्पादक हैं प्रसिद्ध कवि, कविवर "त्रिशूल"। इसमें प्रताप सन १९१६ और १७ से कविताओं का सुन्दर संग्रह है। टाइटिल पेज पर भारत माता का चित्र है। मूल्य ।।) आठ आने।